

PRĀKRIT PRAVESIKĀ

OR

INTRODUCTION TO PRAKRIT

BY

ALFRED C WOOLNER, M A (*Oxon*), C I E,
F A S B,

Principal, Oriental College, Lahore

Translated into Hindi by

BANARSI DAS JAIN, M A, Ph D,
Department of Hindi, Panjab University, Lahore

Published by

The University of the Panjab, Lahore

1933

Copies of this book can be had from the agents—
Messrs Moti Lal Banarsi Dass, Proprietors,
Punjab Sanskrit Book Depot,
Saidmutha, Lahore

प्राकृत-प्रवेशिका

(INTRODUCTION TO PRAKRIT)

लेखक—

श्री आल्फ्रेड सी० वूल्नर

एम. ए. (आक्सन), सी. आई. ई, एफ. ए. एस. बी.,

प्रिन्सिपल—ओरियण्टल कालेज, लाहौर

अनुवादक—

बनारसीदास जैन, एम. ए., पी-एच. डी.

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,

पञ्जाब यूनिवर्सिटी, लाहौर ।

प्रकाशक—

पञ्जाब यूनिवर्सिटी, लाहौर ।

वि० सं० १९९०

Copies of this book can be had from the agents—
Messrs Moti Lal Banarsi Dass, Proprietors,
Punjab Sanskrit Book Depot,
Saidmutha, Lahore

प्राकृत-प्रवेशिका

(INTRODUCTION TO PRAKRIT)

लेखक—

श्री आल्फ्रेड सी० वूलनर

एम. ए. (आक्सन), सी. आई. ई., एफ. ए. एस. बी.,
प्रिन्सिपल—ओरियण्टल कालेज, लाहौर

अनुवादक—

बनारसीदास जैन, एम. ए., पी-एच. डी.

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
पञ्जाब यूनिवर्सिटी, लाहौर ।

प्रकाशक—

पञ्जाब यूनिवर्सिटी, लाहौर ।

वि० सं० १९९०

पुस्तक मिलने का पता:—

मोतीलाल बनारसीदास,

अध्यक्ष—पञ्चाय सस्कृत पुस्तकालय,
सैदमिह्रा बाजार, लाहौर ।

अनुवादक का वक्तव्य ।

मूल ग्रन्थ के उद्देश्य का उल्लेख तो ग्रन्थकार ने अपने "उपोद्घात" में ही कर दिया है । अतः उसके दोहराने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं । परन्तु मूल ग्रन्थ अङ्गरेजी भाषा एवं रोमन लिपि में होने के कारण केवल हिन्दी-संस्कृत जानने वालों के लिए पूर्णतया उपयोगी नहीं हो सकता था । भारत में प्राकृत का अभ्यास प्रायः जैन साधुओं तक ही परिमित है क्योंकि उनके धार्मिक साहित्य का अधिकांश इसी भाषा में है । अतः इन महानुभावों तथा इतर प्राकृत प्रेमी जनों की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए ग्रन्थकर्ता (पञ्जाब विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर महोदय) ने इसके हिन्दी अनुवाद की आयोजना की ।

मेरे नेत्ररोग के कारण प्रूफ सशोधन का कार्य दूसरे सज्जनों से कराए जाने में अनुवाद के उत्तरार्द्ध में कई स्थलों पर मूल एवं नोटों में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं जो आशा है अगले संस्करण में दूर कर दी जायेंगी ।

कृष्ण नगर लाहौर ।
आषाढ शु० १५, सं० १९४० ।

बनारसीदास जैन ।

गन्धद्वारेण विप्रगुरुणो सिरि-
आर्धर एण्टनी मैरुडानल-
आचारिअ-णरिन्दस्स वडल्लतित्थत्थस्स
णाम

सब्बाइं उअरणाइ सुमारिअ
इमस्स पोत्थस्स आदिम्मि
मसिणेह
अहिलिहिद

[ए० सी० वूलनर]

पहले संस्करण का उपोद्घात

संस्कृत की उच्च परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में प्रायः एक न एक नाटक अथवा सन्निविष्ट होता है, जिसका बहुत सा अंश प्राकृत में होता है। परीक्षक चाहे कुछ ही सोचते हों, व्यवहार में विद्यार्थी संस्कृत छाया को पढ़ते हैं जो अधिकांश संस्करणों में उन्हें उसी पृष्ठ पर उपलब्ध हो जाती है। कम से कम आरम्भ वे इसी ढंग से करते हैं, पीछे से प्राकृत पढ़ते समय किन्हीं सदृशताओं पर कतिपय भिन्नताओं को पाते हैं—ऐसी दशा में सम्भव है कि वे किसी ऐसे सन्दर्भ को पहचानने में समर्थ हो जायें जिसके संस्कृत रूपान्तर और कदाचित् अङ्गरेजी अनुवाद से वे पहले से ही परिचित हों। उच्चतर श्रेणियों के विद्यार्थी तक प्राकृत स्थलों को पढ़ते समय जरा सा भी अटकने पर नीचे दी हुई 'छाया' पर दृष्टिपात करते हैं। फलतः किसी भी प्राकृत का निश्चित ज्ञान शायद ही किसी विद्यार्थी को होता हो। इसमें विद्यार्थियों का कोई दोष नहीं है। जिन संस्कृत संस्करणों को वे काम में लाते हैं उनके प्राकृत स्थल प्रायः अशुद्ध होते हैं, और अनुसन्धान के लिये कोई ऐसी सुगम पुस्तक नहीं है जिसमें उन्हें निश्चित नियम उपलब्ध हो सकें। इस प्राकृत प्रवेशिका का एक उद्देश्य संस्कृत नाटकों के शौरसेनी और माहाराष्ट्री पाठों का अधिक ध्यान और व्युत्पत्ति पूर्वक अनुशीलन करने के लिये विद्यार्थियों के हाथ में एक पथ प्रदर्शक रखना है।

किन्तु इसका मुख्य उद्देश्य वैदिक काल से आज तक की विशाल आर्य भारती के इतिहास के विद्यार्थियों को सहायता पहुँचाना है। भारतीय विद्यार्थी को आरम्भ में कम से कम एक आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का घनिष्ठ ज्ञान होता है। स्कूल में वह जिस संस्कृत को पढ़ता है उसके द्वारा वह प्राचीन

भाषा के साहित्यिक और परिवर्तन रहित स्थिर रूप से परिचित हो जाता है। यदि उसे विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ने का अवसर प्राप्त हो तो उसको पता लगेगा कि वेदों की भाषा भारतीय आर्य भाषाओं की कहीं अधिक प्राचीन अवस्था की परिचायक है। इसके लिए शुद्ध पाठ और अनुसन्धान के अनेकों ग्रन्थ प्राप्य हैं।

संस्कृत की अपेक्षा मध्यकालीन भाषाओं की अधिक उपेक्षा की गई है। स्वयं भारतवर्ष में मध्यकालीन प्राकृत संस्कृत की अपेक्षा वास्तविक अथ में "मृत" भाषाएँ हैं। भारतवर्ष से बाहर विद्वानों ने पाली को, जो प्राचीनतम बौद्ध धर्म ग्रन्थों की भाषा है, इस युग की सुलभ प्रतिनिधि स्वरूपिणी पाया है। भारतीय आर्य भाषा विज्ञान के विद्यार्थी को भिन्न भिन्न प्राकृतों की प्रमुख विशेषताओं का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। आशा की जाती है कि इस प्रयोजन के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

अध्ययन-संगीति—शायद सब से अच्छी युक्ति यह है कि आरम्भ में किसी एक प्राकृत का गहन अध्ययन किया जाय, और बाद को इसे आदर्श मान कर इसके साथ दूसरी प्राकृतों की तुलना की जाय। भारतीय व्याकरणों की यही सरणी थी, उन्होंने ने माह्य राष्ट्री को अपना आदर्श माना था। किन्तु माह्यराष्ट्री का एकमात्र उपलब्ध गद्य जैनों द्वारा लिखा गया था और वह भी उस बोली में नहीं जिसमें नाटकों के गीत हैं। पाली के अध्ययन के लिए उत्तम साधन विद्यमान है। किन्तु पाली इतनी प्राचीन है कि मध्ययुगीन प्राकृतों का अभ्यास उससे प्रारम्भ नहीं किया जा सकता। और हमारे पाठ्यविषयों में वह एक पृथक् विषय है और साधारणतया बौद्ध धर्म के अध्येताओं के लिए ही उपयुक्त समझी जाती है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के विद्यार्थी को वस्तुतः पदसे पदक नाटकों में दो प्राकृत से साक्षात्कार होता है, जिस में अधिकांश शौरसेनी

होती है। इस कारण और अन्य कारणों से विषय का सामान्य वर्णन करते हुए औरसेनी और महाराष्ट्री पर विशेष जोर देना उचित समझा गया है।

इस पुस्तक का उपयोग करने वाले अभ्येताओं को चाहिए कि पहले सामान्य प्रकरणों को पढ़ें और फिर दोनों प्रधान प्राकृतों को दृष्टि केन्द्र में रख कर वर्णविज्ञान और व्याकरण के अध्यायों का अनुशीलन करें। अधिक महत्त्वपूर्ण अवतरण मोटे अक्षरों में छापे गये हैं*, और हो सके तो इन्हें कण्ठस्थ कर लेना चाहिए। फिर १-११ उद्धरणों में पूर्णतया पारंगत हो कर अभ्येता को अपना साचित्त ज्ञान किसी भी नाटक में जिसे यह पढ़ रहा हो घटित करना चाहिए।

इस के उपरान्त भाषा विज्ञान विषयक अध्ययन आरम्भ होना चाहिए। इस में अनेकों अवस्थाओं और योलियों की तुलना करनी चाहिए जिस प्रकार कि वे ४-१० अध्यायों में वर्णन की गई हैं और १५वें और उससे आगे अन्त तक के उद्धरणों से विशद की गई हैं।

पाली और पुरानी प्राकृत के नमूनों का प्रयोजन अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहनमात्र है।

प्राचीन काल से शब्दों की ऐतिहासिक अनवच्छिन्नता दिखाने के लिए यत्र तत्र आधुनिक रूपों का उल्लेख कर दिया गया है। विद्यार्थी स्वयं कहीं अधिक शब्दों के साथ अपनी मातृभाषा के शब्दों का सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

अनुक्रमणिका का प्रयोजन अशत अनुसन्धान की सुविधा और अशत ऐसा साधन उपस्थित करना है जिससे विद्यार्थी रूपों की व्युत्पत्ति में अपनी योग्यता को परख सकें और उन्हें प्रकरण से बाहर असम्यक् दशा में पहचान सकें।

व्युत्पत्ति जैसी सान्दिग्ध बातों में, जहां विद्वानों में मतभेद है,

* हिन्दी अनुवाद में रेखांकित कर दिये गए हैं। (अनुवादक)

दूसरे संस्करण का उपोद्घात

पहला संस्करण यूरोपीय महायुद्ध के समय प्रकाशित किया गया था। नागरिक और सामरिक कर्तव्यों से यथाकथंचित् अवकाश निकाल कर प्रफ् पढ़े गये थे। इस दूसरे संस्करण में सुधार की बहुत सी अशुद्धियाँ दूर की गई हैं। इसी बीच भारतीय भाषाओं के इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्धन हो चुके हैं। वर्गीकरण और साहित्य के अध्याय अधिक समयानुकूल कर दिये गये हैं। जब यह पुस्तक प्रथम प्रकाशित हुई थी तब से भारतीय विश्वविद्यालयों में प्राकृत के प्रति अधिकाधिक रुचि बढ़ती गई है और तत्सम्यन्धी ज्ञान की साधारण स्थिति उन्नत हो चुकी है। बहुत से विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं के इतिहास पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस बात को दृष्टि में रखते हुए अशोक के शिलालेखों की प्रारम्भिक प्राकृत और उत्तर-कालीन अपभ्रंश के सम्यन्ध में भी कुछ कड़ा गया है।

प्रूफों के पढ़ने और दूसरे भाग के सुद्रापण के लिए मैं ओरियंटल कालेज के हिन्दी लेक्चरर, अपने मित्र और सहयोगी डा० धारसीदास जैन, एम० ए०, पीएच० डी०, का जो कभी मेरे शिष्य थे, बहुत आभारी हूँ। इन्होंने बहुत सी उपयोगी बातों का उद्बोधन भी किया है।

ओरियंटल कालेज,
लाहौर, १९२८।

ए० सी० वृन्जर

नागरी और रोमन अक्षरों की तालिका ।

यूरोप में छपा पाली साहित्य तथा बहुत सा प्राकृत साहित्य रोमन अक्षरों में है । इस कारण प्राकृत अभ्यासी के लिए रोमन अक्षर जानना अत्यावश्यक है । इसी हेतु से यहा नागरी-रोमन अक्षर तालिका दी जाती है—

स्वर— अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए

a ā i ī u ū ṛ ṝ e

ऐ ओ औ

e ai o au

नोट (१)—क, ऋ, ए, ॠ, ऐ और औ का प्रयोग प्राकृत में नहीं होता । ये वर्ण केवल संस्कृत में व्यवहृत होते हैं ।

(२)—प्राकृत अइ, अउ के लिए यास्तव में ai, au लिखना चाहिये परन्तु साधारणतया ai, au ही लिखे जाते हैं । चूंकि प्राकृत में ऐ, औ होते नहीं इसलिए इस में ai, au से ऐ, औ का भ्रम नहीं होता ।

(३)—प्राकृत में कभी कभी ए, ओ (विशेष कर सयुक्त या द्विभूत वर्ण के पूर्व) से ह्रस्व ए, ओ का बोध होता है । ऐसी दशा में रोमन में ē, ō लिख देते हैं ।

(४)—अनुनासिकता प्रकट करने के लिए स्वर के ऊपर यह चिह्न

(*) लगाया जाता है जैसे साँग=sāg(a)

व्यञ्जन—

क, ख, ग, घ, ङ । च, छ, ज, झ, ञ ।

k kh g gh n = ch j jh ñ

ट, ठ, ड, ढ, ण । त, थ, द, ध, न ।

t th d dh n t th d dh n

प, फ, ब, भ, म । य, र, ल, व ।

p ph b bh m y r l v

नागरी और रोमन अक्षरों की तालिका ।

यूरोप में छपा पाली साहित्य तथा बहुत सा प्राकृत साहित्य रोमन अक्षरों में है । इस कारण प्राकृत अभ्यासी के लिए रोमन अक्षर जानना अत्यावश्यक है । इसी हेतु से यहा नागरी-रोमन अक्षर तालिका दी जाती है—

स्वर— अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ॡ

a ā i ī u ū ṛ ṛ ī ī

ए ऐ ओ औ

e ai o au

नोट (१)—ऋ, ॠ, ए, ॡ, ऐ और औ का प्रयोग प्राकृत में नहीं होता । ये वर्ण केवल सस्कृत में व्यवहृत होते हैं ।

(२)—प्राकृत अइ, अउ के लिए वास्तव में ai, au लिखना चाहिये परन्तु साधारणतया ai, au ही लिखे जाते हैं । चूँकि प्राकृत में ऐ, औ होते नहीं इसलिए इस में ai, au से ऐ, औ का भ्रम नहीं होता ।

(३)—प्राकृत में कभी कभी ए, ओ (विशेष कर सयुक्त या मिश्रित वर्ण के पूर्व) से ह्रस्व ए, ओ का बोध होता है । ऐसी दशा में रोमन में ē, ō लिख देते हैं ।

(४)—अनुनासिकता प्रकट करने के लिए स्वर के ऊपर यह चिह्न

(*) लगाया जाता है जैसे साँग=sāg(a)

व्यञ्जन—

क, ख, ग, घ, ङ । च, छ, ज, झ, ञ ।

k kh g gh n c ch j jh ñ

ट, ठ, ड, ढ, ण । त, थ, द, ध, न् ।

ṭ ṭh ḍ ḍh ṇ t th d dh n

प, फ, ब, भ, म । य, र, ल, व् ।

p ph b bh m y r l v

श ष, स ह । (-) अनुस्वार, () विसर्ग ।
 ś ṣ s h m h

नोट (१)—प्राकृत में परसवर्ण नातिपत्य के स्थान में प्रायः अनुस्वार का प्रयोग होता है ।

(२) हिन्दी व तथा मराठी के लिए भी रोमन में r, l आते हैं । ये स्केत श और ल के भी हैं जो प्रायः संस्कृत में ही प्रयुक्त होते हैं ।

(३) प्राकृतों में कुछ न कुछ उच्चारण भेद भी अवश्य होगा । अनुमान किया जाता है कि मद्रासी में शायद 'च' का उच्चारण मराठी "च" (जैसा वा शब्द में) के उच्चारण से मिलता था । मागधी में 'अ' का उच्चारण बंगला के 'अ' के उच्चारण से मिलता था ।

अभ्यास के लिए उद्धरण न० १८ (पृ० २१०) का कुछ पाठ रोमन अक्षरों में दिया जाता है ।

taṇ ca kuo vi nāṭṭa niggaṇa nayaṛṇo sūri, anavara-
 yam ca gacchanto patto Siga kulaṇ pāma kulaṇ tat-
 tha je sāmanta, te Sāhino bhannanti sāmanta 'hivaṛ
 sayala narinda vanda cūḍamaniso Sāhānusāhi bhanṇa-
 tao Kāḷaga sūri thio egassa sāhino samāve, āṇṇṇo ya
 so manta tantāhiṇ ṇo ya appaṇṇa kyaṇi tassa Sāhino
 sūri samanmyassa harisa harisabhara nibbharissa nā
 nāṇha viṇoehum ceṭṭhamāṇassa samāgaṇo paḍibhāro,
 viṇnattam ca teṇa, jaḥā "sāmi Sāhānusāhi dūo du
 vāre ciṭṭhaṇ" Sāhiṇā bhaniyam 'lahuṇ paveschi"
 pavesio ya vayanena antaraṇ eva nisanno ya diṇṇāsṇe
 tao dūeṇa samappiyam uvāyanam tam ca datṭhūṇa
 nava pāusa lāla nahayalam va andh'iriyam va andhāri-
 yam vyāpam Sāhiṇā

विषय सूची ।

विषय

अनुवादक का चित्रण

ग्रन्थकर्ता का समर्पण

ग्रन्थकर्ता का उपोद्घात (प्रथम संस्करण का)

“ (द्वितीय “)

नागरी रोमन अक्षरों की तालिका

विषय सूची

शुद्धिपत्र

पहिला भाग

अध्याय १—विषय निर्देश

आर्य भारती के तीन युग—मध्ययुगीन भाषा की तीन अवस्थाएँ
प्राकृत शब्द के विभिन्न अर्थ

अध्याय २—प्राकृत ।

प्रसिद्ध साहित्यिक प्राकृतों के नाम

अध्याय ३—प्राकृत के साधारण तीन लक्षण ।

संक्षेपात्मक—व्याकरणलाघव—वर्णविकार
सयुक्त अक्षरों में समानादेश—लेटिन भाषाओं से तुलना ।

अध्याय ४—वर्णविकार—असयुक्त व्यञ्जन

(क) आदि में आनेवाले § १—८ ।

(ख) स्वरमध्यवर्ती § १—२८ ।

(ग) अन्तिम § २९ ।

अध्याय ५—सयुक्त व्यञ्जन—समानादेश § ३३—दो स्पर्शवर्ण § २४

३४—नासिक्य और स्पर्श § ३५—स्पर्श

और ऊष्म § ३८—अन्तस्थ और स्पर्श

§ ४२—दो नासिक्यवर्ण § ४६—ना

सिक्य और ऊष्म § ४७—नासिक्य और

अन्तस्थ § ४८—नासिक्य और ऊष्म § ४९

पृष्ठ
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९
३०
३१
३२
३३
३४
३५
३६
३७
३८
३९
४०
४१
४२
४३
४४
४५
४६
४७
४८
४९
५०
५१
५२
५३
५४
५५
५६
५७
५८
५९
६०
६१
६२
६३
६४
६५
६६
६७
६८
६९
७०
७१
७२
७३
७४
७५
७६
७७
७८
७९
८०
८१
८२
८३
८४
८५
८६
८७
८८
८९
९०
९१
९२
९३
९४
९५
९६
९७
९८
९९
१००

विषय

४६-दो अन्तस्व यद्य ॥ २०-१३रभक्ति
५५ २१

४४

अध्याय ६-स्वर

३४

“अ” के आदेश ५५ ६०, “ऐ, औ” के ५५ ६१-दम्बदीर्घव्यापक
॥ ५५ ६२ दीर्घत्व ५५ ६३-दस्त्व ५५ ६० स्थान परिवर्तन ५५
६१-जोष ५५ ७४-सम्प्रसारण ५५ ७२-मुगपत् स्वरभक्ति और
संयोज्यत्व ५५ ७६ ।

अध्याय ७-संधि

४२

(क) स्वर ५५ ८०

(रा) व्यञ्जन ५५ ७७

अध्याय ८-पञ्चा, विशेषण और सर्वनाम की रूप रचना ।

४२

अकारान्तगन्ध	५५ ८६
इकारान्त	५५ ८८
उकारान्त	५५ ९०
झीलिङ्ग	५५ ९१
विशेषण	५५
अकारान्त	५५ ९६
अन् प्रत्ययान्त	५५ ९८
इन् प्रत्ययान्त	५५ १०१
अत् ,	५५ १०२
सर्वनाम	५५ १०६
सक्यावाची	५५ ११२

अध्याय ९

६०

क्रिया की रूप रचना—

अद् के रूप	॥ ११४
खोद्	५५ ११६
विभिलिङ्	५५ ११७
(भविष्यत्) अद्	५५ ११८
कर्मवाच्य	५५ ११९

मेरयार्थक	५५ १२०
कृदन्त	५५ १२१
“कथा” या “कथपू” (प्रत्यय)	५५ १२२
असाधारण रूप	५५ १२३
“कृ-”	५५ १२४
असाधारण छद्	५५ १२६
असाधारण छद्	॥॥ १३४
असाधारण कर्मवाच्य	॥॥ १३४
मुमुक्षन्त विविधपर्याय	॥॥ १३६
‘तस्य’ अनीय”	॥॥ १३७

अध्याय १०

८०

प्राकृतों के विविधभेद और उन के लक्षण	
मागधी	८०
मराठी के उपभेद	८४
अर्धमागधी	८५
जैनमहाराष्ट्री	८७
जैन शौरसेनी	८८
देश की अपेक्षा प्राकृतों के भेद	८९
पैशाची	९१
पुरानी प्राकृत (अशोक, पात्ती, अश्वघोष)	९३
अपभ्रंश	१०२

अध्याय ११—प्राकृत साहित्य—जैन साहित्य, अर्धमागधी चर

१०३

जैन महाराष्ट्री काव्य (सितुबन्ध, गौडगहो, हासकृत सप्तरातकम्,
भाटकीय प्राकृतव्याकरणम्

दूसरा भाग

उद्धरण १	शौरसेनी, रत्नावली	१२४
“ २	शौरसेनी, रत्नावली	१२७
“ ३	“ शकुन्तला	१३२
“ ४	“ “	१३५
“ ५	“ कर्पूरमञ्जरी	१४०
“ ६	“ “	१४८

		५४
" ७	" मृच्छकटिकम्	१४१
" ८	" "	१४६
" ९	महाराष्ट्री, हास्य सप्तरातकी भाषाये	१५०
" १०	" शकुन्तला के पाँच पद्य	१६७
" १०	" मृच्छकटिक के तीन पद्य	१७०
" १२	" कपूरमशरी के पद्य	१७१
" १३	" रसावली के पद्य	१७२
" १४	" मंगुत्तप के पद्य	१७७
" १५	" महाराष्ट्री, मयिदभो और	१८८
" १६	" हिमुरा	१८२
उदाहरण १७	जैन महाराष्ट्री कच्छुक शिलाखेज	२०४
" १८	" कासकाचार्य कथानक	२१०
" १९	अर्धमागधी, उदाहरण	२१७
" २०	" उदामगदसाभो, शब्दाब्जपुत्र	२२४
" २१	" कल्परात्र	२३२
" २२	मागधी, शकुन्तला	२४२
" २३	" मृच्छकटिक	२४०
" २४	" "	२४१
" २५	" मृच्छकटिक शाकारी पद्य	२४५
" २६	" ललितविग्रहराज,	२४८
" २७	आवन्ती और दाधियात्या, मृच्छकटिकम्	२६३
" २८	जैनशौरसेनी प्रवचनसार	२६७
" २९	भास, स्वप्नवासयदत्तम्	२६८
" ३०	प्रारम्भिक प्राकृत, अशोक	२७४
" ३१	पाली, आतक नं ३०८	२७७
" ३२	पाली " "	२८०
" ३३	महावरा,	२८३
" ३४	हाथी गुम्फा का शिलाखेज	२८६
" ३५	उत्तरकाशीन प्राकृत (अपभ्रंश)	२९०
	प्राकृतशब्दानुक्रमशिका	
	विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तकें,	

शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	फुटनोट	अशुद्ध	शुद्ध
१७	१	१ ६	पाठ छूट गया १	स्वरमध्यवर्ती ए, व्, व् का कभी खोप हो जाता है। माहा० रुअ=रूप, विउह=विबुध, दिअह=दिवस। स्वरमध्यवर्ती "य्"
१२८		२	✓ ओ	✓ सो
१३२	८		सस्करणों	वाचनाओं
१३३		१	भटकते हुए	भटक कर
१३३		८	(वृत्त) 'समाप्त हुआ', (वृत्ता) 'समप्त हुई'।	
१३६		३३	३६००	१६००
१४०		७	पीम्स	पोम्स
१४३		७	'सद्यो'	'सद्यः'
१४८		७	आरम्भों में	आरम्भों को
१५२		५	सन्नन्त	शन्नन्त
१५७		१	"	"
"		५	सकुणोदि	सककुणोदि
१६३	६		K M ने	काव्यमाला में
"	१४		आरम्भतस्स	आरम्भन्तस्स
१६५	श्लो० ११४		सवत्थ	सव्वत्थ
१६६	" १७१ नो०		सन्नन्त	शन्नन्त
१६७		६	यगला सस्करण	यगास वाचना
१७८	श्लो ३		सद्योद	सद्योद
१७६	प ६		सन्नन्त	शन्नन्त
१८१	१		श्रान्त	वृदन्त
१८४	२२		सन्नन्त	शन्नन्त

१८५	२३	"	"
१८६	४	"	प्रान्त
१८७	४	प्रहरण	परहरण
१८८	२	भारत	भरत
१८९	५	'नू'	'सू'
१९०	७	लकी सात खेता हुआ	लकमी सांभ भर कर
२००	६	प्राकृत	प्राकृप्
२११	३	मजिप्यत् सप्तत	तय्यास्त
२१२	७	वि+ +क	वि+आ+ह
२२४	१३	दस हजार	एक पदयोपम (एक बहुत बड़ी सरपा)
१९०	५	मन्नत	शयत
१८६	१	"	"
१८८	२	"	"
२८८	३	दुगुना	दो बार
२३३	२	तय्यार कर लिया है	तय्यार कराओ
"	६	आख पारा	शिगरा
२७१	३	कुम्ह	कुम्ह

प्राकृतप्रवेशिका ।

प्रथम भाग ।

पहिला अध्याय ।

विषय-निर्देश ।

उत्तर भारती अर्थात् भारतवर्षीय आर्य भाषाओं का इतिहास सुगमता के लिये तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है—प्राचीन, मध्यम, और आधुनिक ।

(१) प्राचीन युग की भाषा के उदाहरण साहित्य म (क) ऋग्वेद की भाषा और (ख) अर्वाचीन वैदिक साहित्य की भाषा हैं । इसी युग से सम्बन्ध रखने वाली वे लोकभाषाएँ हैं जिन के आधार पर (ग) इतिहास ग्रन्थों (रामायण, महाभारत) की काव्य भाषा, (घ) पाणिनि पतञ्जलि की अतीव समार्जित (संस्कृत) साहित्यक भाषा और उन के पश्चात् कालिदास तथा आज तक के उत्तरलेखकों की संस्कृत भाषा ने जन्म पाया ।

(२) मध्यम युग की भाषा के साहित्यक उदाहरण पाली और प्राकृत हैं । इसके अंतर्गत वे सब भाषाएँ ह जो उस समय से लेकर जब कि विशेष वर्णविकारों तथा कुछ व्याकरणिक परिवर्तनों ने तत्कालीन भाषा को ऐसा रूप दे दिया था कि यह देखने में प्राचीन भारती से प्रत्यक्ष भिन्न प्रतीत होने लगी विक्रम की चारहवीं शताब्दी तक प्रचलित थीं । तत्पश्चात् और भी वर्णविकार होने से

तथा पुराना व्याकरण सर्वथा द्विगु मित्र हो जाने से एष नूतन प्रकार की भाषा का विकास हुआ जो आधुनिक भाषा से मिलती जुलती थी ।

इस युग के विषय का हमारा ज्ञान कई प्रकार के ऐसे साधनों से सङ्कलित किया गया है जो भिन्न २ देश तथा काल से सम्बन्ध रखते हैं । इन साधनों के अन्तर्गत प्राचीन लेख तथा साहित्य ग्रन्थ हैं । लेखों में महाराज अशोक की जर्म लिपियाँ सब से प्रसिद्ध हैं । साहित्य के अन्दर बौद्ध धर्म की दक्षिणी अर्थात् हीनयान सम्प्रदाय के पाली ग्रन्थ, जैन धर्म के प्राकृत ग्रन्थ, प्राकृत राष्ट्रकाव्य, महाकाव्य, नाटक और प्राकृत व्याकरण शामिल हैं ।

(३) तृतीय या आधुनिक युग का प्रारम्भ-काल परिच्छिन्न रूप से निश्चित नहीं किया जा सकता । यह काल प्राकृत के सब से अर्वाचीन रूप अर्थात् अपभ्रंश जिसे बारहवीं शताब्दी में होनेवाले श्री हेमचन्द्राचार्य ने ध्वनि किया है उसके और आधुनिक भाषाओं की सब से पुरानी कविता के कहीं बीच था । हिन्दी का सब से प्राचीन काव्य "मिथिराज रासी" है जिसे लाहौर के रहनेवाले कवि चंद बरदाई ने (वि सं० १२५० के लगभग) लिखा था ।

मध्यम युग को फिर तीन अवस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं—

(१) पुरानी प्राकृत, (२) मझली प्राकृत, और (३) पिछली प्राकृत या अपभ्रंश ।

(१) पुरानी प्राकृत के अन्तर्गत है—

(अ) विभक्त पूर्ण तीसरी शताब्दी से तेरह विभक्त की तीसरी शताब्दी के मध्य तक के शिला लेख । इन लेखों की भाषा में समय और देश के अनुसार कुछ २ भेद हैं ।

(ण) हीनयान सम्प्रदाय के त्रिपिटक तथा महाप्रज्ञ, जातक आदि बौद्ध ग्रन्थों की पाली भाषा ।

जातकों में गद्य की अपेक्षा गाथाओं की भाषा कुछ प्राचीन है ।

(ग) प्राचीन जैन आगम की भाषा ।

(घ) प्रारम्भ काल के नाटकों तथा मध्य एशिया से मिले हुए
अश्वघोष कृत नाटक खण्डों की भाषा ।

(२) मझली प्राकृत के अन्तर्गत हैं—

(क) इक्ष्वाकुपथ के मधुर गीतों की महाराष्ट्री भाषा ।

(ख) शौरसेनी, मागधी आदि अन्य नाटकीय प्राकृतें जो
कालिदास और उस के उत्तरवर्ती कवियों के नाटकों में प्रयुक्त तथा
व्याकरण ग्रन्थों में वर्णित मिलती हैं ।

(ग) अर्वाचीन जैन ग्रन्थों की प्राकृत ।

(घ) पैशाची प्राकृत । कहा जाता है कि “बृहत्कथा” की
रचना इसी प्राकृत में हुई थी परन्तु अब केवल व्याकरण ग्रन्थों में
ही इस का उल्लेख मिलता है ।

(३) अपभ्रंश—साहित्य के लिये अपभ्रंशों का प्रयोग कुछ
अधिक नहीं होता था । ये साधारण लोक-भाषा के उस रूप के
उदाहरण हैं जो उसने उस समय धारण कर लिया था जब नाटकीय
प्राकृतें व्यवहार में प्रचलित न रही थीं, और व्याकरणों ने समर्जित
करके उन्हें स्थिर रूप दे दिया था । जिस समय हेमचन्द्र ने पश्चिम
भारत की एक अपभ्रंश विशेष का वर्णन किया उस समय शायद
वह भी अप्रचलित हो चुकी थी ।

प्रस्तुत पुस्तक में साधारण तौर पर भारतवर्ष की भाषा के
द्वितीय अथवा मध्यम युग का वर्णन है और विशेष करके मझली
प्राकृत अवस्था का, उसमें भी प्रधानतया नाटकीय प्राकृतों का ।

“प्राकृत” शब्द के विविध अर्थ ।

“प्रकृति” शब्द से व्युत्पन्न “प्राकृत” शब्द के अर्थ के दो मार्ग
हैं । [१] इसका अधिक यथार्थ अर्थ है “प्रकृति से निकला हुआ

या प्रकृति से सबध रखनेवाला अर्थात् किसी वस्तु के मूलरूप से निकला हुआ और उसके विकार रूप विकृति का प्रतिपक्षी है” । [साख्य दर्शन में प्राकृत शब्द का अर्थ है “प्रकृति अर्थात् मूल तत्त्व से निकला हुआ”] । [२] दूसरा कुछ व्यापक सा अर्थ है, सद्गज (नैसर्गिक), साधारण, लौकिक, ग्रामीण ’ ।

बहुत सम्भव है कि पहिले पहिल “प्राकृत” शब्द (शौरसेनी-पाउड, माहाराष्ट्री-पाउड्र) सर्व साधारण की नैसर्गिक या मातृ भाषा को अति परिष्कृत और सिद्ध “संस्कृत” भाषा से पृथक् करने के लिये अपने इसी व्यापक अर्थ में व्यवहृत हुआ होगा ।

मध्यम कालीन व्याकरण और अलंकार ग्रंथों में प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है—“प्रकृति संस्कृत, तत्र भव, तत आगत वा=प्राकृतम्”—अर्थात् मूल भाषा है संस्कृत, उस में होनेवाली, या उस से निकली हुई है प्राकृत । यह व्युत्पत्ति पेटि हासिक दृष्टि से चाहे सत्य न हो तो भी देखने में यह सब प्रकार से समीचीन प्रतीत होती है क्योंकि व्यवहार में हम संस्कृत शब्दों को मूल मानकर उनसे फिर प्राकृत रूप सिद्ध करते हैं । ऐसा होते हुए भी आधुनिक भाषा विज्ञान हम को एक आवश्यक अपवाद खूब जोड़ने पर बाधित करता है—अर्थात् हम संस्कृत शब्दों को उसी सीमा तक मूल मानते हैं जहां तक कि ये प्राचीन भारती के रूपों को प्रकट करते हैं । परन्तु कभी कभी प्राकृत रूप को सिद्ध करने के लिये प्राचीन भारती के उचित रूप का घोनक शब्द संस्कृत में या तो सर्वथा ही मिलता नहीं, और अगर मिलता है तो केवल किसी अर्वाचीन ग्रन्थ में जहां स्पष्टतया वह किसी प्राकृत शब्द से संस्कृत रूप बनाया गया होगा ।

यदि हम संस्कृत के अदर वेदिक तथा प्राचीन भारती युग की समस्त लोक भाषाओं को शामिल करें तो यह कहना ठीक होगा कि सब प्राकृतें संस्कृत से निकली हैं, परन्तु यदि संस्कृत से हमारा

अभिप्राय केवल पाणिनीय सस्कृत का हो तो यह कहना ठीक न होगा कि कोई भी प्राकृत सस्कृत से निकली है, सिवाय इसके कि मध्यदेश की शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश की उसी प्राचीन लौकिक भारती से निकली है जिस के आधार पर प्रायः सस्कृत बनी है। पाश्चात्य विद्वानों ने प्राकृत शब्द का प्रयोग इन अर्थों में किया है—

(१) वे विशेष भाषाएँ जिनका भारतवर्ष में प्राकृत शब्द से उल्लेख किया जाता है। जैसे—माहाराष्ट्री, या सस्कृत नाटकों के प्राकृत अंश।

(२) मध्यम भारती युग की भाषाएँ (कभी २ पाली और पूर्व-कालीन उत्कीर्ण लेखों की भाषाओं को प्राकृत से पुरानी अवस्था की होने के कारण पृथक् भी कर दिया जाता है)।

(३) साहित्यिक और शिष्ट भाषा से भिन्न सहजजन्य लोक भाषा के लिये। इस अन्तिम अर्थ में कई लेखक प्राकृत के तीन भेद करते हैं—प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्राकृतें जो तीनों बड़े युगों की सहजजन्य लोक भाषाएँ थीं*। लौकिक भाषा के इन उत्तरोत्तर रूपों के आधार पर कई एक साहित्यिक भाषाओं का जन्म हुआ जो समय पाकर परिवर्तन से मुक्त हो स्थिर रूप हो गईं और अपने २ समय की तथा सदा परिवर्तनशील लोक भाषाओं के साथ २ व्यवहृत होती रही हैं।

* भारतीय भाषाओं के अद्वितीय विद्वान् सर जॉर्ज ग्रियर्सन का यह मन्तव्य है।

या प्रकृति से सथध रखनेवाला अर्थात् किसी वस्तु के मूलरूप से निकला हुआ और उसके विकार रूप विकृति का प्रतिपक्षी है" । [सार्व्य दर्शन में प्राकृत शब्द का अर्थ है "प्रकृति अर्थात् मूल तत्त्व से निकला हुआ"] । [२] दूसरा कुछ व्यापक सा अर्थ है, सहज (नैसर्गिक), साधारण, लौकिक, ग्रामीण" ।

बहुत सम्भव है कि पहिले पहिल "प्राकृत" शब्द (शौरसेनी-पाण्ड, माहाराष्ट्री-पाण्ड) सर्व साधारण की नैसर्गिक या मातृ भाषा को अति परिष्कृत और सिद्ध "संस्कृत" भाषा से पृथक् करने के लिये अपने इसी व्यापक अर्थ में व्यवहृत हुआ होगा ।

मध्यम कालीन व्याकरण और अलंकार ग्रंथों में प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है—“प्रकृति संस्कृत, तत्र भव, तत आगत या=प्राकृतम्”—अर्थात् मूल भाषा है संस्कृत, उस में होनेवाली, या उस से निकली हुई है प्राकृत । यह व्युत्पत्ति ऐतिहासिक दृष्टि से चाहे सत्य न हो तो भी देखने में यह सब प्रकार से समीचीन प्रतीत होती है क्योंकि व्यवहार में हम संस्कृत शब्दों को मूल मानकर उनसे फिर प्राकृत रूप सिद्ध करते हैं । ऐसा होते हुए भी आधुनिक भाषा विज्ञान हम को एक आवश्यक अपवाद सूत्र जोड़ने पर बाधित करता है—अर्थात् हम संस्कृत शब्दों को उसी सीमा तक मूल मानते हैं जहां तक कि ये प्राचीन भारती के रूपों को प्रकट करते हैं । परन्तु कभी कभी प्राकृत रूप को सिद्ध करने के लिये प्राचीन भारती के उचित रूप का द्योतक शब्द संस्कृत में या तो सर्वथा ही मिलता नहीं, और अगर मिलता है तो केवल किन्हीं अर्वाचीन ग्रन्थ में जहां स्पष्टतया वह किसी प्राकृत शब्द से संस्कृत रूप बनाया गया होगा ।

यदि हम संस्कृत के अंदर वैदिक तथा प्राचीन भारती युग की समस्त लोक भाषाओं को शामिल कर लें तो यह कहना ठीक होगा कि सब प्राकृत संस्कृत से निकली हैं, परन्तु यदि संस्कृत से हमारा

अभिप्राय केवल पाणिनीय सस्कृत का हो तो यह कहना ठीक न होगा कि कोई भी प्राकृत सस्कृत से निकली है, सिवाय इसके कि मध्यदेश की शोरसेनी प्राकृत मध्यदेश की उसी प्राचीन लौकिक भारती से निकली है जिस के आधार पर प्रायः सस्कृत बनी है । पाश्चात्य विद्वानों ने प्राकृत शब्द का प्रयोग इन अर्थों में किया है—

(१) वे विशेष भाषाएँ जिनका भारतवर्ष में प्राकृत शब्द से उल्लेख किया जाता है । जैसे—माहाराष्ट्री, या सस्कृत नाटकों के प्राकृत अंश ।

(२) मध्यम भारती युग की भाषाएँ (कभी २ पाली और पूर्व कालीन उत्कीर्ण लेखों की भाषाओं को प्राकृत से पुरानी अवस्था की होने के कारण पृथक् भी कर दिया जाता है) ।

(३) साहित्यिक और शिष्ट भाषा से भिन्न सहजन्य लोक भाषा के लिये । इस अन्तिम अर्थ में कई लेखक प्राकृत के तीन भेद करते हैं—प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्राकृतें जो तीनों बड़े युगों की सहजन्य लोक भाषाएँ थीं* । लौकिक भाषा के इन उत्तरोत्तर रूपों के आधार पर कई एक साहित्यिक भाषाओं का जन्म हुआ जो समय पाकर परिवर्तन से मुक्त हो स्थिर रूप हो गईं और अपने २ समय की तथा सदा परिवर्तनशील लोक-भाषाओं के साथ २ व्यवहृत होती रही हैं ।

* भारतीय भाषाओं के अद्वितीय विद्वान् सर जॉर्ज ग्रियर्सन का यह मन्तव्य है ।

अध्याय दूसरा ।

प्राकृतें ।

पाली को छोड़कर प्रधान साहित्यिक प्राकृतें ये हैं—

महा० = महाराष्ट्री	}	नाटकीय प्राकृतें ।
शौ० = शौरसेनी		
माग० = मागधी		
अमा० = अर्धमागधी	}	जैन साहित्य की प्राकृतें ।
जैम० = जैन महाराष्ट्री		
जैशौ० = जैन शौरसेनी		
अप० = अपभ्रंश		

नाटकीय प्राकृतें

महाराष्ट्री सब से उत्तम प्राकृत गिनी जाती थी। महाकवि दण्डी अपने काव्यादश में लिखता है—महाराष्ट्राश्रया भाषा प्रकृष्ट प्राकृत विदुः (अ० १, श्लो० ३५) अर्थात् कवि लोग महाराष्ट्र देश में प्रचलित महाराष्ट्री प्राकृत को सब से उत्तम मानते थे। प्राकृत व्याकरणों में सब से पहिले इसी का वर्णन रहता है। दूसरी प्राकृतों के विषय में उनके विशेष नियम देकर कह दिया जाता है 'शेष महाराष्ट्रीवत्' अर्थात् शेष महाराष्ट्री की भाँति जानो।

नाटकों के ली पाद्य यात चीत तो शौरसेनी में करते हैं परन्तु अपने गीत महाराष्ट्री में गाते हैं। महाराष्ट्री के गीत महाराष्ट्र देश की सीमा को लाघरर बहुत दूर तक प्रचलित हो गए थे।

इसी भाषा में “गउडवहो” आदि प्राकृत महाकाव्यों की रचना हुई है। दक्षिणी कवियों की इस भाषा में स्वर मध्यवर्ती व्यञ्जनों के लोप का नियम अन्य प्राकृतों की अपेक्षा अधिक लागू है [देखिये पेरा १०]। गीतों की साहित्यिक भाषा में ऐसा होना स्वाभाविक बात है क्योंकि गीत में राग की मधुरता और रस प्रधान होते हैं। शब्दों या शब्दरूपों की परिच्छिन्नता गौण रहती है। यह भी नहीं समझना चाहिये कि महाराष्ट्री केवल कवि कल्पित भाषा है। महाराष्ट्र देश की प्राचीन लोकिक भाषा इसका आधार भूत है, और इस की कई एक विशेषताएँ ऐसी हैं जो आधुनिक मराठी में अब तक विद्यमान हैं।

शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश की भाषा थी। इसका यह नाम इसलिये पड़ा कि यह मथुरा के आस पास शूरसेन देश में प्रचलित थी। संस्कृत नाटक की यह सामान्य प्राकृत है। क्लीपात्र और विदूषक इसी में संभाषण करते हैं। कर्पूरमञ्जरी में तो राजा भी इसी में बोलता है। औरों की अपेक्षा यह प्राकृत पाणिनीय संस्कृत से अधिक समान है। इस का विकास उसी देश में हुआ जिस में संस्कृत का, और यह भी उसी लोकिक भाषा की सतान है जो बहुत करके संस्कृत की आधार भूत है। इस प्रकार यह संस्कृत और हिन्दी [या पश्चिमी हिन्दी जो साहित्यिक हिन्दी का आधार भूत है] के बीच एक मध्यम अवस्था को प्रकट करती है। परन्तु संस्कृत से अपनी घनिष्ठ समानता के कारण शौरसेनी कुछ दूरी ही रही। इस पर संस्कृत का निरन्तर प्रभाव पड़ता रहा और यह स्वतन्त्रता से अधिक उन्नति न कर पाई।

मागधी पूर्व प्रान्त की प्राकृत है। इसका केन्द्र प्राचीन मगध देश था जिस से कुछ ही परे आजकल बिहारी भाषा की “मगही” बोली बोली जाती है। नाटकों में मागधी को नीच पात्र बोलते हैं। मागधी की उपमाणाएँ भी पाई जाती हैं। जैसे—मृच्छकटिक में ढकी उपमाणा। वर्ष विकार में यह प्राकृत अन्य प्राकृतों से बहुत

भेद रखती है । इसमें सस्कृत 'स' को 'श' और 'र' को 'ल' हो जाता है । 'य' यथास्थित रहता है वल्कि 'ज' का भी 'य' होजाता है । अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों का प्रथमा एकवचन एकारान्त बनता है । [अन्य विशेषताओं के लिये देखिये अध्याय १०] । जहा और प्राकृतों में 'हन्यो' [स० हस्त] रूप होता है वहा मागधी में 'हस्ते' रूप है । और प्राकृतों में "सो राज्ञा" [स० स राजा], मागधी में "शे लाञ्छा" ।

जैन प्राकृत

प्राचीन जैन सूत्रों की रचना अर्धमागधी में हुई । यह प्राकृत शूरसेन और मगध के बीच (अवध के पास) के प्रदेश की लौकिक भाषा का साहित्यिक रूप है । इस का उच्चारण कुछ अशों में मागधी से मिलता है । शूरसेनी की अपेक्षा इस के अन्दर पुराने व्याकरणिक रूप अधिक पाए जाते हैं और यह सस्कृत के प्रभाव से बहुत घनी है ।

भैरव्यर सम्प्रदाय के आगम-याज्ञ ग्रन्थ माहाराष्ट्री के एक रूपान्तर में रचे हुए हैं । इस प्राकृत को जैन माहाराष्ट्री कहते हैं ।

दिगम्बर सिद्धान्त ग्रंथों की भाषा कितने ही अशों में शूरसेनी से मिलती है, अतः इसे जैन शूरसेनी कहते हैं ।

अपभ्रंश

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग भारतवर्ष में इन अर्थों में हुआ है—

(१) सस्कृत को शुद्ध और शिष्ट भाषा मानकर जो रूप भी उस से किसी अश में भिन्न हो ।

(२) साहित्यिक प्राकृतों से पृथक् लौकिक भाषाओं के लिये चाहे वे आर्य हों या अनार्य ।

(३) इन लौकिक भाषाओं के साहित्यिक रूप के लिये ।

व्याकरण ग्रन्थों में केवल एक ही साहित्यिक अपभ्रंश अर्थात् नागर अपभ्रंश का विस्तृत वर्णन मिलता है और वह गुजरात प्रान्त की दिखाई पड़ती है । विद्वानों का कहना है कि सिंध देश की प्राच्य अपभ्रंश भी इसी से मिलती जुलती थी । कभी २ प्रधान प्राकृतों के ढाँची आदि रूपान्तरों का अपभ्रंश शब्द से उल्लेख किया जाता है । जिन जिन प्रदेशों में प्रधान प्राकृत प्रचलित थीं अगर वहाँ बोली जाने वाली अपभ्रंशों में लेख, ग्रन्थ आदि कुछ सामग्री विद्यमान होती तो भारतीय भाषाओं के इतिहास की एक भारी झुट्टि पूर्ण होजाती । तथापि जो कुछ सामग्री मिलती है उस से अपभ्रंशों की उच्चारण तथा व्याकरण सम्बन्धी सामान्य प्रवृत्तियों को जान कर हम प्रधान प्राकृतों और आधुनिक भाषाओं के बीच के अंतर की पूर्ति कर सकते हैं । खोज करने पर अपभ्रंश के दिन प्रतिदिन नये नये ग्रन्थ मिलते जाते हैं और इन से हेमचन्द्र कृत व्याकरण में दिये हुए अपभ्रंश व्याकरण की वृद्धि हो रही है ।

नाटक में भिन्न भिन्न प्राकृतों के प्रयोग पर प्राकृत साहित्य का वर्णन करते समय ग्यारहवें अध्याय में विचार किया जायगा । दूसरी छोटरी प्राकृतों, पेशाची प्राकृतों तथा उत्कीर्ण लेखों में प्रयुक्त प्राकृतों के विस्तृत वर्णन तथा उन के परस्पर सम्बन्ध के विषय में प्राकृतों का वर्गीकरण करते समय दसवें अध्याय में विचार किया जायगा ।

तीसरा अध्याय ।

प्राकृत के सामान्य लक्षण ।

प्राचीन भारती की भाति पाली और प्राकृत सन्श्लेषात्मक भाषाएँ रही। परन्तु प्राचीन भारती की अपेक्षा इन की रूप रचना बहुत कुछ सरल हो गई थी। इन में विभक्ति तथा लकार रूपों की संख्या कम होती जाती थी। इतर वेदों की अपेक्षा ऋग्वेद में इन रूपों का बड़ा वैविध्य है। पाणिनीय संहिता में से कई एक रूप जो ब्राह्मण ग्रन्थों में पाए जाते थे लुप्त हो गए हैं। उद्धृत से ऐसे रूप जो गीत और नाटकीय माहाराष्ट्री तथा शोमसेनी में नहीं मिलते पाली और पुरानी अर्धमागधी में विद्यमान हैं। अतः अपभ्रंश में प्राचीन रूप रचना के उचे सूचे रूपों के शीघ्र होनेवाले विनाश की सूचना मिलती है। समय आ रहा था जब कि प्रातिपदिक के लगने वाले विभक्ति प्रत्ययों की संख्या घटने लगी थी और एक काल और दो वृद्धता को छोड़ दिया के शेष रूप नष्ट हो जाए। रूप रचना के इस प्रकार क्षिप्त भिन्न हो जाने से धातु का अर्थ सदिग्ध रहने लगा और इस अधःसदिग्धता को दूर करने के लिये नए उपायों की खोज हुई और प्राचीन भाषा के अवशेषों में आधुनिक विश्लेषात्मक भाषाओं का जन्म हुआ।

इतना सरल हो जाने पर भी शेष प्राकृत व्याकरण उत्तीर्ण का है जैसा कि संस्कृत व्याकरण। प्राकृत व्याकरण में सज्ञा, विशेषण और सर्वनाम की रूपरचना को समरूप बनाने की अर्थात् अकारान्त सज्ञा के रूपों के ढग पर लाने की एक बड़ी चलवान् प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी प्रकार क्रिया की रूपरचना में भ्वादि गण के रूपों का अनुकरण देखा जाता है। सम्प्रदान कारक के रूप

लुप्त हो गए हैं । प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन रूप एक समान होते जाते हैं । प्राकृत की मझली अवस्था तक लड़, लिद और विविध प्रकार के तुड़ रूप लुप्त हो चुकते हैं । द्विवचन की आवश्यकता ही नहीं रहती । पुरानी प्राकृत के पश्चात् आत्मनेपदी रूप इके दुके ही बचे, और वे भी अपने आदिम अर्थ को छोड़ बैठे । ऐसा होने पर भी कारक और क्रिया का अर्थ स्पष्ट करने के लिये कारकायय और सहायक क्रियाओं की अभी तक आवश्यकता नहीं पड़ी । साधारण बोल चाल तथा काव्य निर्माण के लिये आवश्यक सामग्री और शक्ति अपभ्रंश अवस्था तक प्राकृत में विद्यमान रही । महत्प्रशाली और सूक्ष्म विचारों को प्रकट करने के लिये संस्कृत को काम में लाने का रिवाज पड़ गया था । चूँकि पाली, अर्धमागधी और इतर जैन प्राकृतों अपने समय अथवा देश की प्रधान भाषा होने के पद को एक एक कर के खो वेठी थीं इस लिये वे इस रिवाज का सामना न कर सकीं और अंत में इन का स्थान संस्कृत ने छीन लिया ।

उपर्युक्त सरलता के अतिरिक्त प्राकृत में जो और परिवर्तन हुए हैं वे प्रधानतया वर्णविकार अर्थात् उच्चारण से सम्बन्ध रखते हैं । संयुक्त व्यंजनों की प्रायः समावेश हो जाता है । “रक्त” शब्द का “रत्त” हो गया (जैसे लैटिन भाषा के “फ्रुक्तुस” Fructus शब्द का इटालियन भाषा में “फ्रुत्तो” Frutto), सप्त का सत्त हो गया (जैसे-लैटिन “सेप्टेम्” septem का इटालियन ‘सेत्त’ sette) । प्राचीन भारती के कई एक वर्णों का भी प्राकृत में सर्वथा अभाव हो गया है, जैसे—ऋ, ॠ, ए, लृ, ऐ, औ, य, श, ष तथा विसर्ग । इन में से मागधी में य रहता है बल्कि “ज” के स्थान में भी ‘य’ का आदेश हो जाता है । इतर कई प्राकृतों में जहाँ व्यंजन लोप से दो स्वर पास पास रह जाते हैं उन के मध्य ‘य’ का आगम होता है । ‘श’ केवल मागधी में रहता है और वहाँ प, स के स्थान में भी श का आदेश हो जाता है । ह्रस्व ए, ओ (ऐ, औ) ऐसे वर्ण हैं

जो प्राकृत में तो पाए जाते हैं परन्तु जो संस्कृत में व्युत्पन्न नहीं होते हैं। पञ्चात व्यञ्जनों का लोप हो जाता है। ह्रस्व* स्वर के पश्चात् दो से अधिक व्यञ्जन और दीर्घ स्वर के पश्चात् एक से अधिक व्यञ्जनों नहीं आ सकते थे।

[विस्तार के लिये देखिये अध्याय ४ तथा ५]

किसी २ शब्द पर इन सब परिवर्तनों का युगपत् ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उसका रूप सर्वथा बदल गया है। “वष्पइराग्र” शब्द भट्ट ने “वास्पतिराज” का बोध नहीं कराता। ‘ओइअ’ शब्द “अवर्तार्ण” से जितना भिन्न है। यद्यपि कुछ शब्द ऐसे हैं जो सर्वथा संस्कृत के सदृश हैं तथापि अधिक संख्या ऐसे शब्दों की है जो भली प्रकार संस्कृत जाननेवाले को अपने संस्कृत पर्याय का भट्ट बोध करा देते हैं। यह बात न केवल शीर्सेनी के विषय में किन्तु दूसरी प्राकृतों के विषय में भी सत्य है।

इस स्थिति को देखकर कहा जा सकता है कि पढ़े लिखे लोग इन विविध भाषाओं को आपस में समझ लेते थे। जो पुरुष संस्कृत बोल सकता था उस की मातृभाषा इन प्राकृतों में से किसी एक का लैटिन रूप होती थी और वह सब प्रकार की साहित्यिक प्राकृतों को आसानी के साथ समझ सकता था। संस्कृत को न भी जानने वाला पुरुष जो शीर्सेनी भाषी होता था बहुत से संस्कृत शब्दों को भट्ट समझ लेता था और संस्कृत धातु का स्थूल अर्थ भी ग्रहण कर लेता था। पुरानी अवस्था में तो यह भेद और भी कम था। अगर हम और भी पीछे जाएं तो यह भेद केवल इतना ही रह जाता है जितना शुद्ध और अशुद्ध उच्चारण में होता है, अथवा व्याकरण सिद्ध और असिद्ध रूपों में, अथवा सव्यसम्मत शिष्ट और

* हरण ए ओ को प्रकट करने के लिये देवनागरी में कोई चिह्न नहीं। सरू जान भिषसर्न में उल्टे ए, तथा ‘ओ’ की उल्टी मात्रा का प्रयोग किया है। देखिये ‘हिन्दुस्तानी’ जनवरी सम् १९३१ पृष्ठ १२० [अनुवाक]।

ग्रामीण भाषा में । यह भेद ऐसा है जो प्रायः एक ही भाषा बोलने वाले पढ़े हुए और अनपढ़ लोगों की बोली में हुआ करता है ।

यद्यपि इस अवस्था में भी भेद तो पाया जाता था परन्तु नवीन भाषा ने अभी स्वतन्त्र रूप धारण नहीं किया था । अभी यह इतनी विलक्षण नहीं बन गई थी कि पृथक् भाषा बनकर अपना ही व्याकरण और साहित्य पढा कर देती ।

प्राकृत प्रवृत्ति के चिह्न तो ऋग्वेद में भी पाए जाते हैं अर्थात् कई शब्दों में ठीक उसी प्रकार का वर्णभ्रम हुआ है जो आगे चलकर प्राकृतों में देखा जाता है । जैसे—अथ धातु का सप्रसारण करके अथिधिर रूप बनना चाहिये था परन्तु ऋग्वेद में शिथिर (ऋ को इ आदेश करके जो प्राकृत में प्रायः होता है) पाया जाता है । इस प्रकार के उदाहरणों से यह तो अनुमान नहीं करना चाहिये कि छन्दों की भाषा और तत्कालीन साधारण बोल चाल की भाषा में कुछ अधिक भेद था, चरित्र छन्दों की भाषा में प्राकृत प्रवृत्ति के चिह्न इस बात की सूचना करते हैं कि अपि लोग इन रूपों को छन्दोभाषा के ही रूपान्तर समझते थे और उन्हें दोनों प्रकार की भाषा (अर्थात् छन्दोभाषा और साधारण बोल चाल की भाषा) में किसी अन्तर की प्रतीति न होती थी ।

यूरोप की रोमक भाषाओं के इतिहास और आर्य भारती के इतिहास में आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है । प्राचीन इटालिक की कई बोलियाँ थीं जिन में से लैटिन जाति की बोली ने मुख्य पद प्राप्त किया । इस तरह लैटिन पहिले सारे इटली देश की ओर फिर समग्र रोम राज्य की प्रधान भाषा बन गई । यह मध्यम युग में (आठवीं से पंद्रहवीं शताब्दी तक) ईसाई धर्म की सब से बड़ी सम्प्रदाय की भाषा बनी और जब तक यूरोप की आधुनिक भाषाओं ने अपना आधिपत्य न जमा लिया तब तक विज्ञान और दर्शन की भाषा बनी रही । जिस प्रकार भारतवर्ष में भिन्न २ प्रान्तों के शिक्षित

लोगों की सांभली भाषा सरलत थी इसी प्रकार यूरोप में विरपान
तब लैटिन भाषा रही ।

इस के अतिरिक्त धार्मिक भाषा होने के कारण पादरी लोग
सर्वदा लैटिन बोलते थे । साधारण लोग भी हमारे कतिपय वाक्य
याद कर लेते थे । उस समय का धर्म या अध्यापक चाहे नितान्त
ही थोड़ा क्यों न पढ़ा हो, कुछ न कुछ लैटिन बोलने की चेष्टा जरूर
करता था । परंपरित और अनुकूलता आदि ने प्राचीन व्याकरण
को इतना सरल बना दिया कि आधिरवार अर्थ में सन्देश मिटाने
के लिये कारकात्म्य और मदायक क्रिया का प्रयोग करना पड़ा ।

इस बात पर भी कुछ विचार किया गया है कि उन परिघटननों
का जो आर्य भारती की प्राकृत अवस्था में दिगार देते हैं क्या
कारण था । योरोप में धर्मसाधक, गरीब तथा राज समाजों द्वारा
भाषा का उत्तरोत्तर सम्मार्जन, गरम जल वायु का शैथिल्योत्पादक
प्रभाव, जिन आर्य जातियों ने आर्य भाषा को अपनाया उन की
अपनी बोली का प्रभाव—ये सब कारण भारत तथा यूरोप में काम
करते रहे होंगे ।



चौथा अध्याय ।

वर्णविकार ।

असंयुक्त व्यञ्जन ।

§ १—आदिम । साधारण नियम यह है कि नृ, यृ, शृ और पृ को छोड़कर शब्द के आदिम असंयुक्त व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता । परन्तु—

नृ का ण हो जाता है (देखिये पैरा ७) । यृ का जू हो जाता है (मागधी के सिद्धान्त) जघा=यघा (माग० यघा), जइ=यदि, शी० जदि, (माग० यइ, यदि), जोगी=योगी । शृ और पृ का सृ हो जाता है (पैरा ८) ।

§ २—जब असंयुक्त व्यञ्जन किसी समास के दूसरे या तीसरे शब्द की आदि में हो तो प्रायः उस में वही विकार आता है जो स्वर मध्यवर्ती असंयुक्त व्यञ्जन में आता है । बहुधा उपसर्ग के परे धातु के आदि व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता—पुत्त=पुन, परन्तु आर्यपुन से अञ्जउत्त बनता है । महा० पञ्चामेइ=प्रकाशयति शी० आञ्चद वा आगद=आगतम् (महा० आञ्च वा आगञ्च) ।

§ ३—निपातों की भी यही दशा है । किं उण=किं पुन, वि=(अ)पि; अ=च । तावत् और ते (सर्वनाम मध्यम ६१) के आदि त् को शी० और माग० में स्वर मध्यवर्ती त् की भांति दृ हो जाता है । मा दाव=मा तावत्; ण दे=न ते, पिडुणो दे=पितुस्ते, तदो दे=ततस्ते ।

§ ४—कई प्राकृतों में “भू” धातु से व्युत्पन्न शब्दों में भू का ह हो जाता है ।

लोगों की सामी भाषा बनना थी इसी प्रकार यूरोप में विरपाल तक लैटिन सामी भाषा रही ।

इसके अतिरिक्त धार्मिक भाषा होने के कारण पारसी लोग मर्यादा लैटिन बोलते थे । साधारण लोग भी इसके कतिपय वाक्य याद कर लेते थे । उस समय का धर्म या अध्यापक छोटे बिलाल ही छोड़ा क्यों न पड़ा हो, कुछ १ कुछ लैटिन बोलने की चेष्टा कर रहा करता था । यद्यपि और अनुरूपता आदि ने प्राचीन व्याकरण की इतना सरल बना दिया कि आधुनिक अर्थ में सन्देश मिटाने के लिये आवश्यक और सहायक विषय का प्रयोग करना पड़ा ।

इस बात पर भी कुछ विचार किया गया है कि उन परिवर्तनों का जो आर्य भारती की भारत अवस्था में दिखाई देने के कारण था । बोलने में धर्मलाघव, गणों तथा राज समाजों द्वारा भाषा का उत्तरोत्तर सम्मान, गरम जल वायु का शैथिल्योत्पादक प्रभाव, पितृ आचार्य जातियों ने आर्य भाषा को अपनाया उन की अपनी बोली का प्रभाव—ये सब कारण भारत तथा यूरोप में काम करते रहे होंगे ।

चौथा अध्याय ।

वर्णविकार ।

असंयुक्त व्यञ्जन ।

§ १—आदिम । साधारण नियम यह है कि नृ, यृ, शृ और पृ को छोड़कर शब्द के आदिम असंयुक्त व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता । परन्तु—

नृ का ण हो जाता है (देखिये पेरा ७) । यृ का जू हो जाता है (मागधी के सिवाय) जधा=यथा (माग० यधा), जइ=यदि, शौ० जदि, (माग० यइ, यदि), जोगी=योगी । शृ और पृ का सृ हो जाता है (पेरा ८) ।

§ २—जब असंयुक्त व्यञ्जन किसी समास के दूसरे या तीसरे शब्द की आदि में हो तो प्रायः उस में वही विकार आता है जो स्वर मध्यवर्ती असंयुक्त व्यञ्जन में आता है । बहुधा उपसर्ग के परे धातु के आदि व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता—पुत्त=पुन, परन्तु आर्यपुत्र से अज्जउत्त बनता है । महा० पआग्नेइ=प्रकाशयति शौ० आअद वा आगद=आगतम् (महा० आअअ वा आगअ) ।

§ ३—निपातों की भी यही दशा है । किं उण=किं पुन, वि=(अ)पि, अ=च । तावत् और ते (सर्वनाम मध्यम ६१) के आदि त् को शौ० और माग० में स्वर मध्यवर्ती त् की भांति द् हो जाता है । मा दाय=मा तायत्, ख दे=न ते, पिदुणो दे=पितुस्ते, तयो दे=ततस्ते ।

§ ४—ई प्रावृत्तों में “भू” धातु से व्युत्पन्न शब्दों में भू का र् हो जाता है ।

तोंगों की सामी भाषा सस्तरत थी इसी प्रकार यूरोप में चिरकात तक लैटिन सामी भाषा रही ।

इस के अतिरिक्त धार्मिक भाषा होने के कारण पादरी लोग सर्वदा रोटिन बोलते थे । साधारण लोग भी इसके फतिपय वाक्य याद कर लेते थे । उस समय का वैद्य या अध्यापक चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न पढ़ा हो, कुछ न कुछ लैटिन बोलने की चेष्टा जरूर करता था । यणचिफार और अनुरूपता आदि ने प्राचीन व्याकरण को इतना सरल बना दिया कि आखिरकार अर्थ में सन्देह मिटाने के लिये कारकाव्यय और सहायक क्रिया का प्रयोग करना पड़ा ।

इस बात पर भी कुछ विचार किया गया है कि उन परिवर्तनों का जो आर्य भारती की प्राकृत अवस्था में दिखाई देते हैं क्या कारण था । बोलने में भ्रमलाघव, नगरों तथा राज नमाओं द्वारा भाषा का उत्तरोत्तर सम्मार्जन, गरम जल वायु का शैथिल्योत्पादक प्रभाव, जिन अनार्य जातियों ने आर्य भाषा को अपनाया उन की अपनी बोली का प्रभाव—ये सब कारण भारत तथा यूरोप में काम करते रहे होंगे ।

चौथा अध्याय ।

वर्णविकार ।

असंयुक्त व्यञ्जन ।

§ १—आदिम । साधारण नियम यह है कि न, य, श् और प् को छोड़कर शब्द के आदिम असंयुक्त व्यञ्जनों में कोई परिवर्तन नहीं आता । परन्तु—

न का ण हो जाता है (देखिये पैरा ७) । य का ज हो जाता है (मागधी के सिवाय) जघा=यथा (माग० यघा), जह=यदि, शी० जदि, (माग० यह, यदि), जोगी=योगी । श् और प् का स् हो जाता है (पैरा ८) ।

§ २—जब असंयुक्त व्यञ्जन किसी समास के दूसरे या तीसरे शब्द की आदि में हो तो प्रायः उस में वही विकार आता है जो स्वर मध्यवर्ती असंयुक्त व्यञ्जन में आता है । बहुधा उपसर्ग के परे धातु के आदि व्यञ्जन में कोई परिवर्तन नहीं आता—पुत्त=पुत्र, परन्तु आर्यपुत्र से अज्जउत्त बनता है । महा० पआसेह=प्रकाशयति शी० आअद वा आगद=आगतम् (महा० आअअ वा आगअ) ।

§ ३—निपातों की भी यही दशा है । किं उण=किं पुन, वि=(अ)पि, अ=च । तावत् और ते (सर्वनाम मध्यम ६१) के आदि त् को शी० और माग० में स्वर मध्यवर्ती त् की भाँति द् हो जाता है । मा दाव=मा तावत्, ख दे=न ते, पिदुखो दे=पितुस्ते, तदो दे=ततस्ते ।

§ ४—कई प्राकृतों में “भू” धातु से व्युत्पन्न शब्दों में भू का ह हो जाता है ।

महा० होइ=भवति [शौ० मोदि] ।

शौ० ह्यिस्वरि, माग० ह्यिस्वरि=मयिष्यति, शौ०, माग० होइव्य=मयितव्य ।

§ ५—यमां ० प चय समन्त पद के दूसरे शब्द के आदि में हो तो यमा ही रहता है ।

शौ० त्रिषफलश्च=त्रिषफलर, बहुफल, सफल ।

§ ६—महाप्राण विधि ।

प के स्थान में रु रुञ्ज=रुञ्जः, गेल=ग्रीह । [सम्भृत में भी "गेतो, दितो" के अर्थ में गेल् धातु रामायण में मिलता है । यह गेल् सम्भृत में प्राकृत से लिया गया है]

पु के स्थान में फ—शौ० फलस, महा० पपस=पतस "पप प्रकार का फल" श, पु, का महाप्राण छ् हो जाता है । जैसे अमा० ध्राय, पा० ध्राप=शाय या शान । महा० अमा० छु-पद छट्ट=पष्ट ।

§ ७—उच्चारण के स्थान परिवर्तन के उदाहरण ।

दत्त के स्थान में ताल-य—महा० चिट्ठि, शौ० चिट्ठिदि, माग० चिष्ठिदि=तिष्ठति ।

दत्त के स्थान में मूर्धन्य—महा० दत्त=ध्याइया 'काग' । न के स्थान में ण—णण=नूनम्, गुणण=नया ।

§ ८—श पु, छ्—इन तीनों के स्थान में दन्त्य श् हो जाता है । [परंतु मागधी में ताल-य श् होता है] ।

§ ९—स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जन । स्वरमध्यवर्ती ह, ग, घ, ङ, त्, द् का प्रायः लोप हो जाता है ।

महा० लोश्च=लोक, सञ्चल=सकल, अणुराश्च=अनुराग, जुञ्चल=युगल, शञ्चर=नगर, पञ्चर=प्रचुर, मोञ्चण=भोजन, रसाञ्चल=रसातल, हिञ्चश्च=हृदय ।

का सर्वदा लोप होता है ।

विश्रोत्र=रियोग, पित्र=प्रिय ।

नोट—लुप्त व्यञ्जन के स्थान में य् का उच्चारण होता था जिस का प्रयत्न बहुत राघु होता था (लघुप्रयत्नतर-यकार) । यह यकार सस्वरुत और मागधी के यकार की अपेक्षा बहुत कम ध्रुति गोचर होता था और लिखने में प्रकट नहीं किया जाता था परन्तु जैन लिपिकार अपने ग्रन्थों में इसे प्रकट करते थे । यथा—अमा० हियय=हृदय ।

§ १०—स्वरमध्यवर्ती असयुक्त व्यञ्जनों को लोप करने का नियम गीतों की महाराष्ट्री में बहुत लागू हुआ जिसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अर्थों में अस्पष्टता आ गई । कइ शब्द कति, कपि या कपि का रूप हो सकता है । उअअ (=उवरु) आदि शब्द स्वरों की लड़ी से रह गये हैं और मूल शब्द का सय स्वरूप जो धेरे हैं । व्यञ्जनों का यह लोप इस बात को प्रकट करता है कि अप्रेजी भाषा के व्यञ्जनों की अपेक्षा भारती व्यञ्जन बहुत निर्वल थे । प्रतिदिन व्यवहार में आने वाली भाषायें कुछ सुरक्षित रहीं । हेम चन्द्र के कथनानुसार अपभ्रंश में स्वरमध्यवर्ती “क, त्, प” का लोप नहीं हुआ किन्तु वे कम से “ग, द, ब,” बन गए । अप० शाअगु=नायक, आगदो=आगत, समलउ=सफलकम् । किसी २ प्राकृत शब्द में भी यह परिवर्तन मिलता है । प्राचीन प्राकृत में (जैसे पाली में) क, त्, प, वैसे ही रहते हैं अथवा कभी ग, द, ब बन जाते हैं । सागल=साकल ।

§ ११—उदाहरण—

शोरसेनी-अदिधि=अतिथि, कधेदु=कथयतु, पारिदोसिअ=
पारितोषिक, भोदि=भवति, कधिदो=कथित, किराद=किरात,

आणेदि=आनयति, तदो=तत, विद=वृत्, गद=गन, सजद=सरस्वत, सरस्वदी=सरस्वती ।

मागधी—पालिदोशिच=पारितोषिक, शाअद=स्वागतम्, दगे=
*अद्व जो अहम् शब्द से बना है । अर्धमागधी और जैन मद्रा
राष्ट्री—असोग=अशोक, सोग=सोक, आगाम=आकाश ।

पाली—लोक मञ्जुति, रूप ।

§ ११—स्वरमध्यमवर्ती 'त्' का यह विकार ग्राह्यीय और
सेनी और मद्राष्ट्री में एक सांख्यिक भेद है—

शौरसेनी	मद्राष्ट्री	सरस्वत
जाणादि	जाणाइ	जाणानि
पदि	पइ	पति
दिद	दिअ	दिन
पाउद	पाउअ	प्राहृत
मरगद	मरगअ	मरफत
लश	लआ	लना
ठिद	ठिअ	स्थित
पहुदि	पहुइ	मभृति
सद	सअ	शत
पद	पय	पतद्

§ १२—स्वरमध्यमवर्ती ए, ए, ध, ध, फ, और स, को प्राकृत
में प्रायः ह, हो जाता है । यथा—मुह=मुष, सही=सगी, मेह=मेघ,
लहुअ=लघुक, जूह=यूय, रुहिर=रुधिर घह=वधू, सहर=शफर,
अदिणय=अभिनय, रुह=नमस या=(नय) ।

§ १४—यह भी शौरसेनी, मागधी तथा अय कई उप
प्राकृत अघोष ध के स्थान में घ का आदेश करती है । यथा—

शौ० अदिधि, कधेदु, तथा, अघ, जघा=यथा । माग० यघा=यथा, तथा ।
(पाली में अघोप ध्, वना रहता है । यथा—अथ, यथा, तथा) ।

शौरसेनी और माहाराष्ट्री में यह एक और लाक्षणिक भेद है ।
यथा—

शौरसेनी	माहाराष्ट्री	संस्कृत
अघ	अह	अथ
मणोरध	मणोरह	मनोरथ
कधं	कह	कथम्
णाध	णाह	नाथ

§ १५—किसी २ शब्द में स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जन लोप होने (§ ६)
अथगा ह् यनने (§ १३) के स्थान में द्विर्भाव को प्राप्त होजाता है ।
यथा—शौ० उज्जु=अज्जु, माह० एक्कप्प=नप्प, माह० शौ० एक्क=एक ।

नोट १—दूसरे व्यञ्जन भी द्विर्भाव को प्राप्त होते हैं । यथा—
जोवण=योवन, तेज्ज=तेल, पेम्म=प्रेमन् ।

नोट २—द्विर्भूत व्यञ्जन के पूर्ववर्ती स्वर सदा ह्रस्व होता है ।
यहा ए, ओ ह्रस्व स्वर है (§ ६८) ।

नोट ३—महाप्राण व्यञ्जन का द्विर्भाव करते समय उस के पूर्व
तत्स्थानीय अल्पप्राण रक्षता जाता है । यथा—फप्प, ग्घ आदि ।

कई एक पुस्तकों में महाप्राण व्यञ्जन को ही दो बार लिखते हैं ।
यथा—एख, छ्छ आदि । यह केवल लिपि भेद है, उच्चारण वही
अर्थात् फप्प, ग्घ, च्छ आदि है ।

§ १६—द, द् का प्राकृत में ह्, द् हो जाता है । पड्=पट्,
पडाअ=पटाक, कुडिल=कुटिल, कुडुम्ब=कुटुम्ब, वड्=वट्, पदरु=
पठन । किसी २ शब्द में द् का ह् यनकर फिर ह् का द् हो जाता

है (§ २२) । माह० क्कोळ=कूकोट, माग० शञ्जळ=शकट
(शौ० सञ्जड), माग० यूळक=जूटक (शौ० जूडञ्ज)

§ १७—यदि प् का लोप न हुआ हो तो उसका प् बन जाता है । यथा—रुव=रूप, दीव=दीप (हि० दीवाली), उवरि=उपरि, उवञ्जरण=उपकरण, उवज्झाञ्ज=उपाध्याय (हि० ओझा), अनि=अधि, अवर=अपर (हि० और), तान=ताप ।

§ १८—प् का प् बन जाता है । यथा—कविल=कविल, सधर=शहर ।

§ १९—महाप्राण विधि । किसी किसी प्राकृत शब्द में सरलत क का ख हो जाता है (§ ६) । शब्द के मध्य में फिर इस ख का ह हो जाता है । यथा—माह० खिहम=निश्चय, माह० शौ० फलह=स्फटिक । द का द होकर ह बन जाता है । यथा—

अमा० घद=घट । द का ह होकर ह बन जाता है । यथा—
माह० भरह=मरत, वसहि=वसति । प का फ होकर भ बन जाता है । यथा—अमा० वच्छम=वच्छप ।

कभी र न, म् ल भी महाप्राण बन जाते हैं । यथा—माह० एहायिञ्ज (शौ० माग० एहायिद)=नापित । वास्तव में एहायिञ्ज शब्द का धातु से व्युत्पन्न आपित शब्द से बना है ।

अमा० रहसुण (कभी लसुण भी)=राशुन (देखिये § ३०) । कभी महाप्राणत्व का व्यत्यय हो जाना है । जैसे—माह० दिहि=धृति (धृति का पहिले दिथि बना, फिर दिथि का दिहि हो गया)
माह० धूञ्जा, शौ० माग० धूदा=दुहिता, शौ० माग० यहिणी=मगिनी
माह० येजु=प्रदीपुम् (धृजुम्) ।

कभी किसी धर्ण के महाप्राणत्व का लोप होजाता है। जैसे—शौ० सरुला=रुहला, परन्तु सग्यला और सिग्यला रूप भी पाए जाते हैं ।

§ २०—उच्चारण स्थान का परिवर्तन ।

दन्त्य के स्थान में मूर्धन्य—

पडि=प्रति, माह० पडिअ, शौ० माग० पडिद्=पतित, पदम=प्रथम ।

इस प्रकार की मूर्धन्यविधि के अर्धमागधी में बहुत उदाहरण मिलते हैं। जैसे—ओसद=ओपध (माह० शौ० ओसह)। कई प्राकृतों में न् का नियम पूर्वक ल् हो जाता है जैसे—खण्ण, खण्ण ।

§ २१—ऊष्म । सस्त्र के तीनों ऊष्म अर्थात् श्, प् और स् प्राकृत में स् हो जाते हैं (केवल मागधी में ख के स्थान में श् हो जाता है) । जैसे—माह० शौ० असेस=अशेष, माग० केशेशु=केशेषु (शौ० माह० केसेसु) ।

§ २२—ङ के स्थान में कई चार द् हो जाता है । जैसे—माह० गरुळ=गरुड (शौ० गरुड, माग० गरुड्), माह० शौ० कीळा=क्रीडा ।

उत्तर भारतवर्ष में मुद्रित तथा लिपित पुस्तकों में ङ के स्थान में ल् ही व्यवहृत होता है ।

§ २३—किसी ० शब्द में त् ओर द् को ल् अथवा ळ हो जाता है । जैसे—शौ० अलसी=अतसी, माह० सालवाहण=सातवाहन, माह० शौ० दोहळ=दोहद ।

§ २४—ऐसे विशेषण और सर्वनाम शब्दों में द् का र् हो जाता है जिन के अन्त में दृश्, दृश, दृत्त हो ५ । जैसे—परिस-ईदृश

* सख्या याची सयुक्त शब्दों में दृश के द् का र् हो जाता है । जैसे—
ण्कारस, वारस, तेरस । परन्तु चउहस, सोलस में नहीं होता । (अनुयादक)

(शौ० इंदिस मी), केरिन्, अग्णाग्नि, तुम्हाग्नि भरिस ।

! २५—किस्ती २ प्राकृत में भू का घृ हो जाता है । जैसे—
माद० धम्मह=ममघ (परन्तु शौ० मम्मघ), माद० ओणुविअ=
अवनन (अवनमित) ।

यह विकार अपभ्रंश में बहुधा पाया जाता है और पूजनीय
इतर अथवा अतन्त्र्य वण को अनुनासिक कर देता है । तब
अतन्त्र्य अथवा अनुनासिकता का लोप हो जाता है । जैसे—अप०
फंजल=कमल, जंजला=यमुना जुगाँ=गमनि । इन विकार के
उदाहरण माहाराष्ट्री में भी मिलते हैं । जैसे—चाँडएडा=शौ०
चामुण्डा ।

इसी विकार के आधार पर आधुनिक भाषाओं के शब्द कचर=
स० कुमार, गोंय=स० ग्राम (पाली, प्रा० गाम) आदि रूप
धनेते हैं ।

! २६—मागधी में रू का सदा ह् हो जाता है परन्तु इतर
प्राकृतों में ऐसा कभी २ होता है । जैसे—माद० शौ० दलिह=दरिद्र,
मुहर=मुपर ।

यह विकार माद० और शौ० की अपेक्षा अर्धमागधी में अधिक
मिलता है ।

! २७—कभी किसी विशेष प्राकृत में अथवा विशेष शब्द गण
में श्, घृ, स् का ह् हो जाता है । जैसे—माद० धणुह=धनुस्
(धनुष), माद० पच्चूह=प्रत्यूष (अथ यातातप), जब अर्धप्रभात
हो तब पच्चूस रूप धनता है । माद० पाहाए=पायाण, माद० अणुवि
अह (शौ० अणुदिवस)=अनुदिवसम् ।

मविध्यन् क्रिया के रूपों में । जैसे—माद० णेहिह=नेष्यति,
अमा० गाहिह=गास्यति, जैमा० पाहामि=पास्यामि, अमा० गमिहिह=
गमिष्यति ।

पष्ठी एकवचन के रूपों में । जैसे माग० कामाह=कामस्य, अप० कावह=काव्यस्य ।

दुद्य सर्वनाम के रूपों में । जैसे—अप० एहो=एय, प्रा० तुम्हे=तुमे, माह० ताह, ताम, तस्स=तस्य, कभी तार्सि के स्थान में तर्हि=तस्मिन् ।

यह विकार अपभ्रंश में बहुत अधिक है और इसके द्वारा अर्वाचीन सदा ओर क्रिया की रूपरचना में कई एक रूपों का समाधान होता है । इस विकार का इतिहास तथा प्रभावक्षेत्र अभी तक निर्णय नहीं हुआ ।

१२८—कमी २ सरुह्त्त ह् के स्थान में प्राकृत में ध् आदि महाप्राण व्यञ्जन मिलते हैं । जैसे—शौ० माग० इध, माह० इह=इह (पाली में भी इध है) । यहा शौरसेनी रूप अधिक प्राचीन है । कई बार सरुह्त्त ह् का मूल घोप महाप्राण व्यञ्जन होता है जैसे देखिये—हन्ति, अमन्, जघान ।

१२९—अन्तिम व्यञ्जन । अन्तिम स्पर्शों का लोप हो जाता है परन्तु अन्तिम नासिक्य का अनुस्वार बन जाता है । अकार के परे विसर्ग हो तो दोनों का ओं हो जाता है (अ =ओ) । किसी दूसरे स्वर के परे विसर्ग का लोप हो जाता है । कमी २ अन्तिम स्वर को अनुनासिक कर देते हैं । समस्त पदों के अन्तिम व्यञ्जनों के विकार के लिये देखिये सन्धि विषय अध्याय ७ ।

अध्याय पांचवां ।

सयुक्त व्यञ्जन ।

१ ३०—पद के आदि में केवल एक ही (अन्त्ययुक्त) व्यञ्जन आ सकता है ।

अपवाद—

१ एह । जैसे—गङ्गाणु=आ ।

२ ग्द । जैसे—ग्दिह=अस्मि, ग्दो ग्द=स्म ।

३ समस्त पद में द्वितीय शब्द के आदि में ।

नोट - यदि एह, ग्द को सयुक्त व्यञ्जन न मानकर ए और म् के महाप्राण रूप समझे तो ये अपवाद न रहेंगे ।

बहुत सी भाषाओं में देखा जाता है कि उनके अन्तिम व्यञ्जनों अस्पष्ट होते हैं और अन्तिम स्पर्श अभिनिहित रहते हैं अर्थात् उन को उच्चारण करने में स्थान और करण का स्पर्श खोला नहीं जाता । इस अवस्था में अघोष स्पर्श केवल मौनरूप और घोष स्पर्श केवल अग्रह नाद हो जाते हैं । कुछ काल पीछे स्पर्श प्रयत्न भी जाता रहता है और इस प्रकार अभिनिहित स्पर्श का लोप ही हो जाता है । नासिक्य व्यञ्जन का नाद अधिक यत्नान् होने के कारण धचा रहता है ।

१ ३१—शब्द के मध्य में कोई सयुक्त व्यञ्जन दो धर्तों में अधिक का नहीं होता, यह भी—

(१) द्विभूत होना चाहिये जैसे क, क्क, ग्ग, ग्य आदि ।

(२) नासिक्य व्यञ्जन के परे तत्स्थानीय स्पर्श जैसे—इ ङ आदि अथवा

(३) एह, ग्द, रह अर्थात् महाप्राण ए, म्, न् ।

१ ३२—इस कारण सयुक्त अक्षर या तो समानादेश को प्राप्त होते हैं या स्वर मर्हि द्वारा पृथक् पृथक् होजाने हैं ।

§ ३३—समानादेश का साधारण नियम यह है कि तुल्य बल वालों में द्वितीय व्यञ्जन के सदृश, और अतुरय बल वालों में बल घट्तर के सदृश आदेश होता है ।

बल की अपेक्षा व्यञ्जन इस प्रकार विभक्त किये जा सकते हैं ।

(१) प्रत्येक वर्ग के प्रथम चार व्यञ्जन । (सब से अधिक बलवान्)

(२) नासिक्य व्यञ्जन । (न० १ से उतर कर)

(३) ल, र, व, य, इ यथाक्रम । (न० २ से उतर कर)

इ का स्थान विलक्षण है (§ ५२—५४)

§ ३४—दो स्पर्श । उपर्युक्त नियमानुसार क्+त् का च्, ग्+घ् का च्च, द्+ग् का ग् आदि हो जाते हैं ।

उदाहरण—जुत्त=युक्त, वप्पहराअ=वाक्पतिराज, दुद्ध=दुग्ध, छच्चरण=पद्चरण (§ ६), उग्ग=खड्ग, यल्लकार=यलात्कार, उप्पल=उत्पल, उग्गम=उद्गम, सम्भाव=सद्भाव, सुत्त=सुप्त, युज्ज=युज्ज (§ ६), सद्=शब्द, लद्ध=लब्ध ।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि जब किसी सयुक्त अक्षर में दो स्पर्श एकट्ठे आवें तो उनमें पहले को दूसरे का समानादेश हो जाता । है । इस आदेश का समाधान यह है कि पहले स्पर्श का उच्चारण अभिनिहित होता था ।

§ ३५—यदि नासिक्य व्यञ्जन के परे तत्स्थानीय स्पर्श हो तो वह नासिक्य व्यञ्जन बना रहता है और यदि उसके परे अन्य स्थानीय स्पर्श हो तो वह अनुस्वार बन जाता है । जैसे—सद्धल=शृद्धल, कौच्च=कौञ्च, कण्ठ, मन्थर, जम्बू; परन्तु दिमुद्ध=दिशुमुद्ध, पति=पदपति, विक्क=विन्ध्य (§ ४४)

§ ३६—यदि स्पर्श के परे नासिक्य व्यञ्जन हो तो नासिक्य को

स्पर्श का समानादेश होता है । जैसे—अग्नि=अग्नि, विग्नि=विघ्न, सवत्ती=सपत्नी, जुग्म=युग्म ।

अपवाद—

(१) ह का एण हो जाता है । जएण=यज्ञ, अणदिएण=अनभिज्ञ, आणयेदि=आशापयति ।

नोट—कभी समास में ह वा ज भी बन जाता है । जैसे—मणोज्ञ=मनोरा ।

हेमचन्द्र के मतानुसार मागधी में ह का ज्ञ बनता है (प्राकृत ध्याकरण पाद ४, सू० २६३) ।

(२) माहागध्दी में प्रायः कर के, और अपभ्रंश में सबदा आत्मन् का अप्प रूप बनता है जिससे हि० आप निकलता है । और प्राकृतों में से किसी में अप्प, किसी में अत्त होता है ।

(३) झ का झम हो जाता है—पोम्म=पद्म (पडम रूप भी बनता है § ५७) ।

§ ३७—ल घाले सयुक्त स्पर्श में ल को स्पर्शादेश हो जाता है । जैसे—यकल=वरकल, फग्गुण=फरगुन, अप्प=अरप, क्प्प=कल्प, (अपवाद—जत्प धातु को जम्प अथवा जप्प आदेश होता है), पघग=प्लवग ।

§ ३८—स्पर्श तथा ऊष्म का संयोग । इस में स्पर्श अघोष ही हो सकता है । जब ऊष्म पहिले हो तो इसे स्पर्शादेश होकर दोनों स्पर्श महाप्राण बन जाते हैं । जैसे—स्त का त्य हो जाता है । लेकिन अगर ऊष्म किसी समास में प्रथम शब्द का अन्तिम यण हो और स्पर्श दूसरे शब्द का आदि वण, तो स्पर्श का महाप्राण बन जाना जरूरी नहीं, खासकर जब कि पहिला शब्द दुम् आदि कोई उपसर्ग हो ।

श्च का च्छ हो जाता है । अच्छुरिअ=आश्चर्य, पच्छा=पश्चात्, परन्तु निचल=निश्चल, दुच्चरिअ=दुश्चरित ।

(मागधी में अ वैसा ही रहता है, माग० निश्चल) ।

प्फ और प्प को फफ हो जाता है । शो० पोक्पर=पुक्कर, सुक्ख=शुक्क, इस शब्द में प्रायः महाप्राणत्व नहीं होता । [प्रा० सुक्क, देखिये पजा० सुक्का । अनुवादक] माह० चउक्क, शौ० चदुक्क=चतुक्क, माह० शौ० दुक्कर=दुक्कर, णिक्कम्=निक्कम् आदि ।

ष्ट और ष्ट का दृष्ट हो जाता है । दिदिठ=दृष्टि, सुदृठ=सुष्ठु ।

(अपवाद—वेढ्/वेण्ड, परन्तु देखिये पाली वेठति) । प्प और प्फ का फफ हो जाता है । पुप्फ=पुष्प, णिप्फल=निष्फल ।

स्त और स्थ का त्थ हो जाता है । थण=स्तन अत्थि=अस्ति, हत्थ=हस्त, अवत्था=अवस्था, काअत्थअ=कायस्थक । उपसर्ग दुस्—दुत्तर=दुस्तर । कभी त्थ को मूर्धन्यविधि होजाती है । माह० शौ० अत्थि=अस्थि ।—स्था धातु में कभी त्थ और कभी ठ होता है । शो० थिद, ठिद, माह० थिअ, ठिअ=स्थित, माह० शौ० ठाण (माह० कभी थाण भी)=स्थान, शौ० थिदि, ठिदि, माह० थिह, ठिह=स्थिति ।

स्फ और स्फ का फफ हो जाता है । फस=स्पर्श (§ ४६), फळिह=स्फटिक, अमा० फुसइ=स्पृशति ।

§ ३६—जिस सयुक्त अक्षर में स्पर्श पहिले और ऊप्य पाछ हो, उस का च्छ बन जाता है । जैसे—अच्छि=अक्षि, रिच्छ=अक्षत, माह० छुहा=छुधा, मच्छर=मत्सर, वच्छ=घत्स (घृत्त का भी यही रूप होता है), अच्छरा=अप्सरा, छुगुच्छा=छुगुप्सा ।

§ ४०—क्ष को प्रायः फय आदेश होता है। शी० रातिअ=दात्रिय,
पित्त=दित्त, अफिल=अत्ति, शिम्पिदिदु=निक्षेप्तुम्, सिफिपद=
शिक्षित, दफिलण=दक्षिण ।

किसी शब्द में एक प्राकृत में फय आदेश, दूसरी में च्छ आदेश होता है। माह० उच्छु, शी० इफयु=इक्षु, माह० पुच्छि, शी० पुम्बि
=पुत्ति, माह० पेच्छद, शी० पेम्पदि=प्रेक्षने, माह० शी० सारिच्छ, शी० सारिफय भी = सारक्ष ।

कभी क्ष को ऊम् आदेश होता है। शी० पम्भरावेदि=* प्रक्षरा
पयति, माह० शी० म्नीण=क्षीण (क्षीण रूप भी मिलता है) ।

नोट—पिशल महाशय क्ष के इन तीनों आदेशों के लिये क्ष के भिन्न २ मूल मानते हैं। (१) मूल क्ष (=अयस्ता र्श श) को फय आदेश, (२) श्प से व्युत्पन्न क्ष (=अयस्ता श) को च्छ आदेश (३) यज्ञ से व्युत्पन्न क्ष को ऊम् आदेश होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्प कठिनतालव्य स्पर्श और उसके अनन्तर तत्स्थानीय ऊम् था। यज्ञ में यही घोष वर्ण था। क्ष में कोमल तालव्य स्पर्श (जिह्ममूलीय या कण्ठ्य) तथा ऊम् था। क्ष में जो प है वह भी भारतीयमूर्धन्य प से कुछ भिन्न था। अभी इस बात के अनुसंधान की आवश्यकता है कि 'प' और 'क्ष' का उच्चारण किस प्रकार का था, और पारसीक भाषा में र्श तथा श में फया भेद था। शिलालेख तथा अन्य साधनों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में यह भेद स्थानीय था अर्थात् च्छ आदेश पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर में और फय आदेश पूर्व देश में होता था।

§ ४१—समस्त पदों में जय त् पहिले शब्द का अन्तिम वर्ण और श् अथवा स् दूसरे शब्द का आदि वर्ण हो तो त्श् और त्स् को स्स् आदेश हो जाता है। कभी स्स् के पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ

करके स्स् को स् आदेश होजाता है । पञ्जुस्तुश्च=पर्युत्सुक, ऊसव=
उत्सव, शौ० उस्तास, माह० ऊसास=उच्छ्वास ।

§ ४०—स्पर्श के मयोग में व् हो तो व् को स्पर्शदेश होजाता
है । माह० कदिश्च, शौ० कदिर्=कथित, शौ० पक्=पक, उज्जल=
उज्ज्वल, सत्त=सत्त्व, दिश्च=द्विज ।

अपवाद । जय उद् उपसर्ग के परे इ हो तो उद् के द् को इ
आदेश होता है । जैसे—उव्विग्न=उद्विग्न ।

§ ४३—स्पर्श के सयोग में य् हो तो य् को स्पर्शदेश होता है ।
चाणक्=चाणक्य, सोफत्त=सौख्य, जोग्ग=योग्य, णट्ठश्च=नाट्यक,
अभन्तर=अभ्यन्तर ।

§ ४४—यदि य् के पूर्ववर्ती दन्त्य स्पर्श हो तो य् को स्पर्शदेश
होने से पहिले दन्त्य को तालव्य आदेश हो जाता है । सच्च=सत्य,
णैयच्छ=नेपथ्य, अच्चन्त=अत्यन्त, रच्छा=रथ्या, अज्ज=अद्य,
उवउक्काश्च=उपाध्याय, सक्का=सन्ध्या, मज्ज्=मध्य ।

§ ४५—स्पर्श के सयोग में र् हो तो र् को स्पर्शदेश होता है ।
तक्केमि=तर्कयामि, चक्क=चक्र, मग्ग=मार्ग, गाम=ग्राम, समुच्छिश्च=
समुच्छ्रित, णिव्वन्ध=निर्वन्ध, चित्त=चित्र, पत्त=पत्र, अत्थ=अर्थ,
समुद्द=समुद्र, अद्ध=अर्ध ।

अपवाद—अत्र का अत्थ और तत्र का तत्थ यनता है ।

(जय र् के परे दन्त्य स्पर्श हो तो कमी २ र् को स्पर्शदेश होने
से पहिले दन्त्य स्पर्श को मूर्धन्य आदेश हो जाता है विशेष कर अर्ध
मागधी प्राकृत में । शौ० वट्ठदि=वर्तते)

§ ४६—यदि म् के पूर्व इ या ण् हो तो इ या ण् का अनुस्वार

हो जाता है परन्तु न् और म् अथवा म् और न् के योग में पूर्व नासिक्य को परादेश हो जाता है फिर घ् वा ण् हो जाता है । जैसे—दिमुद्=दिहमुण्, छमुद्=छणमुण्, उमुद्=उण्, जम्म=जम् णिण्=निह्, पज्जुण्=प्रज्जह् ।

§ ४७—नासिक्य और ऊष्म । यदि सयुक्त अक्षर में नासिक्य पहिले हो तो उस का अनुस्वार घन जाता है, और यदि ऊष्म पहिले हो तो उस का ट् घनकर घर्ण व्यत्यय हो जाता है ।

श्न का एद् हो जाता है । पएद्=प्रह् ।

श्म ॥ एद् ॥ ॥ । कम्हीर=कश्मीर ।

ष्ण , एद् ॥ ॥ । उएद्=उष्ण, कएद्=कृष्ण ।

ष्म ॥ एद् ॥ , । गिन्द=ग्रीष्म ।

स्न ॥ एद् ॥ ॥ । एद्वाण=धान ।

स्म ॥ एद् ॥ ॥ । अग्हे=अस्मे, विग्दन्न=विस्मय ।

अपघाद—

(१) रश्मि शब्द का सदा रस्ति बनता है ।

(२) शब्द के आदि में श्म हो तो उस को म हो जाता है । मस्त्राण=श्मशान ।

(३) ऐह और जिग्ध का ऐह्, जिह् अथवा सिण्द्, सिणिह् बनता है ।

सर्वनाम सप्तमी यिन् एकवचन प्रत्यय—का म्मि, और स्मिन् का र्सि या म्मि हो जाता है । शौ० एवार्स्सि, माद० एथार्स्सि या एथम्मि=एतस्मिन् । (अमा० में —सि होता है । तसि=तस्मिन्)

§ ४२—नासिक्य और अन्तस्थ के योग में अन्तस्थ को नासि-
क्यदेश होता है । गुम्भ=गुल्म, मेच्छ=भ्लेच्छ, अण्णसणा=अन्वे-
षणा, पुण्ण=पुण्य, अण्ण=अन्य, सोम्म=सौम्य, धम्म=धर्म,
करण=कर्ण ।

नोट-दीर्घ स्वर के परे म्य का म हो जाता है । कामाप=काम्याप

§ ४६—ऊष्म और अन्तस्थ के योग में अन्तस्थ को ऊष्मादेश
होता है । साहणीय=श्लाघनीय, पास=पार्श्व, माह० आस, शौ०
अस्स=अश्व, अवस्स=अवश्यम् । माह० मीस, शौ० मिस्स=मिथ्र,
मणुस्स=मनुष्य, शौ० परिस्सअदि=परिप्लवजते, रहस्स=रहस्य, यअ-
स्स=ययस्य, तस्स=तस्य, सहस्स=सहस्र, सहत्थ=स्वहस्त, शौ०
सरस्सदी=सरस्वती, साअद=स्वागतम् ।

नोट १—कमी स्स का स हो जाता है । तय (क) पूर्व स्वर
दीर्घ हो जाता है जैसा कि ऊपर माह० मीस, आस में हुआ या
(य) पूर्वस्वर सानुस्वार हो जाता है । यह प्रायः सस्वत
के अ और र के स्थान में होता है । असु=अश्रु, फस=स्पर्श, दसण=
दर्शन (§ ६४) ।

नोट २—किसी प्राकृत में घेसे स का फिर ह हो जाता है ।
जैसे—माग० कामाह, अप० कामहो या कामहु। इस परिवर्तन का
आधुनिक रूप रचना पर बड़ा प्रभाव पड़ा है (§ २७) ।

§—दो अन्तस्थ वर्णों के योग में न्यून बल वाले को बलवत्तर
का आदेश होना है । बल की अपेक्षा इनका क्रम यह है—ल, व, र,
य । उदाहरण—गल्लक=गल्यक, मुल्ल=मूल्य, दुल्लह=दुर्लभ, कव्व=काव्य,
परिव्वाजअ=परिवाजक, सव्व=सर्व ।

अपवाद—र्य में य का ज बन जाता है अर्थात् र्य का ज्ञ बन जाता है । अज्ज=आर्य, कज्ज=कार्य । किसी शब्द में र्य के र का ल्पन कर र्य का ल्प हो जाता है । पल्लत्य=पर्यस्त ।

नोट—मागधी के अतिरिक्त और प्राकृतों में र्य का ज्ञ होता है ।

§ ५१—इ, ए, ऋ, ऊ के पूर्ववर्ती विसर्ग का इ, ए की न्याई परिवर्तन होता है । दुष्प=दुष्प, अतक्करण=अन्त करण । ऊप्म के पूर्ववर्ती विसर्ग का भी यही हाल है । शी० चदुस्समुद्=चतु-समुद्र । दुस्सह=दुसह (माह०, शी० में इस का दूसह रूप भी बनता है) ।

§ ५२—जर ह के परे तानिफ्य या ल्प हो तो उनका व्यत्यय होता है । अपरएह=अपराह, मज्जएह=मज्जाह, माह० गेरएह, शी० गेरहदि=गृह्णाति, चिरह=चिह्न (माह० में इस का चिन्ध रूप भी है) यम्हण=ग्राहण, परहत्तय=प्रहस्त (धातु √हृ या √हृस्) ।

§ ५३—ह्य में ह का ज्ञ हो कर ज्ञ बन जाता है । सज्ज=सह्य, अणुगेज्जा=अनुग्राहा ।

§ ५४—ह का ह् हो कर ह् बन जाता है । अथवा केवल ह् रह जाता है । विम्भल=विहल, जीहा (अमा० जिमा)=जिहा ।

[ह और ह् के विचार के लिये देखिये § ५७]

§ ५५—मूर्धन्य विधि ।

तवर्ग वाले सयुक्त अक्षरों को कभी टवर्ग का आदेश हो जाता है । शी० मट्टिआ=मृत्तिका, शी० माह० बुद्ध=बृद्ध, गरिठ=ग्रन्थि ।

माह० और शी० में मूर्धन्यविधि प्रायः सस्कृत ऋ या र के परे होती है परन्तु अमा० में और स्थलों पर, विशेष कर ऊप्म वर्ण के परे भी, हो जाती है । [पिशल् § २८६ ग्राहगर् § ६४]

§ ५६—तीन वर्णों के सयुक्त अक्षरों में भी यही नियम लगते हैं । जैसे—मच्छु=मत्स्य, अग्घ=अर्घ्य, अत्थ=अस्त्र, इत्यादि ।

§ ५७—स्वरभक्ति । जब सयुक्त अक्षर में एक नासिक्य या अन्तस्य हो तो कभी कभी उन दोनों को स्वरभक्ति द्वारा पृथक् अर्थात् सस्वर कर दिया जाता है । तब ये पृथक् वर्ण अपने योग्य विकार को प्राप्त होते हैं । प्रायः स्वरभक्ति 'इ' (ओष्ठ्य वर्ण के परे) 'उ' अथवा 'अ' होते हैं । महा० रअण, शौ० रदण, माग० लदण=रत्न । महा० शौ० सलाहा=श्लाघा, आमरिस=आमर्ष, वरिस=वर्ष, हरिस=हर्ष, किलन्त=क्लान्त, किलिएण=क्लिन्न, मिलान=म्लान, तुवर=त्वर-
[स्व], वुवार=व्वार, सुयो=स्व, अरिह=अर्ह, पउम=पद्म (पाली पवुम), शौ० सुमरदि=सरति ।

§ ५८—यदि इन में एक वर्ण 'य' हो तो उसका लोप हो जाता है । आचारिअ=आचार्य, चोरिअ=चौर्य, हिओ=ह्यस् [यद्वा उच्चारण में बहुत सूक्ष्म भेद है] । घेरुलिअ=वैदूर्य ।

कभी २ स्वर भक्ति ई आती है । अच्छुरिअ या शौ० अच्छुरीअ=आध्यर्ष (माह० में अच्छेर भी है § ७६), शौ० पढीअदि (पाली पढीयते)=पठ्यते ।

अध्याय ६

स्वर

§ ५६—संस्कृत वैयाकरण ऋ और ए को स्वरों में गिनते थे। ये पाली और प्राकृत में लुप्त हो गए। आज फल ऋ का उच्चारण रि किया जाता है, परन्तु प्राचीन समय में ऐसा नहीं था अर्थात् यह व्यञ्जन+स्वर दो धर्मे नहीं थे किन्तु एक ही धोप धर्मे था। इस का उच्चारण स्लेवोनिक भाषा के धोप रू के उच्चारण से मिलता था जैसा कि Srbi (रुबि) शब्द में जो उन लोगों का अपना नाम है। जिन की भाषाओं में यह धण नहीं पाया जाता, ये लोग स्वाभाविकतया इस के स्थान में रू के किसी एक तरफ या दोनों तरफ सवृत्तर अ, अथवा कोई और स्वर लगा कर बोलते हैं। इस से हम जान सकते हैं कि (१) क्यों ऋ का गुण अरू है न कि रे, (२) क्यों अघम्ना में वृभट् के स्थान में 'वेरेष्टरुग्ना,' ऋजु के स्थान 'वेरेजु' आता है (३) क्यों पाली में ऋतियज्ञ के स्थान में इतितियज और ऋग्देर के स्थान में इरुवेद आया है और (४) क्यों प्राकृतों में ह्रस्व ए का सनेत न होने के कारण ऋ के स्थान में अ, इ, उ, और रि आते हैं।

प्राचीन ए स्वर का आधुनिक उच्चारण लू तो और भी अ शुद्ध है। इस का उच्चारण अंग्रेजी शब्द "battle" पैटर्न के 1 (पल) का सा था। इस का गुण अल् था और प्राकृत में इस के स्थान पर इलि, लि या अ आता है। क्विलित्त=कृत।

§ ६०—अ के प्राकृत आदेश।

रि—शब्द के आदि में (माग० लि)—रिदि=रुदि, रिचु=रुच, रिसि=रुपि।

अ—माह० कथ, शौ० कद्=कृत, वसह=वृषभ ।

इ—(यह आदेश सब से अधिक मिलता है ।) किविण=रूपण,
गिद्ध=गृध्र, दिट्टि=दृष्टि, सिआल=शृगाल, हिअअ=हृदय ।

उ—ओष्ठ्य व्यञ्जन के परे, अथवा जब परे किसी अक्षर में उ
हो । माह० गिहुअ, शौ० गिहुव=निवृत्त, माह० पुच्छइ, शौ०
पुच्छवि=पृच्छति, मुणारा=मृणाल, युत्तन्त=वृत्तान्त ।

नोट १—कभी एक ही मापा में भिन्न आदेश पाये जाते हैं ।

शौ० दढ या दिढ=दढ, माह० गिअत्त या गिबुत्त=निवृत्त ।

नोट २—समास में अथवा क प्रत्यय के पूर्व ऋकारान्त
शब्दों के ऋ को उ आदेश होता है । जैसे—शौ० जामादुअ=जामा
दृक्, भावुसअ=भावृत । कभी इ आदेश भी होता है—शौ०
मट्टिदारअ=मर्तदारक ।

नोट ३—अ, इ, उ आदेश शब्द के आदि में भी आते हैं ।

अमा० अण=ऋण, शौ० इसि=ऋषि, उज्जु=ऋजु । [पिशल
महोदय ने स० ऋच्छति को माह० अच्छइ और पाली अच्छति को
प्रष्टति माना है, किन्तु कई दूसरे परिहित इन को √अस् अथवा
√आस् धातु के एक गण विशेष के रूप मानते हैं । पिशल § ४००,
गाइगर § १३५ २]

नोट ४—दीर्घ ऋ को ई या ऊ आदेश होता है ।

नोट ५—देश की अपेक्षा ऋ के आदेश—

दक्षिण तथा पश्चिम में अ ।

पूर्व (गौड), मध्य देश तथा उत्तर में इ तथा ओष्ठ्य वर्ण के परे उ* ।

§ ६१—मघस्वर ऐ, औ को ए ओ दो जाता है । द्विभूत वर्णों के पहिले ए, ओ का ह्रस्व उच्चारण होता है (॥ १४, ६८) ।

शौ० एविहासिञ्च=पेतिहसिच, परावण=पेरावण, तेल्ल=तैल, वेञ्ज=वैच । मदा० फोमुइ, शौ० फोमुदी=फौमुदी, जोव्वण=घौयन, सोम्म=सौम्य ।

नोट—कभी महाराष्ट्री तथा कई अन्य उपभ्रात्यों में ऐ का 'अइ' और औ का 'औउ' बन जाता है । जैसे - घहर=घैर, मउलि=मौलि । ये आदेश शौरसेनी और मागधी में लागू नहीं होते ।

§ ६२—स्वरों का कालपरिचयन । श्रृंग स्वर के परे केवल असंयुक्त व्यञ्जन आ भवता है इस लिये संयुक्त व्यञ्जन के पहिले सदा ह्रस्व स्वर रहता है । इस नियम के अनुसार घट्ट से उदाहरण ऐसे हैं जिन्हें के सस्वरत रूप में दीर्घ स्वर है परन्तु प्राकृत रूप में ह्रस्व स्वर है । इस प्रकार की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है कि द्विभूत व्यञ्जन को ह्रस्व अर्थात् इफहरा कर के उस के पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया जाता था । यह प्रवृत्ति शौरसेनी और मागधी की अपेक्षा महाराष्ट्री (विशेष कर अर्धमागधी और पैन महाराष्ट्री) में बहुत अधिक थी । यह प्रवृत्ति आधुनिक आर्य भारती में बहुत प्रधान है (देखिये—प्रा० अगि, प० अग परन्तु हि० आग) ।

§ ६३—ह्रस्व स्वर का दीर्घ आदेश ।

यह आदेश प्रायः वहा होता है जहा सस्वरत में ह्रस्व स्वर के परे इ+व्यञ्जन (विशेष कर इ+ऊष्म) अथवा ऊष्म+य्, इ, य्, या

* देखो प्रो० जे ब्लाक हून मराठी भाषा की ध्युलति' § ३१ (केंच भाषा में); सुनीतिबुमार चेटर्जी हून 'बगला की 'युलति' (अंग्रेजी में); पिशल महोदय हून प्राकृत व्याकरण §§ ४३-२१ तथा गार्हगिर हून पाळी व्याकरण §§ १२ (जर्मन भाषा में) ।

उत्पन्न हो । शौ० कादु=कर्तुम्, काद्व्य=कर्तव्य । अमा० फास=स्पर्श, मणुस (शौ० मणुस्स)=मनुष्य । महा० आस (शौ० अस्स)=अश्व, माह० शौ० ऊसव=उत्सव, दूसद=दु सद् ।

§ ६४—ऐसी दशा में कभी स्वर दीर्घ होने की जगह सानुस्वार हो जाता है । दसण=दर्शन, फस=स्पर्श (§ ४६), माह० असु (शौ० अस्तु)=अधु, अमा० असि (शौ० मिह)=असि ।

§ ६५—इस के उलट कभी कभी र, ख और ह के पूर्व स्वर सानुस्वार होने के स्थान में दीर्घ हो जाता है । जैसे—दाढा=दृष्टा, माह० पीसद, शौ० पीसेदि=“पिसति (जो पिनष्टि का रूपान्तर है), माह० सीह=सिंह (सिघ भी रूप मिलता है, शौ० सिह) ।

§ ६६—और भी कई स्थल हैं जहाँ स्वर दीर्घ हो जाता है । कभी समास के मध्य में, किसी विशेष प्रत्यय के पहिले, अथवा दूसरे शब्दों के साम्यारोप से । जैसे—माह० शौ० सारिच्छ शौ० सारिफस=*साहस (जो सहस का ही तादृश, यादृश के साम्यारोप से रूप बन गया है) ।

§ ६७—स्वरों को ह्रस्वादेश । ऐसा ऊपर कहा गया है द्विभूत व्यञ्जन अथवा अनुस्वार के पूर्व स्वर सदा ह्रस्व होता है । परन्तु कभी दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है यदि उस से पूर्ववर्ती या परवर्ती अक्षर उदात्त हो । जैसे—अलिअ=अलीके (यह आद्युदात्त है), माह० मजर (कभीर मजार, शौ० मज्जार)=मार्जार (यह अन्तोदात्त है) ।

नोट—माहाराष्ट्री में शब्द के अन्दर बली अक्षर चढ़ी रहता था जो वैदिक में उदात्त होता था परन्तु शौरसेनी में बली अक्षर का स्थान पाणिनीय सस्कृत के अनुसार था । यही कारण है कि कभी

मराठी और हिन्दी शब्दों में स्वरों की ह्रस्व दीर्घता का भेद पाया जाता है ।

§ ६८—कमी अन्तोदात्त शब्दों में असंयुक्त व्यञ्जन के पूर्वपत्ती दीर्घ स्वर ह्रस्व होजाता है और व्यञ्जन द्विभूत होजाता है । जैसे—एव्य=एयम्, जोव्यण=यौवन, नेल=तैल, पेम्म=प्रेमम् ।

नोट १—अन्तिम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है यदि उसके परे ऐसा निपात हो जिस के आदि में संयुक्त या द्विभूत व्यञ्जना हो । जैसे—माह० ठिअग्निह=स्थिताग्नि ।

नोट २—शी० जेय, जेव्य (=यय) का उजेय, उजेव्य हो जाता है यदि उसके पूरा ह्रस्व स्वर हो । जैसे—अजस्तजेव्य=आर्यस्यैष ह्रस्व य, ओ के पश्चात् भी—भूमिर्जेव्य=भूम्यामेय, इदो जेव्य=इत यय ।

नोट ३—भी को मिरि आदेश होता है ।

नोट ४—माहाराष्ट्री में क्रियाविशेषणों का अन्तिम आ प्राय ह्रस्व हो जाता है—जह=यथा ।

§ ६९—एक स्वर के स्थान में दूसरा स्वर । उदाहरण—अ>इ, उदात्त अक्षर के पूर्व, विशेषकर माहाराष्ट्री में । पिका=पक्क (शी० पक्क भी होता है), माह० मजिमम, शी० मज्जमम=मध्यम, माह० कइम, शी० कदम=कतम ।

नोट—हिन्दी में पक्का (यल 'प' पर) होता है, मराठी में 'पिका' (यल 'का' पर) ।

अ>उ, (१) ओष्ठ्य व्यञ्जन के पूर्व—पुलोपदि=प्रलोकयति । यह आदेश शी० या माग० की अपेक्षा माह० और अमा० में अधिक होता है । (२) सा धातु जिन शब्दों के अन्त में हो—सव्यणु=सर्वज्ञ ।

आ>इ, उदात्त के परे—माह० जम्पिमो=जत्पाम, उदात्त के पूर्व—अमा० विहृतिथमित्त=वितस्तिमात्र । इस दशा में इ का प्रायः ह्रस्व प हो जाता है—मेत्त=मात्र ।

§ ७०—इ>उ, यदि परे के अक्षर में उ हो । महा० उञ्छु (शी० इफ्लु)=इलु, अमा० उसु=इपु ।

इ>ए (ह्रस्व) द्विभूत व्यञ्जन के पूर्व—पत्थ=इत्था, गेज्झ=गृह्य=(गिज्झ < गृह्य = ग्राह्य) ।

इ>ए, ईदशादि में । शी० परिस, ईदिस=ईदश । केरिस, कीदिस=कीदश । [वास्तव में परिस की प्रकृति वैदिक शब्द अया+दश है—पिशल् § १२१]

§ ७१—उ>अ, यदि परवर्ती अक्षर में भी उ हो । गरुअ=शुरक, मउल=मुकुल । उ>इ । पुरिस=पुरुष (माग० पुलिश) । उ>ओ (ह्रस्व), द्विभूत व्यञ्जन के पूर्व । शी० पोफत्तर=पुष्कर, पोत्थअ=पुस्तक (हि० पोथी), मोग्गर=मुद्गर, माह० गोच्छ=गुच्छ ।

उ>ओ (ह्रस्व वा दीर्घ) द्विभूत व्यञ्जन के पूर्व, अथवा जय द्विभूत व्यञ्जन को असयुक्त या एकद्वार कर दिया हो—माह० मोअ=मूल्य, थोर=+ थोर (= स्थूर), तम्बोल=ताम्बूल [ताम्बूल> * तम्बुल > * तम्बोल / तम्बोल]

§ ७२—ए>इ, (१) अनुदात्त होने पर—माह० इण=एत, विअणा=वेदना, दिअर=देवर ।

(२) द्विभूत व्यञ्जन के पूर्व—शी० मित्तेअ=मैत्रेय ।

(३) कमी दीर्घ स्वर के परे—शी० माग० पदिणा=पदेन (पदेण रूप भी होता है) ।

‡ ७३—ओ > उ, (१) द्विर्भूत व्यञ्जन के पूर्व—माह० अरण्यरण,
अरण्योरण=अन्योन्य (‡ ६१) ।

(२) अपभ्रंश में अ से उत्पन्न ओ के स्थान में, (जैसा अकारान्त शब्दों के प्रथमा एकवचन में) — जैसे—लोउ=लोक, सीहु=सिंह ।
 [सिन्धी में अब तक है । जैसे—चण्ड या चण्डु=चन्द्र] ।

‡ ७४—स्वरों का लोप । उदाहरण

अमा० पोसह=अपयसय, शौ० धट्टिद=अवस्थित, माह० रण=
 अरण्य (रण कच्छ देश) । अपि को अनुस्वार के परे पि और
 स्वर के परे नि आदेश होता है ।

‘इति’ का अनुस्वार के परे ‘ति’, स्वर के परे सि होता है ।
 इदानीम् शब्द शौ० भाग० में दाणि बनता है । माह० पिउस्सिन्ना=
 पितृप्यसृका (*पिउससिन्ना) । माह० शौ० पोप्फली=पूगफली,
खु=खल [खलु ७ खलु > खलु ७ खु-अनुयादक]

मज्जरण=मज्जन्दिन, शौ० भाग० धीदा=बुद्धिता (*बुद्धिता >
 † बुद्धिता > धीदा) ।

नोट—केवल निर्यत अक्षरों के स्वरों का लोप हुआ करता है ।
 इस प्रकार के लोप से शब्द के बली अक्षर के स्थान का पता
 चलता है ।

‡ ७५—सम्प्रसारण । संहृत की अपेक्षा प्राकृत में ‘य’ का ‘इ’
 और व का ‘उ’ आदेश बहुत अधिक होता है । ‘अय’ और ‘अव’
 का यथाक्रम ‘य’ और ‘ओ’ आदेश होता है । शौ० तिरिच्छ=तिर्यक्
 (तिर्यक्), तुरिद=त्वरित, कधेदु=कथयतु, ओदार=अयतार, णो
मालिन्ना=नयमालिका, माह० लोण=लयन, शौ० भोदि=भयति ।

‡ ७६—युगपत् स्वरमक्षि और स्वरव्यत्यय ।

‘-अर्य’ या-‘आर्य’ का-‘अरिअ’ होकर-‘एर’ होजाता ह ।
जैसे—पेरन्त=पर्यन्त, माह० अच्छेर=आश्चर्य (शी० अच्छरिअ भी),
माह० केर=कार्य, शो० तुम्हकेर, अम्हकेर ।

नोट—केरक शब्द से पुरानी हिन्दी और पुरानी गुजराती के
‘केरो’ ‘केरी’ जिन का अर्थ ‘का’ ‘की’ है बने । बीम्ज महाशय ने
‘कार्य’ से केरक की व्युत्पत्ति में शङ्का की है (बीम्ज पु० २, पृ०
२८६) । हि० का, की, के, राजस्थानी रो, री, रा, वग०-एर की प्रकृति
करके शब्द है । देखिये सुनीतिकुमार चैटरजी [४०३]



अध्याय ७

सन्धि

क — व्यञ्जन ।

§ ७७—चूँकि प्राकृत में पदांत व्यञ्जन नहीं होते (१२१), इस लिये संस्कृत की वाक्य सन्धि की अनुन सी कठिनाईयां प्राकृत में नहीं रहतीं। परन्तु कभी कभी पदांत व्यञ्जन जो शीर दशा में लुप्त हो जाता है स्वर के पूर्व चला रहता है। जैसे—अमा० जवतिथ=यद् अस्ति, भाग० यदिद्यशे=यद् इच्छसि; निपात के पूर्व—अमा० छुयेय=पथैय, (पदचपय) छुप्पि=पद् अपि (*पदपि)। (ये शब्द साधारणतया ऐसे ही रहते हैं)। दुर और निर उपसर्गों का रू सदा रहता है। जैसे—शी० दुरागद=दुरागत, निरन्तर।

§ ७८—कभी म् चला रहता है—माह० एकमेक=एकैकम् (एकमेकम्)।

ऐसा होने पर इस शब्द के परे विभक्ति प्रत्यय लगते हैं। जैसे—एकमेके। इस प्रकार म् सन्धि-व्यञ्जन सा बं गया। अहमहमि=अहंऽहं, अमा० गोणमार्ह=गयादय; एसमगी=एषोऽग्नि।

कभी य् शीर र भी सन्धि व्यञ्जना की भाँति प्रयुक्त होते हैं। अमा० धिररथु=धिग् अस्तु।

§ ७९—समास में पूर्व शब्द के अंतिम व्यञ्जन को उत्तर शब्द के आदि व्यञ्जन का समानादेश होता है, परन्तु कभी दोनों शब्द पृथक्-२ समझे जाते हैं। यथा—माह० सरिसकुल=सरित् सकुल; दुलह=(साधारण रूप दुलह), दुलम, दुसह=(साधारण रूप दुस्सह या दूसह)=दु सह।

ख -स्वर।

§ ८०—प्राकृत में दो स्वर एकट्ठे आ सकते हैं अर्थात् उन में सन्धि नहीं होती। परन्तु समास में पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर और उत्तर शब्द के आदि स्वर में सस्कृत की भांति सन्धि होती है। जैसे—श्री० किलेसाणल=क्लेशानल, जम्मन्तरे=जन्मान्तरे (स-युक्त के पूर्व आ>अ), राणसि=(राअ+इसि)=राजपिं।

कभी सन्धि नहीं भी होती। जैसे—श्री० पूआअरिह=पूजार्ह, यसन्तुस्सयउपाअण=यसन्तोत्सवोपायन।

§ ८१—यदि उत्तर पद के आदि में इ, उ हो और उस के परे विभूत व्यञ्जन, अथवा उत्तर पद के आदि में ई, ऊ हो तो पूर्व पद के अन्तिम अ, आ का लोप हो जाता है। यथा—माह० गइन्द=गजेन्द्र, श्री० एरिन्द=नरेन्द्र, मन्दमारुदुणेज्जिद=मन्दमायतोव्हेलित, महसय=महोत्सव, उसन्तुसय=यसन्तोत्सव।

अपवाद—किसी किसी समास में जब उत्तर पद का आदि ई, ऊ हो और उस के परे असयुक्त वर्ण हो, तो दोनों स्वर मिल जाते हैं। जैसे—श्री० मन्थरोरु, इसी प्रकार उपसर्ग के परे—श्री० पेफखदि, माह० पेच्छइ, माग० पेस्कदि=प्रेक्षते। यदि इ, ई, उ, ऊ के परे असमान स्वर हो तो सन्धि नहीं होती।

§ ८२—स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जन का लोप होने से जब दो स्वर एकट्ठे आते हैं तो उन में सन्धि नहीं होती।

अपवाद—(१) कभी समान स्वरों को दीर्घ एकादेश होता है। पाइक=(पाआइक)=पादातिके।

(२) यदि अ, आ के परे इ, ई उ, ऊ हो तो सन्धि हो जाती है। थेर=(थइर)=स्थविर, माह० पोम्म, श्री० पउम=पद्म, माह० मोह (कभी मऊह)=मयूष।

(३) समान में सन्धि हो जाती है । माह० अघागिअ=अध
 कारित, देशी चम्मारअ=चर्मकारण, यमा० लोहार=लोहकार,
देउल=देवकुल, माग० लाउल=राजकुल ।

‡ ८३—पाक्य में पदा के आदि और अंत स्वरों में सन्धि
 नहीं होती ।

अपवाद—(१) ण ("हों") के परे स्वरदि शब्द हो तो सन्धि
 हो जाती है । णत्थि=नास्ति, णाह=गाहम् शी० णादिदूर=गातिदूर,
णेच्च=नेच्छति ।

(२) शी० माग० में "नु एतद्" का एक शब्द खेद् बन जाता है ।

(३) सस्वरत की भांति प्राकृत में भी ए, ओ के परे अ का लोप
 हो जाता है ।



अध्याय ८

सज्ञा, विशेषण और सर्वनाम की रूपरचना ।

§ ८४—संस्कृत और प्राकृत की रूप रचना में भेद के मुख्य कारण हैं—(१) ऊपर दिये हुए वर्णधिकार के नियम तथा कई और नियम जो विशेष रूपों पर लागू हैं, (२) साम्यारोप द्वारा एक प्रकार के शब्दों के रूप दूसरी प्रकार के शब्दों की भांति बनाना । प्राकृत में कई एक ऐसे रूप या प्रत्यय मिलते हैं जो संस्कृत में नहीं मिलते । प्राकृत रूपरचना में नवीन अर्थ कुछ नहीं । समुच्चय तौर पर प्राकृत व्याकरण प्राचीन व्याकरण का क्रमिक हास है न कि कोई नवीन व्याकरण निर्माण ।

§ ८५—प्राकृत में द्विवचन सर्वथा जाता रहा । चतुर्थी के स्थान में पष्ठी का प्रयोग होने लगा (केवल माह० और अमा० में अकारान्त शब्दों का चतुर्थी एकवचन का रूप मिलता है) । वर्णधिकार के नियमों ने व्यञ्जनान्त शब्दों की रूपरचना को स्वरान्त शब्दों के तुल्य कर दिया तथापि कोई कोई रूप जाती रह गए हैं ।

सज्ञा और विशेषण की रूपरचना की तीन प्रणालियाँ हैं—

- १ अकारान्त पुल्लिङ्ग और नपुंसक शब्द ।
- २ इकारान्त और उकारान्त पुल्लिङ्ग और नपुंसक ।
- ३ आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द ।

§ ८६—अकारान्त शब्दों के रूप—

पुल्लिङ्ग—पुत्त=पुत्र

एकवचन

शौरसेनी

माहाराष्ट्री

१ मा

पुत्तो

पुत्तो

	शीर०	माहा०
२ वा	पुत्त	पुत्त
३ या	पुत्तेण	पुत्तेण (-ण)
४ र्था	—	पुत्ताअ
५ मी	पुत्तादो	पुत्ताओ
६ छी	पुत्तस्स	पुत्तस्स
७ मी	पुत्ते	पुत्तम्मि, पुत्ते

बहुवचन—

१ मा	पुत्ता	पुत्ता
२ या	पुत्ते	पुत्ता, पुत्ते
३ या	पुत्तेहिं	पुत्तेहिं (हिं)
५ मी	(पुत्तेहिं, पुत्तेहितो)	(पुत्तेहितो)
६ छी	पुत्ताण	पुत्ताण (-ण)
७ मी	पुत्तेसु (सु)	पुत्तेसु (-सु)

नोट (१)—५ मी एकव० पुत्तादो, पुत्ताओ=पुत्रतस् । ५ मी के तस् प्रत्यय के पूर्व ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है, परन्तु जब यह रूप क्रिया विशेषण हो तो ह्रस्व भी रह सकता है । जैसे—अग्गादो=अग्रत जम्मदो=जमत ।

‘पुत्तादो’ में दीर्घ आ शायद पुत्रात् की अनुरूपता से हुआ ।

(२) ० या बहु० पुत्ते, सचनाम तुम्हे इमे आदि की अनुरूपता से बना है ।

(३) ३ या बहु० पुत्तेहिं=पुत्रेहि (जैसा कि ऋग्वेद में मिलता है § २६) ।

(४) ५ मी बहु० का प्रयोग अमा० के अतिरिक्त और प्राकृतों में बहुत कम है । पुत्तेहितो=३या बहु०+तस् ।

(५) ७ मी एकव० पुत्तम्मि (= पुत्रस्मिन्), सर्वनाम रूप की अनु रूपता से ।

§ ८७—नपुं० फल ।

इस शब्द के पुत्त की भाति रूप बनते हैं, केवल १मा और २या में भेद है ।

१मा, २या एकव० फल, १मा, २या बहु० फलाइ ।

§ ८८—इकारान्त शब्दों की रूपरचना ।

पुल्लिङ्ग—अग्नि=अग्नि ।

एकवचन १ मा अग्नी

२ या अग्नि

३ या अग्निष्ठा

५ मी (प्रयोग बहुत अल्प । रूप विविध ।)

६ छी अग्निष्ठा, (महा० अग्निस्त्स)

७ मी अग्निमि

बहुवचन १ मा अग्नीओ, अग्निष्ठा (महा० अग्निष्ठा, अग्नी)

२ या अग्निष्ठा

३ या अग्नीहि (महा० अग्नीहि)

६ छी अग्नीष्ठा (महा० अग्नीष्ठा)

७ मी अग्नीसु (सु)

नोट—(१) सरूत के नपुंसक ६छी एक० की भाति प्राकृत का पु० ६छी एक० अग्निष्ठा भी इन् अन्त शब्दों की अनुरूपता से हुआ है ।

इसी प्रकार पुत्तस्त्स की अनुरूपता से अग्निस्त्स शब्द हुआ ।

(२) ७मी एक० अग्निमि मी पुत्तमि की अनुरूपता से ।

(३) १मा, २या बहु० अग्निष्ठा—इन् अन्त शब्दों के सादृश्य से ।
अग्नीओ रूप इकारान्त स्त्री० बहु० प्रत्यय-ईओ की अनुरूपता से ।

(४) महा० अग्नी १मा बहु० पुत्त पुत्ता अग्निः अग्नी की अनु-
रूपता से ।

(५) ३या बहु० अग्नीहि । हि, हि प्रत्यय के पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है, देखिये पुत्तेहि । महा० और कई अन्य प्राकृतों में ऐसे रूपों के अंतिम अनुस्वार का लोप हो जाता है ।

§ ८६— नपु० पुति=द्विधि ।

इस की रूपरचना अगि शब्द की भांति होती है केवल प्रथमा द्वितीया में भेद है । १ मा, २ या एक० दर्दि या ददि । १ मा, २ या बहु० दर्दिह ।

§ ८७— उकारान्त शब्दों की रूपरचना इसान्त में बहुत कुछ मिलता है ।

पुतिह याउ=पापु

	एकव०	बहुव०
१ मा	याऊ	याउणो, (माह० याउ)
२ या	याउ	याउयो
३ या	याउण	याऊदि (दि)
६ छी	याउणो, (माह० याउस्व)	याऊण (-ण)
७ मी	याउमि	याऊसु (-सु)

नपु० बहु=मधु का १ मा, २ या एक० महुं या महुः । १ मा, २ या बहु० महुह । शेष याउ की भांति ।

§ ८८— छीलिह शब्दों की रूपरचना । ३ या, ६ छी, ७ मी एक० के रूपों में भेद नहीं रहा । आकारान्त, ईकारान्त और ऊकारान्त की रूप रचना की समान शैली है ।

	<u>माला</u>	<u>देवी</u>	<u>यहू</u> =यधू
एकवचन			
१ मा	माला	देवी	यहू
२ या	माल	देवि	यहु
३ या	} मालाण	देवीण	यहूण
६ छी			
७ मी			
५ मी	शौ० मालादो,	देवीदो	यहूदो
	माह० मालाओ	देवीओ	यहूओ
संशोधन माले		देवि	यहु

यहुयचन १ मा }	मालाओ,	देवीओ,	घहओ,
२ या }	माला	देवी	घह
३ या	मालाहि (हिं)	देवीहि (-हिं)	घहहि (हिं)
५ मी	[मालाहितो	देवीहितो	घहहितो]
६ छी	मालाण (-ण)	देवीण (-ण)	घहण (-ण)
७ मी	मालासु (-सु)	देवीसु (-सु)	घहसु (-सु)

नोट—(१) ५मी एक० का प्रत्यय आओ, आओ पुलिङ्ग शब्दों की रूप रचना से लिया गया है । शौरसेनी में यह प्रत्यय आप भी होता है ।

(२) ३या, ६छी, ७मी, एक० आप का मूल सस्कृत प्रत्यय आपै है जो यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में ५मी ६छी एक० के लिये प्रयुक्त होता है ।

(३) १मा यहु० मालाओ, देवीओ की अत्रुरूपता से (ईओ=ई+अस्)

§ ६२—विशेष रूप ।

अकारान्त शब्द । (१) माग० और अमा० में १मा एक० के रूप एकारान्त बनते हैं । जैसे—माग० पुलिंशे, अमा० पुरिंसे=पुरुष । अपभ्रंश में १मा, २या के रूप उकारान्त होते हैं ।

(२) अमा० में ४थी एक० के रूप देवत्ताए=देवत्ताय आदि होते हैं । ये रूप स्त्री० ४थी एक० के आधार पर हैं ।

(३) माह०, अमा० में छन्दोभग के कारण ५मी एक० के—आओ का—आउ बन जाता है । रण्णाउ=अरण्यात् ।

माह० और अमा० में ५मी एक० के रूप आकारान्त भी बनते हैं । वसा=वशात्, घरा=गृहात् ।

माह० में ५मी एक० के रूप हि प्रत्ययान्त भी होते हैं । जैसे—मूलाहि=मूलात्, दूराहि=दूरात् ।

कमी द्वितो प्रत्यय भी लगता है—द्वित्रयाद्वितो=द्वदयात् ।

(४) माग० में दृष्टी एक० का प्रत्यय-श्च या-ह होता है। जैसे—चालुदत्तश्च या चालुदत्ताह=चावदत्तस्य ।

(५) माह० में ७मी एक० के-ए और-मि प्रत्ययात् रूप एकट् आ जाते हैं। जैसे—गअमि पओसे=गते प्रदोपे ।

अमा० में मय ने अधिक रूप- सि प्रत्ययात् होते हैं (नि=सिन् § ४७) । जैसे—सोगसि=लोके ।

किसी प्राकृत में ७मी एक० के रूप द्वि प्रत्ययान्त भी होते हैं। जैसे—माग० पयहणाहि=प्रवहणे ।

(६) नपु० १मा, २या बहु० के प्रत्यय माह० में -आइ, आई, आर होते हैं। अमा० और शो० में आणि भी होता है ।

किसी प्राकृत में वैदिक की भांति या भी होता है -शो० मिधुणा=मिधुनानि, जाणयत्ता=यानपात्राणि ।

(७) कमी पु० २या बहु० का रूप आकारान्त होता है (-आ <-आन्) । जैसे—माह० गुणा गुणान्, अमा० आसा=अभ्यान् । यह रूप अपभ्रंश में बहुत मिलता है ।

§ ६३—इकारान्त और उकारान्त शब्द ।

(१) ५मी एक० के रूप । माह० उअहीउ=उद्धे, अमा० कुच्छीओ=कुक्षे, जैमाह० रम्मगिणो=रमाग्रे ।

(२) ७मी एक० । अमा० में-हि प्रत्यय प्रसिद्ध है, आइति=आदौ ।

(३) १मा बहु० । अमा० रिसाओ=अपय, साहवो=साधव ।

नपु०—माह० अच्छीइ, अच्छीणि=अक्षीणि, अमा० मसइ, मसणि=शमथ्णि ।

(६) ईकारान्त और ऊकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप ई, ऊ को ह्रस्व कर के इकारान्त, उकारान्त शब्दों की भांति बनते हैं ।

§ ६४—खीलित् शब्द । आकारान्त ।

(१) ३या, ६ष्टी, ७मी एक० का प्रत्यय आप छन्द के अनुरोध से -आइ घन जाता है ।

(२) घेयाकरण -आअ प्रत्ययान्त रूप का निषेध करते हैं परन्तु माह० में पाया जाता है—माह० जोएहाअ=ज्योत्सनया ।

(३) ५मी एक० । प्रसिद्ध रूप—माह०-आओ प्रत्यय, शौ० माग० -आओ । शौ० माग० में आप प्रत्ययान्त रूप भी होते हैं—इमाप मअतरिहआप=अस्या मृगतृष्णिकाया ।

(४) कमी १मा, २या बहु० के रूप आकारान्त होते हैं । जैसे—माह० रेहा=रेखा, शौ० पूइजन्ता देवदा=पूज्यमाना देवता ।

§ ६५—इकारान्त (ईकारान्त), उकारान्त (ऊकारान्त)

(१) ३या, ६ष्टी, ७मी एक० । माह० में-ईप के स्थान में कई बार ईअ आता है ।

(२) शौ० दिट्टिआ=दिष्ट्या, प्राचीन ३या एक० का अवशेष है ।

(३) १मा, २या बहु० के -इओ, -ऊओ छन्द के अनुरोध से -ईउ, ऊउ हो जाते हैं ।

§ ६६—स० ऋकारान्त शब्दों के विकार ।

कर्तृसूचक और सम्यन्धसूचक शब्दों की रूपरचना में भेद बना रहता है । १मा, २या एक० और १मा बहु० में प्राकृत सस्वर का अनुकरण करती है । इतर विभक्तियों में उकारान्त (अथवा इकारान्त) अथवा द्वितीया के रूप से स्वतन्त्र शब्द बना लिया जाता है । जैसे—पिउ, पिइ, या पिअर=पिठ; मत्तु, मट्टि या मत्तार=मर्त ।

§ ६७— कर्तृसूचक शब्द सम्बन्धसूचक शब्द

	भत्तु=भर्तु	पिउ=पितृ
एकवचन	१मा भत्ता	शौ० पिदा, माह० पिआ
	२या भत्तार	शौ० पिदर, माह० पिअर
	३या भत्तुणा	शौ० पिदुणा, माह० पिउणा
	६थी भत्तुणो	शौ० पिदुणो, माह० पिउणो
	७मी भत्तारे	
बहुवचन	१मा भत्तारो	शौ० पिदरो, माह० पिअरो
	२या	शौ० पिदरो, } माह० पिअरो } पिदरे } पिअरे }
	३या भत्तारेहि	पिऊहि
	६थी भत्ताराण, (-ण) पिऊण	
	७मी भत्तारेसु	पिऊसु, (सु)

नोट—(१) "स्वामी"वाचक भर्तु शब्द का विकार इकारान्त होता है। १मा एक० भट्टा, २या एक० भट्टार, ३या एक० भट्टिणा।

(२) मातृ शब्द के रूप—

१मा एक० माह० माआ	शौ० माग० मादा
२या एक० माह० माअर	शौ० मादर
३या एक० माआण	शौ० मादाण

इस की रूपरचना माआ, माह, माउ या माअरा शब्द से भी हो सकती है।

§ ६८—अन् प्रत्ययान्त शब्द ।

इन शब्दों की रूपरचना न् का लोप करके अकारान्त शब्दों की भांति होती है, अथवा सुट् (सर्वनाम स्थान) के रूपों से एक नवीन अकारान्त शब्द बना लिया जाता है। पेम्म=प्रेमन् । १मा,

२या एक० पेम्म; ३या एक० पेम्मेण, ६ष्टी एक० पेम्मस्त, ७मी एक० पेम्मे (माह० पेम्मम्मि), १मा, २या बहु० पेम्माइ, ६ष्टी बहु० पेम्माण ।

मुद्ध या मुद्धाण=मूर्धन् । १मा एक० मुद्धा या मुद्धाणो=मूर्धा, ३या एक० अमा० मुद्धेण या मुद्धाणेण । बहुत से शब्दों में १मा एक० का आकारान्त रूप ही प्राचीन युग का अवशेष है । राजन् और आत्मन् शब्दों में कुछ और अवशेष भी हैं ।

§ ६६—राश्र=राजन् शब्द के रूप ।

एकवचन १मा राश्रा=राजा

२या राश्राण=राजानम् ।

३या राश्रा=राज्ञा (§ ३६), अथवा इ स्वरभक्ति से राइणा रूप होता है ।

६ष्टी राश्रो=राष्ट्र, अथवा राइयो

७मी (राइम्मि, राश्रम्मि, राए)

सबोधन राश्र=राजन्

बहुवचन १मा (२या) राश्राणो=राजान

३या राईहि (इकारान्त शब्द की भाँति, ३या एक० राइणा के आधार पर)

६ष्टी राईण

नोट—समस्त पदों में राश्र शब्द सदा अकारान्त नहीं होता । शौ० महाराश्रो=महाराज, जुअराश्रो=युवराज, वच्छराश्रो=वत्सराज, परन्तु अमा० देवराया=देवराज । शौ० २या एक० महाराश्र, ३या एक० महाराएण, ६ष्टी एक० महाराश्रस्त, परन्तु अमा० ३या एक० देवरणा, ६ष्टी एक० देवरणो ।

§ १००—आत्मन् शब्द को अत्त-या अप्य-आदेश होता है (§ ३६) ।

माह०	शौ० माग०
१मा एक० अप्पा	अत्ता
२या एक० अप्पाण	अत्ताणअ=आत्मानकम्
३या एक० अप्पणा	
६ष्टी एक० अप्पणो } अत्तणो }	अत्तणो, माग० अत्ताणअश

नोट—(१) अमा० में १मा एक० का रूप अप्पो भी होता है ।

(२) अकारान्त रूप १मा एक० अप्पाणो, अत्ताणो, तथा समास में अप्पण-अत्तण-रूप भी होते हैं ।

§ १०१—इन् प्रत्ययान्त शब्द । इन के कुछ रूप सस्मृत शैली से और कुछ रूप इकारान्त शब्दों की शैली से बनते हैं । चूँकि प्राकृत में इकारान्त शब्दों की रूपरचना का कुछ अंश स० इन् प्रत्ययान्त शब्दों की शैली पर होता है । इस लिये भेद के लिये दो एक रूपों में ही दिखाई पड़ता है । जैसे—१मा एक० हरथी=हस्ती, परन्तु २या एक० हर्त्ति=हस्तिनम् (शौ० में कभी हर्त्तिण भी होता है) । ६ष्टी एक० जैन प्राकृतों में कभी-इस्स प्रत्ययान्त होता है, अन्यथा सर्वदा-इणो प्रत्ययान्त होता है ।

§ १०२—अत् प्रत्ययान्त शब्द । स० अत्, मत् और यत् प्रत्ययान्त शब्द प्रा० में अन्त, मन्त और घन्त प्रत्ययान्त हो जाते हैं । जैसे—शौ० करेन्तो=कुर्वन्, पुलोअन्तो=प्रलोकयन्, करेन्तेण=कुर्वता, महन्तस्स=महत्, गच्छन्तेहि=गच्छन्ति ।

§ १०३—अपवाद । अर्धमागधी में कई धार प्राचीन शैली के रूप पाए जाते हैं । जैसे—कुव्व=कुर्वन्, महओ=महत् । इतर प्राकृतों में भवत् और भगवत् शब्दों के ऐसे रूप मिलते हैं ।

	भवत्	भगवत्
१मा	भव	भगव

२या भवन्त भवन्त

३या माह० भवन्ता, शौ० भवदा माह० भवन्ता शौ० भवन्ता

६ष्टी माह० भवन्तो, शौ० भवदो माह० भवन्तो शौ० भवन्तो

§ १०४—सकारान्त शब्द । अस्, इस्, उस् प्रत्ययान्त शब्दों की रूपरचना अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त शब्दों की शैली पर होती है । जैसे—शौ० पु०रुरयस्स=पु०रुरयस्, दी०हाउ=दी०र्घायुपम्, अमा० सजोह=सज्योतिषम् ।

अपवाद—कोई कोई रूप प्राचीन शैली के भी मिलते हैं । जैसे—पु०रुरया (१मा एक०), पु०रुरयस् (२या एक०), पु०रुरवास् (७मी एक०) । प्राचीन शैली के ३या एक० के रूप अमा० और जेमहा० में बहुत पाए जाते हैं—मणसा, सहसा, तयसा=तपसा, तेयसा=तेजसा, चपलुसा=चलुषा ।

§ १०५—प्राचीन शैली के और कई रूप मिलते हैं जो प्रायः नियत धर्माधिकारों से उत्पन्न होते हैं । उन को किसी एक नियम के आश्रित नहीं किया जा सकता ।

सर्वनाम ।

§ १०६—उत्तम और मध्यम पुरुष के सर्वनामों के कई कई रूप पाए जाते हैं । जो बहुत प्रसिद्ध हैं वे नीचे दिये जाते हैं ।

	उत्तमपुरुष	मध्यमपुरुष
एकवचन	१मा अह, ह	तुम (माह० त)
	२या म (महा० मम)	तुम, ते
	३या मय	तय, तुय
	५मी (ममाओ)	(तुमार्हितो) (बहु० रूप)
	६ष्टी मम, मे, मह	तुह, ते, (अमा० तव)
	७मी मह	तह (महा० तुममि)

बहुवचन	१मा अग्ने	तुम्हे
	२या अग्ने, णो	तुम्हे, यो
	३या अग्नेहिं	तुम्हेहिं
	५मी (अग्नेहितो)	()
	६ष्टी अग्नाय, णो	तुम्हाय
	७मी अग्नेसु	(तुम्हेसु)

‡ १०७—रूपान्तर ।

उत्तम० एकवचन १मा—अहम् या अहं से व्युत्पन्न—
महा० अह्य, जैमा० अहय, माग० ह्ये, अप० ह्ये ।

२या—महा० अमा० जैम० मम (६ष्टी एक० मम रूपसे बना हुआ)

३या—अप० मम (२या का रूप भी मम होता है)

५मी—का प्रयोग बहुत अल्प है ।

६ष्टी—माह० मज्ज (ज्ज), मह (ह), जो मह्यम् और मे से निकले हैं ।

७मी—माग० मह ।

बहुवचन—१मा—अग्ने=वैदिक अस्मे, अमा० यय भी ।

२या—श्री० अग्ने, णो, महा० अग्ने, अग्ने, णे माग० अग्ने ।

६ष्टी—माग० अग्नाय, महा० अमा० जैम० अग्ने, श्री० में बहुत करके णो होता है ।

मध्यम पु० एकवचन—१मा—तव से प्राप्त रूप तुम । महा० में त भी बहुत आता है । अमा० तुमे, टक्की प्राकृत में तुह, अप० तुह ।

२या—प्राय १मा की माति, अप० तह, अमा० ते, श्री० माग० ते या दे ।

३या—लिखित प्रतियाँ में तप या तुप । महा० तह, तुह, तुमप, तुमाप, तुमह, तुमाह, तुमे ।

१मी—शौ० तत्तो, तुवत्तो—त्वत्त । महा० तुमादि, तुमादितो, तुमाओ ।

६ष्टी—शौ० तुह, ते, महा० में तुह, तुज्ज (ज्ज), तुम्म, तुम्हं, तु मी होते हैं ।

७मी—शौ० तह, तुह, महा० तह, तुधि, तुमम्मि तुमे ।
चटुवचन—१मा—अम्हे की अनुरूपता से तुम्हे । अमा० तुम्हे ।

६ष्टी—माह० तुम्ह मी, अमा० तुम्म, महा० शौ० थो ।

१मी—व्याकरणों में कई रूप दिये हैं—तुम्हत्तो, तुम्मत्तो, तुज्जत्तो आदि ।

§ १०८—प्रथम पुरुष— स-और त-शब्द

	पु०	नपु०	स्त्री०
एकवचन १मा	सो	तं	सा
२या	त	त	त
३या	तेण (ण) तस्स तस्सि, तस्मि		ताय, तीय
६ष्टी			
७मी			

चटुवचन १मा	} ते	ताइ (अमा० ताणि)	ताओ, ता
२या			
३या	तेहि, (हि)		ताहि, (हि)
६ष्टी	तेसि, ताण, (ण)		तासि, ताण, (ण)
७मी	तेसु		तासु

§ १०९—विशेष रूप ।

स- के रूप—१मा एक० माग० शे, २या एक० अमा० से, ६ष्टी एक० महा० अमा० शौ० से, माग० शे (त्रिलिंग) ।

पटुप० १मा—अमा० मे, माग० शे, २या—६ष्टी—मे ।

त- के रूप—एच० १मी—अमा० ताधो, शी० माग० तदो= तत । माद० ता=धै० तात् । ६ष्टी—माग० तदश, मदा० ताध्र भी । स्त्री० मदा० तिरुमा भी । अमा० तासे । ७मा—शी० तस्मि, माग० तस्मि, मदा० तस्मि, अमा० तस्मि ।

पटुप० १मा० शी० माग० ते का दूसरे सव्यंताम के पदे दे रूप हो जाता है—एवे दे । १मी—अमा० तेम्मा, तेदिता ।

§ ११०—इतर सव्यंताम रूप भी इसी प्रकार पाये हैं ।

पु०	नपु०	स्त्री०
एत— एसो	शी० एद, मदा० एध=एतत्	एसा
ज— जो	ज=यत्	जा
क— को	किं	का
इम— इमो	इमं, इप इदम्)	इमा

इदम् शब्द के और रूप—

शी० अय=अयम्, अमा० अय (त्रिलिङ्ग) शी० इय=इयम् ।

मदा० अमा० शी० इद (केवल १मा में) ।

मदा० अस्म=अस्य, पण, अमा० शी० असेणु-अने ।

इय- को ए हो जाता है—ए ऐय, ये ।

अमा० में इमेण, इमायो, इमन्स, इमस्मि होते हैं ।

अम् शब्द की रूपरचना उन्मरान्त राजा शब्दों की भांति होती है ।

§ १११—सव्यंताम विशेषण ।

शी० अगस्मि=अन्यस्मिन्, कदस्मि=कतरस्मिन्, अयस्मि=अपरस्मिन्, परस्मि=परस्मिन्, अण्णे=अ-यान् । शी० सव्याण, अमा० सव्योसि=सर्वेषाम् ।

§ ११२—सख्यावाची शब्दों की रूपरचना ।

१—एक (अमा० एग) की रूपरचना सर्वनामों की भांति होती है। ७मी एक० शौ० एकहिंस, माग० एकहिंस, महा० एकम्मि, अमा० एगसि, एगम्मि । बहु० एके, अमा० एगे ।

२—दो (=द्वी), दुवे (=द्वे), तिणिण (=त्रीणि) की अनुरूपता से दोणिण और दुणिण रूप भी बनते हैं । ये तीनों रूप सब लिङ्गों में व्यवहृत होते हैं । जैसे—शौ० दोणिण कुमारीओ=द्वे कुमारियों । श्या दोहि, (हिं), ६ष्टी दोणह (-एह); ७मी दोसु ।

३—तिणिण=त्रीणि, अमा० तओ=त्रय (प्रयोग लिङ्गनिर्विशेष) । श्या तीहि, ६ष्टी तिणह, (एह) ७मी तीसु ।

४—चत्तारि=चत्वारि सब से प्रसिद्ध रूप है । चत्तारो=चत्वार और चउरो=चतुर १मा ओर २या में निर्विशेष प्रयुक्त होते हैं । श्या चउहि, (हिं), ६ष्टी चउणह, (एह), ७मी चउसु ।

५—पच । श्या पचहि, (हिं), ६ष्टी पचणह, (-एह), ७मी पचसु ।

६—छु । श्या छुहि, ६ष्टी छुणह, (-एह), ७मी छुसु ।

७—१८ तक इसी प्रकार रूपरचना होती है ।

१६-२८ तक के शब्द १मा में अ अन्त नपु०, या आ अन्त स्त्री० होते हैं । और विभक्तियों में स्त्री० एक० होते हैं । जैसे—२०—१मा वीस, वीसा, २या वीस, श्या ६ष्टी ७मी—वीसाए । १मा में वासिह और वीसह रूप भी होते हैं ।

२६-२८—इ-अन्त नपु०, या ई-अन्त स्त्री० होते हैं ।

१००—शौ० सद, महा० सअ } इन की नपु० अकारान्त की
१०००—सहस्स } भांति रूपरचना होती है ।

अध्याय ६

क्रिया की रूपरचना ।

§ ११३—महा की अपेक्षा प्राकृत अवस्था की क्रिया रूपावली में बहुत भेद आ गया है । वणविकारों ने कई एक गणभेद दूर कर दिये तथा अन्तिम व्यञ्जनके लोप ने कई एक क्रिया रूप सदिग्ध कर दिये । सहा की भांति क्रिया की रूपरचना में भी यह प्रवृत्ति रही कि उसे एक ही शैली पर लाया जाय । इस प्रवृत्ति ने पाली आदि पुरानी प्राकृतों पर इतना प्रभाव नहीं डाला था जितना अर्वाचीन प्राकृतों पर । अपभ्रंश में तो प्राचीन शैली के कुछ अनियमित अवशेषों के अतिरिक्त केवल एक ही गण की क्रियारचना हो गई ।

एक और बात भी है । रूपों की संख्या भी कम हो गई । द्वियचन के रूपों का सर्वथा लोप हो गया । आत्मनेपद भी लुप्तप्राय हो गया । इकल्ले दुक्ल्ले रूपों को छोड़ कर लट्, लिट् और लुट् लभार के रूपों का सर्वथा लोप हो गया है । भूत काल प्रकट करने के लिए भ्रान्त रूप, कर्मी अकेला, कर्मी किसी सहायक क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है । इस प्रकार प्राचीन शैली के केवल लट्, लोट्, लिट् और लुट् के रूप, कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य, तथा तुमुभ्रन्त, क्तभ्रन्त, ल्यबन्त और कृदन्तों के रूप बाकी रह गए हैं ।

धातुओं के दस गणों के रूपांश में केवल दो गण बाक गए हैं ।

(१) अ गण के धातु—इन में धातुओं का बहुत बड़ा भाग तथा कर्मवाच्य रूप हैं ।

(२) ए-गण के धातु—इन में एयन्त तथा नामधातु और कुछ अन्य धातु शामिल हैं ।

दोनों की रूपरचना एक ही शैली पर होती है ।

§ ११४—लट के रूप (वर्तमान, सामान्य)

अ-गण

पुच्छ-प्रच्छ

एकवचन—प्र० पु० शौ० पुच्छदि, महा० पुच्छइ

म० पु० पुच्छसि

उ० पु० पुच्छामि

बहुवचन—प्र० पु० पुच्छन्ति

म० पु० शौ० पुच्छध, महा० पुच्छह

उ० पु० पुच्छामो

ए-गण

कध (महा कह)=कप्

एकवचन—प्र० पु० शौ० कधेदि महा० कहेइ

म० पु० „ कधेसि „ कहेसि

उ० पु० „ कधेमि „ कहेमि

बहुवचन—प्र० पु० „ कधेन्ति „ कहेन्ति

म० पु० „ कधेध „ कहेह

उ० पु० „ कधेमो „ कहेमो

नोट (१) अमा० रूप महा० के सदृश होते हैं—पुच्छइ, पुच्छह आदि । माग० के प्रत्यय वही हैं जो शौ० के हैं—पुच्छदि, पुच्छध, पुच्छसि ।

(२) अपभ्रंश के रूपों में बहुत भेद पड़ गया है ।

एकवचन

बहुवचन

प्र० पु० पुच्छइ

पुच्छहि

एकवचन

म० पु० पुच्छसि, पुच्छहिउ० पु० पुच्छे

बहुवचन

पुच्छद्पुच्छद्

इन में और हिन्दी के रूपों में थोड़ा ही भेद रह जाता है ।
जैसे—हि० एकव० प्र०, म० पु० पुच्छे, उ० पु० पुच्छू, बहुव० पुच्छें
§ ११५—आत्मोपद ।

शौरसेनी में यह प्रयोग उद्धृत निरला है । कभी कभी छन्दों में
अथवा मुहावरों में आता है । महा०, अमा० और जेम० में बहुत
मिलता है । प्रत्यय इन रूपों से प्रकट होते हैं—एकव० प्र० पु०
जाणप (शी० जाणदे), म० पु० जाणसे, उ० पु० जाणे । बहुव०
प्र० पु० जाणते ।

उदाहरण—महा० शी० जाणे=जाने, महा० मणप=मन्यते, शी०
सहे=लभे, इच्छे, महा० जाणसे, माग० इच्छे=इच्छसे, महा०
पेच्छप=प्रेक्षते, तीरप=तीर्यते (कर्मवाच्य) ।

§ ११६—लोट लकार अथवा आशावाची क्रिया के रूप ।

एकवचन—प्र० पु० शी० पुच्छदु महा० पुच्छउम० पु० पुच्छ, कहेहि, पुच्छसु, कहेसुउ० पु० (पुच्छामु)बहुवचन—प्र० पु० पुच्छन्तु कहेन्तुम० पु० शी० पुच्छध महा० पुच्छद्उ० पु० पुच्छम्ह कहेम्ह

नोट—(१) म० पु० एकव० में दीर्घ स्वर के परे हि प्रत्यय
जोड़ने का नियम है परन्तु अमा० में प्राय और महा० माग० में
कभी कभी अकारान्त धातु के अ को दीर्घ करके भी हि प्रत्यय
जोड़ दिया जाता है । जैसे—अमा० गच्छाहि (शी० गच्छ) ।

(२) म० पु० एकव० सु प्रत्यय का मूल स० आत्मनेपद स्प्र प्रत्यय है, परन्तु पिशल् महोदय (§ ४६७) का मत है कि यह प्रत्यय अनुरूपता से उत्पन्न हुआ है। लट्—पुच्छदि पुच्छन्ति* लोट्—पुच्छदु, पुच्छन्तु; लट्—पुच्छसि, लोट्—पुच्छसु । इसी प्रकार उ० पु० एकव०, लट्—पुच्छामि लोट्—पुच्छामु । यह आमु प्रत्यय व्याकरणों में ही मिलता है। यह भी सत्य है कि सु प्रत्यय अधिक शौरसेनी और मागधी में पाया जाता है परन्तु आत्मनेपद के अन्य रूपों का प्रयोग बहुत विरल है। शी० करेसु=कुरु, आणेसु=आनय, कजेसु=कथय । चूँकि पाली में स्प्र प्रत्यय के लिए स्सु आता है और यहाँ यह प्रत्यय परस्मैपद धातुओं के परे भी लगता है (ई० मूलट्, पाली व्याकरण पृ० ११७) इस लिए सम्भव है कि सु का मूल स्प्र हो । अनुरूपता के कारण यह परस्मैपद धातुओं के परे भी लगने लग गया होगा ।

(३) पिशल् (§ ४७०) के मतानुसार उ० पु० यह० गृह्=स्म जो लुट् लकार का प्रत्यय है, देखिये वैदिक—वेष्म, देष्म ।

§ ११७—विधिलिङ् ।

इस का प्रयोग अमा० और जेम० में बहुत है, माह० में थोड़ा और इतर प्राकृतों में विरल । इस के रूप दो प्रकार से बनते हैं—

(१) जो रूप महा० अमा० और जेम० में प्रचलित है वह सस्कृत के दिवादि गण के विधिलिङ् रूप में बनता है जिस के प्रत्यय यात्, यास्, याम् आदि हैं । जैसे—

एकवचन—प्र० पु० घट्टेज्जा (-ज्ज)

म० पु० घट्टेज्जासि, (-ज्जासि), (-ज्जाहि), ज्जाहि, -ज्जासु, -ज्जसु

उ० पु० घट्टेज्जा, -ज्ज, (घट्टेज्जामि, लट् रूपों के सा
दृश्य पर)

पहचान—प्र० पु० घट्टेज्जा, -ज्ज

म० पु० घट्टेज्जाद्, -ज्जद्

उ० पु० ज्जेज्जाम

(२) सस्वत के भ्यादि गणी धातुओं के विधिलिङ् रूप से
निकला हुआ । शौरसेनी में तो केवल यद्दी रूप मिलता है, औरों
में भी पाया जाता है ।

पहचान—उ० पु० घट्टे (यहुव० में भी यद्दी रूप है)

म० पु० घट्टे

प्र० पु० घट्टेअ (घट्टे भी होता है)

नोट—एज्जा के पूर्वपती ह्रस्व ए, इ के भ्या में आया प्रतीत
होता है (§ ७२) । इसी लिए स० जानीयात् से अमा० जाणिज्जा,
जाणेज्जा बनते हैं परन्तु इस का इतना प्रचार भ्यादिगण के एत्,
एस्, एयम् प्रत्यय के कारण हुआ ।

§ ११८—लट् टाकार—(भविष्यकाल) । प्रत्यय इस्त < इष्य

पहचान—प्र० पु० पुच्छिस्तदि, महा० पुच्छिस्तद् (या पुच्छिदिद्)

म० पु० पुच्छिस्तसि (महा० अमा० पुच्छिदिसि)

उ० पु० पुच्छिस्त (अमा० पुच्छिस्तामि)

यहुवचन—प्र० पु० पुच्छिस्तन्ति (अमा० पुच्छिदिन्ति)

म० पु० पुच्छिस्तध, महा० पुच्छिस्तद्

उ० पु० पुच्छिस्तामो

नोट—सन्धिस्वर अथवा दीर्घ स्वरों के परे दि वाले रूपों से
इदि वाले रूप बने हैं । प्र० पु० एक० पुच्छिदिद् का छन्द के अनु

रोध से पुच्छिही हो जाता है । व्याकरणों में उ० पु० एक० का इहामि और इहिमि वाला रूप भी दिया है; (अप० पेक्खिहिमि=प्रेक्षिष्ये), उ० पु० बहु०—इहिमो, म० पु० बहु० इहिह, इहित्थ वाले रूप ।

§ ११६—कर्मधाच्य ।

प्राकृत कर्मधाच्य रूप या (१) तो संस्कृत कर्मधाच्य का विकार होता है (-य का शौ० माग० में लोप हो जाता है, औरों में—इज्ज बन जाता है) या (२) धातु के परे अथवा (३) प्रत्यय धर्जित लट् रूप के परे इज्ज लगाने से बनता है । कर्मधाच्य में परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं परन्तु महा० और अमा० में विशेष कर अपूर्ण कृदन्त में आत्मनेपद प्रत्यय भी लगते हैं ।

उदाहरण—(१) महा० जुज्जइ, शौ० जुज्जदि=युज्यते । महा० गम्मइ=गम्यते, महा० दिज्जइ, शौ० दिज्जदि=दीयते ।

(२) ✓ गम् धातु से—महा० गमिज्जइ, शौ० गमीअदि ।

(३) प्रत्यय धर्जित लट् रूप गच्छ् से—शौ० गच्छीअदि ।

एकवचन	शौरसेनी	महाराष्ट्री
प्र० पु०	पुच्छीअदि	पुच्छिज्जइ
म० पु०	पुच्छीअसि	पुच्छिज्जसि
उ० पु०	पुच्छीआमि	पुच्छिज्जामि
	इत्यादि	इत्यादि

§ १२०—प्रेरणार्थक या शिज्जन्त संस्कृत की भांति धातु के परे अय (जो -य- हो जाता है) लगाने से बनता है । जैसे—हासेइ=हासयति । आकारान्त धातुओं के परे पुक् का आगम होता है और प्राकृत में पय का ये बन जाता है । शिवावेदि=निर्वापयति । प्राकृत में इस शैली का बहुत प्रचार है और धातु के परे आ लगा दिया जाता है जैसे—पुच्छावेदि=पृच्छयते ।

§ १२१—कृदन्त । साधारण रूप नीचे दिये जाते हैं ।

कर्तृ-प्रयोग

शब्द प्रत्ययान्त । पु० पुच्छन्तो, स्त्री० पुच्छता, नपु० पुच्छन्त ।
 विजन्त या प्रेरणार्थक—१मा एक० पुच्छयेन्तो आदि ।

भविष्य—पुच्छिस्सन्तो, ता, त

आत्मनेपद (प्रयोग कृत्याच्य अमा० में बहुत)

वर्तमान—पुच्छमाणो, णा (णी), ण ।

भविष्य—पुच्छिस्समाणो आदि ।

कर्मधाच्य

वर्तमान—शौ० पुच्छीअन्तो, महा० पुच्छिज्जन्तो, अमा० पुच्छिज्जमाणे ।

भविष्य—पुच्छिद्व्यो, महा० पुच्छिअव्यो, पुच्छिणीओ, महा० पुच्छिणिज्जो, कज्जो=कार्य (§ १३७)

भूत—शौ० पुच्छिदो, महा पुच्छिओ (§§ १२४-५) ।

§ १२१ (क)—तुमुप्रत । स० तुम् का शौ० माग० में डु और महा० में उ हो जाता है । यह प्रत्यय (१) धातु के परे या (२) ह का आगम कर के प्रत्यय रहित लट् के परे लगाया जाता है । शौ० पुच्छिडु, महा० पुच्छिड ।

उदाहरण—गन्तु, शौ० गन्धिडु, गमिडु, शौ० कामेडु=कामवि तुम्, धारिडु=धारयितुम्, शौ० काडु, करिडु, महा० काड=कर्तुम् ।

(-त्तप् प्रत्ययान्त रूपों के लिये देखो § १३६)

§ १२२—क्त्वा, ल्यप् प्रत्ययान्त या पूर्वकालिक क्रिया ।

शौ० पुच्छिअ, महा० पुच्छिऊण, अमा० पुच्छित्ता या पुच्छिदूण ।
 शौ० माम० कदुअ=कृत्वा, गदुअ=गत्वा । कमी शौ० छन्द में ऊण,

-दूण प्रत्यय होते हैं । जैसे—पेक्सिऊण । गद्य में इअ प्रत्यय ही होता है ।

उदाहरण—शौ० खइअ=*नयिय=नीत्वा, अवणीअ=अपनीय, ओदरिअ (माग० ओदलिअ)=अवतीर्य, पेक्सिअ, मविअ, पविसिअ ।

माग० में अधिक प्रयोग -ऊण प्रत्यय का है । जैसे—हऊण, गन्तूण, हसिऊण, काऊण ।

अमा० में ता (नासिफ्य के परे ता) प्रत्यय बहुत अधिक आता है । जैसे—मवित्ता, गन्ता, हसित्ता, करित्ता । टाण प्रत्यय भी होता है—मवित्ताण ।

§ १२३—असाधारण रूप ।

ऊपर दिये साधारण रूपों के अतिरिक्त बहुत से असाधारण रूप हैं । ये दो प्रकार के हैं—(१) जो शुद्ध सस्कृत रूपों में प्राकृत वर्णविकार के नियम लगने से बनते हैं । (२) जो दोनों सस्कृत और प्राकृत शैली के अनुसार असाधारण रूप हैं । दूसरी प्रकार के रूप बहुत अधिक नहीं । ये अनुरूपता के प्रभाव से बन गए होंगे अथवा प्राचीन लौकिक भारती से चले आए हैं जिन का प्रयोग पाणिनीय सस्कृत में नहीं हुआ ।

§ १२४—प्राकृत के अधिकांश अनियमित धातु अपने क्लान्त रूप में ही भेद रखते हैं । प्राचीन क्लान्त रूपों का व्यवहार में रहना सामायिक था क्योंकि गत कृत आदि शब्द इतने अधिक प्रयुक्त थे कि अनुरूपता से बनने वाले गच्छिदो, करिदो आदि रूप उन के प्राकृत विकार गवो, किदो का बहिष्कार न कर सके । एक और बात भी है । इस रूप ने अपने कृदन्त अर्थ के अतिरिक्त विशेषण का अर्थ धारण कर लिया था । आवश्यक नहीं कि सिग्ध,

मुग्ध, बुद्ध आदि शब्द मिया या रुद्ध का बोध कराए, यद्यपि उन की व्युत्पत्ति यही है। अनुरूपता से येने हुए ज्ञात रूपों की तथा प्रार्चीन व्युत्पत्त रूपों की (अथवा सस्मृत से लिये हुए रूपों की) सख्या भिन्न २ भाटनों तथा ग्रन्थों में भिन्न २ है। न ये नियम पड़ हैं और न इन की पूरी सूची बनाने का कुछ लाभ है, तथापि कुछ ऐसे रूप हैं जिन का प्रयोग बहुत अधिक होता है, पाठकों को उन से परिचित हो जाना चाहिये। उन की सूची नीचे दी जाती है।

§ १२५—ज्ञात—

असाधारण रूप

ज्ञात रूप	सस्मृत मूल	लट रूप
अपरज	अपराज	महा० अपरजम्ह
आदत्त	(*आघत्त) आहित	महा० आढाह, (प्रेरणा० आदधह)
आणत्त	आणत्त	शौ० आणयेदि (§३६)
आरब्ध	आरब्ध	शौ० आरम्भदि
आरूढ	आरूढ	महा० आरूढह
आसण	आसन्न	शौ० आसीददि
उत्त	उत्त, अमा० युत्त	
उत्तिण	उत्तीर्ण	महा० उत्तरह
ओश्यण, शौ० ओदिगण	अधतीर्ण	ओअरह
महा० कअ, अमा० कय	कृत	महा० करेह
शौ० किद (§११), कद (§६०) }	एत	शौ० करेदि
किलिह	क्लिष्ट	महा० किलिस्तह
कुपिद	कुपित	शौ० कुप्पदि

ज्ञान्त रूप	संस्कृत मूल	लद रूप
अज्ञान्त	अज्ञान्त	शौ० कमदि
महा० खञ्ज, खाञ्ज	यात	महा० राणइ
शौ० यण्डिद		
महा० खञ्ज, शौ० खद	ज्ञत	—
खिण	लीण	महा० पिज्जइ
खित्त	क्षित्त	पिवइ
महा० गञ्ज, शौ० गद	गत	शौ० गच्छदि
गविट्ठ	गवेपित	महा० गपेसइ
महा० गहिञ्ज, शौ० गहिद	गृहीत	शौ० गेणइदि (§ ५२)
गीञ्ज	गीत	महा० गाञ्जइ
गूढ	गूढ	शौ० गूहदि
खिण्ण	क्षिण	महा० छिन्दइ, शौ० छिन्ददि
महा० जाञ्ज, शौ० जाद	जात	शौ० जाञ्जदि
महा० जिञ्ज, शौ० जिद	जित	शौ० जञ्जदि महा० जिणइ
जुत्त	युक्त	महा० जुजइ, शौ० जुज्जदि (कर्मवा० § ११६)
चत्त	त्यक्त	महा० चञ्जइ
महा० ठिञ्ज, शौ० ठिद (§ १२) महा० थिञ्ज, शौ० थिद (§ ३८)	स्थित	शौ० चिद्धदि
णद महा० णञ्ज	मत	शौ० खमदि
णट्ठ	नष्ट	शौ० खस्सदि

क्रान्त रूप	संस्कृत मूल	लट रूप
महा० णाश्च, शौ० णाद } ॥ जाणिश्च ॥ जाणिद }	ज्ञात	जाणादि
शौ० विण्णाद पडिण्णाद	विज्ञात प्रतिज्ञात	विण्णवीअदि (कर्मया०)
महा० णीश्च, शौ० णीद	नीत	णेदि

[शौ० अघणीद=अपनीत, आणीद=आनीत, दुग्गिणीद=दुर्विनीत, पच्चाणीद=प्रत्यानीत, उघणीद=उपनीत, परिणीद=परिणीत, महा० णिश्च रूप भी होता है । अहणिश्च=अतिनीत, आणिश्च=आनीत]

एहाअ	ज्ञात	एहाइ (अमा० सिणाइ)
तत्त, तथिद	तत्त	—
तुट्ट (दि० ट्टा)	तुटित	तुट्टइ
तुट्ट	तुट्ट	तुस्सदि
दट्ट, डट्ट शौ० दसिद	} दट्ट	डसइ, शौ० दसदि
दट्ट		दट्टइ, डट्टइ, शौ० डट्टदि
दिस्स	दीत्त	दिप्पदि
दिट्ट	दट्ट	दीसदि (कर्मया०)
दित्थ	दत्त	वेदि
पयट्ट, पयट्ट, पयत्त, पउत्त	} प्रयुत्त	पयट्टइ
पउत्त		पउत्तइ
पउत्थ	प्रयुत्त	पउत्तइ
पण्य	*प्रयस्त=प्रोपित	[पयसइ (?)]
	प्रकीर्ण	[पहरिज्जाइ, पकिरी अदि (?)]

ज्ञान्त रूप	संस्कृत मूल	लट रूप
पठियएण	प्रतिपत्त	पठियज्जदि
पएणत्त	प्रक्षत्त	पएणवेइ
पत्त	प्राप्त	पावइ, पावेदि
महा० पलाइअ, शौ० पलाइद महा० पलाअ जैम० पलाएण	पलायित *पलात	पलायइ
पयिट्ठ	प्रयिट्ठ	पयिसदि
पसत्थ	प्रशस्त	पससदि
पीद	पीत	पियदि
पुट्ठ, पुच्छिइ	पृष्ट	पुच्छदि
पुट्ठ	स्पृष्ट	फुसइ
यत्थ	यत्त	यन्धइ
युत्थ	युत्त	युज्जइ
भट्ठ	भट्ठ	—
मिएण	भिन्न	भिन्दइ
महा० भीअ, शौ० भीद	भीत	बिहेइ, शौ० भाअदि
शौ० भूद	भूत	भोदि
मुत्त	मुक्त	मुज्जदि
मुक्क	*मुक्क, मुक्क	मुञ्चदि
महा० मुअ, मअ, शौ० मुद	मृत	मरदि
मूढ	मूढ	मुज्जइ
रअ	रत	रमइ
रत्त	रक्त	रज्जदि

मान्त रूप	संस्कृत मूल	लट रूप
ररथ	रचित	रच्चइ, शी० रच्चादि
रुह	रष्ट	रगइ
महा० रुण, शी० रुदिद	रुनित	महा० रुगइ, शी० रुदिदि, रोमदि
रय	रन्द	रन्धेदि
लग्ग	लग्न	लग्गाइ, शी० लग्गादि
लज	लग्घ	लदइ
लीण, लिघ्न	लीन	लेइ
लीढ	लीढ	लिदइ
पिण्णत्त	पिण्णत्त	पिण्णयेइ
यूढ	ऊढ	यदइ
समासथ	समाध्यस्त	[समस्तस्यइ (?)]
सिह	शिष्ट (✓शाष्ट)	सादइ
सिच	सिक्त	सिश्चइ
सिज	सिज	सिज्जइ
सुत्त	सुत्त	सुयइ
सुव (महा० सुत्त)	भुत्त	सुणेदि
सुज	शुज	सुज्जइ
महा० हय, शी० हव	हत	हणइ
हय	हत	हरदि
महा० हय, शी० भूद	भूत	होइ'

(१) हेमचन्द्र के कथनानुसार महा० होइ, हुयइ, हवइ, भवइ शी० हुयदि, भवदि, हवदि, मोदि, होदि रूप हो सकते हैं ।

§ १२६—प्राकृत में लट् लकार के असाधारण रूप ।

प्राकृत में लट् लकार के साधारण रूप पुच्छदि और करेदि की शैली पर बनते हैं (§ ११४), और ये (१) या तो सस्कृत के भ्यादिगणीय लट् के विकार होते हैं या (२) इतर-गणीय धातुओं के भ्यादि-लट् की शैली पर बनाए हुए रूपों के विकार । अतः हमें ये रूप नियमित ही समझने चाहिये—जैसे [१] गच्छदि, हच्छदि, सिञ्चदि, मुञ्चदि, मरदि, सुमरदि, पिबदि, फुसदि, कुप्पदि, शृञ्चदि, कघेदि, तर्केदि, चिन्तेदि, [२] हणदि [हन्], लसदि [लघस्] ।

असाधारण रूपों के अन्तर्गत हैं—[१] जो रूप नियमित न हों—जैसे ठाह, [२] जो धातु ए-गण के बना लिये हों—करेदि, [३] जो स० भ्यादि गण के रूपों से प्राकृत में कुछ विलक्षण हो गए हों, [४] नासिक्क्य अनुबन्ध वाले धातु, [५] जिन धातुओं में ए गण चिह्न हो अथवा अनुरूपता से आ गया हो, [६] सस्कृत के इतर रूपों के विकार, [७] अनियमित ।

§ १२७—(१) प्र० पु० एकव० के ऐसे रूप जिन के अन्त में आह (शौ० आदि) है, ये (क) स्वर सन्धि का परिणाम हैं—अप० राह (=आअह)=रादति, या (ख) सस्कृत अदादि-गणीय रूपों के अवशेष हैं । जैसे—महा० वाह=वाति (धाअह, शौ० धाअदि रूप भी), महा० पडिहाह=प्रतिभाति (शौ० पडिहाअदि), शौ० भादि=भाति, विहादि=विभाति, या (ग) अनुरूपता से बन जाते हैं—महा० ठाह=स्थाति=तिष्ठति (शौ० चिठ्ठदि) इसी प्रकार आकारान्त धातुओं से—घाह या आअह, गाह, भाह=(आर्य ध्याति)

राधिअस्य इतर रूप—शी० भोदि=भयति, गुरि=गमति ।

✓वा धातु के देदि, देगि, दमि देगि आदि रूप हैं । देदि का मूल० दयति है—देनिये शी० मयिष्य० दरम्य । पूर्वगानिङ् शस्त्र ।

§ १२८—(२) व-गण की शैली पर रूप बताते पाठे धातु—जैसे—वरोदि=वरोति (परतु प्रेरणा० वारदि=वारयति) । मुञ्चेदि (प्रेरणा० मोञ्चोर्दि), हमेदि तुमग्दि, गिर्गदि, गुर्गेदि, मगेदि, धुपेदि आदि ।

§ १२९—(३) ✓घ धातु से रघ (ग्यादि शैली) रग् (गुरादि शैली) और रोघ, तुमुघत-गोपिउ । शी० रोदिनु रद् धातु से बना है ।

✓घी—महा० धुप, अमा० घोप, घोपे, शी० घोचदि ।

✓भू से महा० हो, हय शी० भोदि होमि, होगि, विधि लिङ् भों भये, तुमुन० मपिदु ।

रज्यदि=*रज्यते (दिपादि गण की शैली पर) । रोचदि, माग० रोचदि रूप भी होते हैं । इसी प्रकार—लग्गदि, वग्गदि (✓मह) । जुज्जदि=*जुज्यति (आर्ष मुञ्जति) ।

§ १३०—(४) छिद् से छिद्, छिन्ददि बताता है । यह रूप न्यत निश्च है क्योंकि सस्कृत में लट् क रूपों में नासिक्य होता है । इसी प्रकार रधादि गण के इतर धातुओं के रूप—गिन्द, भज्ज, मुञ्जदि ।

✓रभ् धातु के रम्म रूप का नासिक्य सस्कृत के लघन्त प्रयोग में भी दिखार देता है । (आर्ष रम्मति) ।

मुञ्चदि (महा० मुञ्च) साधारण है परन्तु महा० में मुञ्चसि=*मुचमि रूप भी पाया जाता है ।

§ १३१—(५) ए रहता है—चिणइ, शौ० चिणेदि=चिनोति;
कुणइ=कृ० कृणोति; सुणेदि, महा० सुणइ=शृणोति; जाणइ, शौ०
जाणदि, न आणदि=न जानाति, किणइ=कीणाति; गेणइ=गृह्णाति,
शौ० सकणोमि, सफहुणोमि=शक्नोमि, धुणइ (शौ० धोअदि, पा०
धोवति । अनुरूपता से जिणइ, शौ० जअदि (√जि), धुणइ (√स्तु) ।

§ १३०—(६) गत्यर्थ √इ के पदि (महा० पइ), एसि, पमि,
एन्ति आदि रूप बनते हैं । सत्ता अर्थ √अस् के अतिथि, सि, मिह,
सन्ति, एव, म्हा (महा० म्हा) रूप होते हैं ।

(अतिथि रूप सब पुरुषों और वचनों में प्रयुक्त होता है) ।

√भी—महा० मिहेइ शौ० माअदि ।

(७) भणदि (प्रधादि गण की भाति भ-णा मि समक कर),
मणेदि रूप भी, सुणादि=सुणेदि ।

√स्वप् का सुप् हे। कर सुअइ, और फिर रुअइ . रोधइ की
अनुरूपता से सोवइ, शौ० सोवदि रूप भी बनते हैं ।

§ १३३—इतर लकारों के अवशिष्ट रूप ।

लट्—आसी=आसीत् (यह सब पुरुषों तथा वचनों में प्रयुक्त
होता है)

विधिलिट्—अमा० सिया=स्यात्, कुज्जा=कुर्ज्यात्, वूया=
भूयात्, सज्जा= वै० शन्यात् (पिशल् § ४६५) ।

आशीलिट्—महा० अमा० होज्जा=भूयात्, अमा० देज्जा=देयात् ।

लुट्—अमा० अकासि, (-सी)=अकार्षीत्, अकार्षी ।

बहु० प्रत्यय—इसु—अकरिंसु (देखिये पाली रूप)

लिट्—अमा० आहु=आहु, बहु० आहंसु ।

§ १३४—भविष्य (लृट्) के असाधारण रूप ।

इस्मदि (या महा० इहिइ) वाले लृट् के साधारण रूप प्रत्यय रहित लृट् से बनाए जाते हैं—पुच्छिस्स कधिस्स, महा० पुच्छिइ, कदेइ (§ ११=) । ससृजत की भांति धातु से भी बनते हैं—महा० येहिइ=नेप्यति, परन्तु शी० यइस्मदि, शी० गमिस्सदि ।

√भू के लृट् के अनुसार यह रूप हैं—शी० भयिस्स, हुयिस्म, माग० हुयिश्श, महा० होहिइ, होस्स ।

√स्था—महा० ठाहिइ (लृट्-ठाइ) ; शी० चिद्धिस्सदि [लृट् चिद्धिदि] । दूसरे रूप स०-स्थति आदि के विकार हैं और विशेष कर महा० अमा० में पाए जाते हैं—वच्च=द्रव्यामि [प्र० पु० एक० दच्छिइ, म० पु० षष्ठ० दच्छिस्सि, प्र० षष्ठ० वन्धिस्सि] ; मोच्च (√मुच्), वेच्च (√विद), रोच्च (√रुद) ; पोच्च (√घष्) । वच्च आदि रूप शी० और माग० में प्रयुक्त नहीं होते । शी० पेक्किस्स (महा० पेच्छिस्स), रोदिस्स, वेदिस्स ।

णिजन्त तथा इतर ए गण के धातुओं का लृट् (१) ससृजत की भांति घ का लोप करने से बनता है—शी० वधइस्सि, मोआयइस्सि=मोचापयिष्यसि, णिअइस्सदि=निघर्तयिष्यति, (२) महा०, अमा० में ए रहता है वदेहामि=घर्तयिष्यामि, (३) अय=ए का लोप करने से—महा० कहिस्स, शी० कधिस्स, महा० पुलोइस्स=प्रलोकयिष्यामि, शी० तक्किस्सदि=तर्कयिष्यति, सुस्सइस्स=शुश्रूषयिष्यामि, माग० मालिश्शशि=मारयिष्यसि ।

√दा का शी० दइस्स, महा० दाइ । √कृ का शी० करिस्स, और महा० में काइ रूप भी होता है ।

§ १३५—असाधारण कर्मवाच्य रूप ।

(क) जो रूप शौ० इअ ओर इज्ज न रखने से असाधारण दिखाई पड़ते हैं वे वास्तव में संस्कृत रूपों के विकार हैं (§ ११६) । जैसे—जुज्जदि=युज्यते; गम्मइ=गम्यते । और उदाहरण—रिप्पइ (रिप्), लुप्पइ (लुप्), मज्जइ (मज्), यज्मइ (यन्ध्, ध्य ७ उक्त § ४४), रज्मइ (रुध्), आरब्भइ (आ+रभ्), गिज्जइ (गा), खज्जइ (खाद्), लब्भइ, शौ० लब्भदि (लभ्), जिज्जइ (जिद्), मिज्जइ (मिद्), भुज्जइ (भुज्), मुच्चइ (मुच्), घुच्चइ (घच्), तीरइ (तृ), कीरइ (कृ) ।

(ख) दूसरे उदाहरण भी अप्रचलित धातु अथवा रूपों के विकार हैं । जैसे—घुग्मइ=उह्यते (√घुग्), दुग्मइ=दुह्यते, लिग्मइ=लिह्यते, रुग्मइ=रुह्यते, घेप्पइ=गृह्यते, उ, ऊ के स्थान में उप् करने से—रुव्यइ=*रुह्यते (शौ० रोदीअदि), सुव्वइ, शौ० सुणीअदि (शु) थुव्वइ (स्तु), धुव्वइ, घुणिज्जइ (धू) । इसी प्रकार के हैं चिक्कइ (चि के बदले चीक्) इस का चिणिज्जइ, 'शौ० चीअदि भी बनता है, जिक्कइ (जि के बदले जिक्) ।

(ग) आधप्पइ गिजन्त कर्मवाच्य है=आधाप्यते, इसी प्रकार विधप्पइ है ।

(घ) जम्मइ (जन्म लेता है) जम्म=जन्मन् शब्द से बना है । इसी प्रकार हम्मइ (√हन्), यम्मइ [√यन्] बने हैं ।

(१) धैयाकरण चिक्कइ, जिक्कइ को चि, जि धातुमूलक मानते हैं । ये उ, ऊकारान्त धातुओं की श्रेणी पर बने हैं । परन्तु पिशल् (§ २३०) का कहना है कि चिक्कइ चिक् धातु से बना है जो धातुपाठ में ग्रहण करने या दापने के अर्थ में पाया जाता है, इसी प्रकार जिक्कइ जिक् धातु से जिस का अर्थ है प्रसन्न करना ।

सुम्मा [✓ध] विम्मा [✓वि] के लिये कोई समाधान नहीं मूला ।

नोट—शौरसेनी और मागधी में प्रायः प्रत्यय रहित लट् के कर्मपाठ्य रूप बनाए जाते हैं । जैसे—मत्ता० लम्मा, शी० लम्मीछदि तथा लम्मीछदि, मद्दा० मुय्य, शी० मु-यीछदि, मद्दा० सुय्य, शी० सुयीछदि, माग० सुयीछदि, मद्दा० रग्गा, शी० रोगीछदि, मद्दा० मुज्जा, शी० मुज्जीछदि, मद्दा० वीर, शी० वीरीछदि [अमा० वज्जा=कपट], मद्दा० गुग्गा, शी० जालीछदि, मद्दा० मग्गा, शी० मगीछदि ।

§ १३६—तुमुन्त के विविध पर्याय ।

इस का साधारण रूप, विशेष कर शौरसेनी में, प्रत्यय रहित लट् के पदे तुम् [मद्दा० इउं, शी० इउ] लगा कर बनाया जाता है । जैसे—गच्छिदु (गम्), अरुचिदु (रुषा), नेयिदु (नह), जायिदु [छा] ददिदु [दह], सिपिदु (सिप्), इरिदु (इ) । विगन्त—पारेदु, धारेदु, दसेदु=दसयितुम् । कमी अय का प गद्दी जाता—शी० छिद्यत्ताइदु=विपतयितुम् । कमी अकारान्त धातु की माति—घारिदु, मारिदु, कधिदु ।

तुम् प्रत्ययान्त सहरत रूपों के विचार जो शौरसेनी की अ पेदा मादाराष्ट्र में बहुत मिलते हैं । जैसे—शी० ठाडु [रुषा], पाडु [पा='पीता'] । काडु मद्दा० काउ [रु], गडु [गम्] । मद्दा० मोचु=भोक्तुम्, ददुह=दण्डुम्, दाउ [दा], गेउ [नी], पाउ, शी० पाडु, जेम० पिपिउ, [पा], सोउ=थोतुम्, जेउ, अमा० जिण्ड, [जि], लडु [लस], पोडु [पह], छेछु [छिद], मेचु [मिद], मोचु [मुप],

खाउ [क्षा] । इसी प्रकार उने हैं घेत्तु [§ १६] = *घृप्तुम् = ग्रहीतुम् ,
सोत्तु = *सोवृत्तुम् = स्वपितुम्, देखिये रोत्तु = रोदितुम् ।

चच् धातु का महा० में वोत्तु, शौ० में वत्तु बनता है ।

अर्धमासधी में तुम् प्रत्ययान्त रूप बहुधा पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं—काउ का अर्थ है 'कृत्वा, कर के' । तुम्-अर्थ प्रकट करने के लिये इस प्राकृत में त्तप या इत्तप प्रत्यय होता है । चिद्धित्तप [स्था], गच्छित्तप [गम्] ।

ये रूप वैदिक मापा के चतुर्थी विभक्ति के रूपों से बने हैं जो तुम् अर्थ में प्रयुक्त होते थे ।

§ १३७—तव्य, य, नीय प्रत्ययान्त विविध रूप । [§ १२१]

[१]—[क] प्रत्यय रहित लट् अथवा [य] धातु के परे तव्य लगाने से—[क] पुच्छिद्व्य, गच्छिद्व्य, होद्व्य [§ ४] या भविद्व्य, अणुचिद्धिद्व्य, दाद्व्य, सुणिद्व्य, जाणिद्व्य, गेणिद्व्य ।

[ख] सोद्व्य, महा० सोअव्य (ध्रु), घेत्तव्य, काद्व्य, महा० काअव्य (रु) [§ ६३] ।

(२)—नीय (महा० अमा० -अणिज्ज शौ० माग० -अणीअ) लगाने से—शौ० करणीअ, दसणीअ, [लट् से-पुच्छणीअ, महा० करणिज्ज दसणिज्ज ।

[३] -य लगाने से—वज्ज [§ १५०] = कार्य, अमा० वोज्ज = वाह । लट् से—गेज्ज [§ ७०] = गृह्य जो प्रत्यय रहित लट् *गृह् से बना है^१ ।

१ महा० गहिउ, अमा० गिणिहउ, जैम० गेणिहउ, शौ० गेणिहउ रूप भी हैं ।

२ यह विशब्द का मत है । यहिले माह्य का *गज्ज बना, फिर गेणहदि, घेत्त आदि की अनुरूपता से य का व बन कर गज्ज का गेज्ज हो गया ।

अध्याय १०

प्राकृतों के विविध भेद और उन के लक्षण ।

पिछले छ अध्यायों में विशेषतया शौरसेनी और महाराष्ट्री के धर्णविकार तथा रूपरचना के नियम दिये गए, इतर प्राकृतों का प्रसङ्ग वश कुछ धर्णन किया। अब इस अध्याय में इतर प्राकृतों के विशेष लक्षण बतलाए जायेंगे।

मागधी ।

पई कारणों से यह प्राकृत अधिक ध्यान देने के योग्य है परन्तु खेद है कि इस का ज्ञान प्राप्त करने के साधन विस्तृत नहीं। इस के अन्तर उच्चारण अर्थात् धर्णविकार के ऐसे भेद पाए जाते हैं जिन का समाधान करना कुछ आसान बात नहीं।

स के स्थान में श—यह बात तो पूर्वभारती अर्थात् गौडीय भाषाओं में आज भी पाई जाती है। यहां के लोग सामवेद, सीता आदि का न केवल उच्चारण प्रत्युत लेख भी सामवेद, सीता आदि करते हैं। चूंकि और प्राकृतों में केवल दन्त्य स होता है इस लिये तालव्य श से पाठक झूठ मागधी को पहिचान सकते हैं। झूठ जाना जाता है कि भवि-श्चदि शब्द शौरसेनी भविस्मदि का मागधी रूप होगा। इसी प्रकार तार्हिस का तर्हिश सा का शा, पुत्तस्स का पुत्तश्श इत्यादि।

र के स्थान में ल—यह विकार बहुत विचित्र है विशेष कर शब्द के आदि में—लाआणो=राजान, पुलिशे=शौ० पुरिसो=पुरुष, गलुड=गरुड, चालुदत्त=चारुदत्त, ओवालिदशलील=अपवारित-शरीर, शमल=समर, खगलन्तल=नगरान्तर ।

र और ल का विनिमय इतर प्राकृतों में (§ २६), तथा पाली (तलुणो=तरुण) में भी पाया जाता है । यह विनिमय घेद में भी मिलता है जहा अरकणोति के स्थान में अल ✓क, और ✓रुच् के स्थान में ✓लुच् मिलता है । और भाषाओं में इस के बहुत से उदाहरण मिलते हैं और इस बात का निर्णय करना कि मूलवर्ण कौनसा है प्राय कठिन होता है ।

एक ऐसी आर्यभाषा का मिलना जिस में रेफ यिलकुल न हो पड़ी आश्चर्यजनक बात है । विहार और बंगाल प्रान्त की आधुनिक भाषाओं में हर घर र के स्थान में ल नहीं हुआ । ऐसा प्रतीत होता है कि मागधी का र के स्थान में ल उच्चारण करना केवल कधि समय है जो इस बात की सूचना करता है कि पूर्वी भारत में ल बोलने की अधिक प्रवृत्ति थी । चूँकि मागधी को बहुत ही नीच पात्र बोलते हैं, शायद यह विनिमय अनार्य लोगों के उच्चारण की नक़ल है जिन की भाषा में धीनी भाषा की न्याई र वर्ण नहीं था ।

परन्तु यदि हम अशोक महाराज की धर्मलिपियों (वि० पू० २५० वर्ष) की ओर ध्यान करें तो लिपियों की पूर्वी भाषा में यह विकार पाया जाता है । यह भाषा पाटलिपुत्र के राजदरबार की भाषा थी जो इलाहबाद और देहली की धर्म लिपियों में तथा कुछ भेद के साथ फाल्गुनी की धर्मलिपियों में पाई जाती है ।

य रहता है—यलवि ज के स्थान में भी य आता है ।

यथा=शौ० जघा (§ १); याणदि=जानाति ।

याणिद्व्य=शौ० जाणिद्व्य; यणुद्व=जनपद ।

यायदे=जायते ।

(भ का य् हो जाता है—य्दत्ति=भटिति) ।

द्य, जं, य, ये सय य्य यन जाते हैं जिस का परिणाम यह है कि जहा शौरसेनी में झ है वहा मागधी में य्य है । अय्य=अद्य या आर्य (शौ० अज्ज); अयय्य=अवद्य, मय्य=मद्य (य्य का य्द्व बनता है—मय्द्वएण=शौ० मज्झएण § ७४) । अय्युण=अजुन, कय्य=कार्य (शौ० कज्ज § ५०), दुय्यण=दुर्जन ।

इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि मागधी में य का उच्चारण लालव्य ईपत्सृष्ट था जो अंग्रेजी शब्द yes (येस्) में y (यार्) के उच्चारण से भिन्न था । गांधार देश में विदेशी भाषा के एक वर्ण विशेष को जिसे यूनानी लिपि में z (जैड) से प्रकट करते थे 'य' के प्राचीन विह्व से प्रकट किया जाता था ।

इस लिये यज़ीज के सिक्कों पर यष्टी विभक्ति का रूप अयस है । बगला भाषा की कई धोलियों में ज अक्षर का उच्चारण z (ज़) या zh (घ) होता है जैसा कि अंग्रेज़ी शब्द Zeal (जील्) और azure (एयर्) में z (जैड) का उच्चारण होता है । कई शब्दों में 'य' का भी यही उच्चारण होता है । जैसे—बगला में ये शब्द को zbe ये उच्चारण करते हैं ।

एय, न्य, ह और छ का झ हो जाता है । यथा—

पुञ्ज=पुण्य (शौ० पुण्य § ४८), अञ्ज=अय (शौ० अण्य), कञ्जका=कन्यका, लञ्जो=राज (शौ० रण्यो § ६६), अञ्जलि=अञ्जलि (शौ० में अ रहता है) ।

स्वरमध्यवर्ती च्छ का झ हो जाता है^१ । यथा—

गञ्ज=गच्छ, इञ्जीअदि=इच्छति (+ इच्छयते), उञ्जलदि=उच्छलति, पुञ्जदि=पृच्छति । तिलिञ्चि पेस्कुदि=महा० तिरिच्छि पेञ्जइ=तिर्यक् प्रक्षते ।

यदि सयुक्त अक्षर में पूर्ण वर्ण श ष स हो वह वैसे बना रहता है । इस विषय में धैयाकरणों का मतभेद है कि कौन ऊष्म वर्ण मागधी में होगा । लिखित प्रतियों के वर्णविन्यास में बहुत विरोध है, कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता ।

ष्क—हेमचन्द्र के कथनानुसार शुष्क का शुस्क हो जाता है परन्तु पुस्तकों में शुश्के=शुष्क, तुलुश्क=तुरुष्क आदि मिलते हैं ।

ष्ट, ष्ठ का स्ट (या श्ट) हो जाता है—कष्ट का कस्ट या कश्ट हो जाता है, सुष्ट का सुस्ट या शुष्ट ।

ष्प, प्क > स्प, स्फ । णिष्फल=निष्फल (पुस्तकों में णिष्फल, § ३८) ।

स्क, स्ख—पस्खलदि=प्रस्खलति ।

स्त, स्थ > स्त (या श्त)—हस्ते या हस्ते=हस्त (महा० शौ० हरथो § ३८), उपस्तिद=उपस्थित ।

१ चूकि त्रिन स० क्रियाओं में च्छ पाया जाता है वे इत्योरोरविधन ह्वा पावे रूपों से बनी हैं, इस लिये मागधी व वैदिक च्छ की अपेक्षा अधिक प्राचीन हो सकता है, उच्चारण चाहे इस का कुछ ही हो । परन्तु मागधी में हर मकार के च्छ को झ हो जाता है । जैसे उञ्जलदि=उच्छलति, मञ्जली (=मत्स्य+ली-प्रा० मञ्ज, हिं मञ्जली) । लेकिन यदि पहिले पहिल इच्छदि आदि के च्छ को माग० में झ हुआ तो शीघ्र ही यह प्रवृत्ति उन शब्दों में भी फैल गई जहाँ शीर-सेनी आदि में च्छ था ।

रु—बहस्पदि या विहस्पदि=बृहस्पति ।

रा>रु—पेरुदि=प्रेरुः। कभी रा>रु—परु=पल । हेमचन्द्र जिसमें या जिहामूर्तीय के साथ पर, पर भी मिलते हैं ।

धातुत्व में मागधी उच्चारण न 'र' था न 'रु' जैसा कि ये एवं मध्यदेश में उच्चारण किये जाते थे । इन प्रकार के समुह अक्षर प्राकृत में स्थापारण नहीं थे अतः लिखित पुस्तकों में प्रायः रु अदि पाए जाते हैं ।

रु>स्त या रु—तिस्त=तीर्थ, अरु=अर्थ ।

यह केवल अनुरूपता से हो सकता था । जैसे—श्री० हरयो माग० हर्यो श्री० आथा माग० अन्ने ।

रूपरचना में केवल दो बातें उदात्तनीय हैं—(१) मा ए० के रूपरचना रात—रो हस्ते=श्री० नो ह्यो और ह्यो=अहम् (§ १०७) । और बातों में मागधी की रूपरचना शौरसेनी से बहुत ही मिलती है ।

नाटकों में मागधी की यह उपप्राकृतें पाई जाती हैं ।

शकारी—इसे मृच्छकटिक में राजा का साला बोलता है ।

विशेषताएँ—(१) तालव्य स्पर्शों के पूर्व लघुप्रपदा पश्चात्—पुचिष्ट=तिष्ठे (२) आकारान्त धातुओं के ज्ञात रूपों में 'ट'—बट=हृत (यह बात अमा० में भी पाई जाती है) । (३) ६ष्ठी एक० का प्रत्यय आह और रु—घालुदत्ताह (४) ७मी एक० का आदि—पयदणादि=प्रयदणे । (५) लघोधन बहु०—आदो (विदिक् आस) । विद्युली तीन विशेषताएँ अपभ्रंश में भी पाई जाती हैं ।

चायडाली और शाबरी भी मागधी की उपप्राकृतें हैं ।

१ मार्कण्डेय पुराण में यह बातें मागधी और प्राचद अपभ्रंश के लिये किली हैं—पुचि=चिरम् ।

सृष्टिकृदिक में माथुर तथा घृतकार एक प्राकृत बोलते हैं जिसे पिशल् ठक्की के नाम से पुकारता है । वह इसे मागधी की उपप्राकृत मानता है । सर्र जार्ज ग्रियर्सन ने सिद्ध किया है कि इस का नाम “टाक्की” अधिक शुद्ध है और यह स्यालकोट के निकट टक देश में बोली जाती थी ।

अर्धमागधी ।

प्रो० जेकोची इन्ने “जेन प्राकृत” पुकारता और महाराष्ट्री का प्राचीन रूप मानता है । भारतीय वैयाकरण प्राचीन जैन सूत्रों की भाषा को “आर्य” (ऋषि सम्यन्धी) कहते हैं । हेमचन्द्र कहता है कि मेरे व्याकरण के सब नियमों के आप में अपवाद होते हैं । एक और वैयाकरण त्रिपिक्रम हुआ है । उस ने अपने व्याकरण में आर्य को ग्रहण नहीं किया क्योंकि इस में शब्दों के रूढ़ अर्थ होते हैं और प्रकृति प्रत्यय से अर्थ की सूचना नहीं होती अर्थात् वे संस्कृत से नहीं निकले ।

रुद्रट वृत्त काव्यालंकार (२।१२) पर टीका करते समय नमिसाधु प्राकृत शब्द को प्रकृति से निकालता है जिस का अर्थ है “व्याकरण नियमों से अनियन्त्रित साधारण लोक भाषा” । वह इस की व्युत्पत्ति “प्राकृत” (पूर्वेनिर्मित) ऐसे भी करता है क्योंकि जैन सिद्धान्त ग्रन्थों की अर्धमागधी प्राकृत देवताओं की भाषा है । यथा—
आरिस वयखे सिद्ध देवाण अद्धमागहा वाणी ।

स्पष्ट है कि नमिसाधु जैन था । जैनों का तो विश्वास है कि अर्धमागधी प्राकृत जिस में भगवान् महावीर स्वामी उपदेश देते थे मूल भाषा है जिस में से दूसरी सब भाषाय निकली हैं ।

१ पञ्जाब के पहाड़ी इलाके में “टाक्की” लिपि प्रचलित है जो शायद टक देश की सूचना देती है ।

सिद्धान्त के गद्य और पद्य भाग की भाषा में कुछ भेद है । पद्य में १मा एक० प्रायः ओकारान्त (१ कि एकान्त जो माग० की भाँति अमा० का लक्षण चिह्न है) होता है । पद्य में पूरकालिक क्रिया के प्रत्यय तृण, ऊण होते हैं परन्तु गद्य में अधिकतया छा, छाण (§ १२२) । कुछ और भेद—पद्य में मेच्छु, गद्य में मिलच्छु; पद्य कुण्ड गद्य कुव्यह (=कुर्वति) । गद्य की अपेक्षा पद्य की भाषा महाराष्ट्री से कुछ अधिक समानता रखती है ।

अर्धमागधी ११ बातों में मागधी से मिलती है—

१मा एक० का एकान्त रूप, ६मी एक० तद्य, श्रुकारान्त धातुओं के 'ड' वाले श्रान्त रूप; क को व आदेश—असोग (यह विकार माग० में बहुत कम होता है); संयोग एक० का दीर्घ आ (अप अश में बहुत है) ।

मागधी से इस का प्रधान भेद यह है कि इस में स और र दोनों होते हैं । साधारणतया पाली की भाँति अमा० में नाटकीय प्राटों की अपेक्षा प्राचीन रूपों का अधिक प्राचुर्य है । भारतीय नाट्यशास्त्र, तथा साहित्यदर्पण के अनुसार अमा० को दास, दासी, राजपूत तथा श्रेणिपति बोलते थे । नाटकों में जैन भिक्षुओं को अमा० बोलनी चाहिये थी परन्तु ये साधारण मागधी बोलते हैं ।

अमा० कई बातों में महाराष्ट्री से भेद रखती है ।

उच्चारण—१ एय और अवि (=अपि) के पूर्व अम् का आम् हो जाता है ।

२ "इति वा" में और प्लुत स्वर के परे 'इति' का इ हो जाता है ।

१ प्रो जेकोबी का ख्याल था कि सिद्धान्त की भाषा महाराष्ट्री का प्राचीन रूप है (कल्प सूत्र, अनुवाद, सेकिड बुक्स आफ दी ईस्ट, पुस्त ११) । पिछले इस मत के विरुद्ध है § १८ ।

३ प्रतिके इ का लोप—पहुप्पन्=प्रत्युत्पन्न(और प्राकृतों में विरला)

४ चयर्ग के स्थान में तयर्ग—तेइच्छा=चिकित्सा

५ अहा=यथा

६ सन्धिब्यञ्जनों का प्रयोग (§ ७८)

सन्धा की रूपरचना—१ ४थी एक० -त्ताए घाले (§ ६२)

२ ३या एक०-सा (§ १०४)

३ ७मी एक० सि (§ ९२)

क्रिया की रूपरचना—१ √क्या—आइफजइ, पा० आचिफझति,
महा० अफखाइ ।

२ कुव्यइ (गद्य में)

३ लुइ के अवशिष्ट रूप-प्र० पु० बहु० पुर्विच्चसु ।

४ -दडु, इत्तु घाले रूपों का पूर्वकालिक क्रिया
की भाति प्रयोग—कदडु (अर्थ-कृत्वा), अघददडु
(अर्थ-अपहृत्य), सुणित्तु (अर्थ-श्रुत्वा),
जाणित्तु (ज्ञात्वा) ।

५ तुमुन् अर्थ में सए, इत्तए (§ १३६) ।

६ ता, ताण, च्वा, च्वाण (-ण), याण (-ण)
घाले पूर्वकालिक क्रिया के रूप ।

जिन घातों में महा० और अमा० मिलती हैं, उन में भी जो
महा० में विरली हैं वे अमा० में प्रचुर हैं । मूर्धन्याविधि तथा र के
स्थान में ल—ये अमा० में बहुत अधिक हैं ।

शब्द कोश में भी प्रायः भेद होता है ।

प्रकट है कि शौरसेनी से तो अर्धमागधी और भी भिन्न होगी ।

जैन महाराष्ट्री ।

सिद्धान्त के पीछे के ग्रन्थ उस समय लिखे गए जब जैन धर्म
दूर दूर तक फैल चुका था । इस लिये इन ग्रन्थों में इतर प्राकृतों के

चिह्न पाए जाते हैं । श्वेताम्बर जैनो के आगम-याह्य ग्रंथ एक ऐसी प्राकृत में हैं जो महाराष्ट्री का रूपान्तर माना जा सकता है यद्यपि इस में अमा० के कई विशेष चिह्न पाए जाते हैं । यथा—तुमुन् अर्थ में -इत्तु, कत्ता, ल्यप् के लिये इत्ता व के स्थान में ग । इस प्राकृत के प्रयोग का कारण शायद यह है कि जैन धर्म पश्चिम तट की वैश्य जातियों में बहुत प्रिय हो गया था । इस प्राकृत को जैन महाराष्ट्री कहते हैं और प्रौ० जेफोयी सकलित प्राकृत पाठावली इसी में है ।

जैन शौरसेनी ।

विगम्यर सम्प्रदाय के सिद्धांत ग्रन्थों की प्राकृत में १मा एक० ओकारात् होता है तथा त, थ का द, ध बना जाता है । इस कारण इसे जैन शौरसेनी कहते हैं । परन्तु इस में बहुत सी ऐसी बातें पाई जाती हैं जो शौरसेनी में तो नहीं मिलतीं, प्रत्युत महा० या अमा० में मिलती हैं । गुजरात देश की ओर जैन धर्म के कई केन्द्र स्थल थे और वहां शौरसेनी और महाराष्ट्री का आपस में मिलाप हुआ होगा । जैमहा० की अपेक्षा जैशौ० में अमा० की विशेषताएं अधिक पाई जाती हैं, इस का कारण शायद यह है कि जैशौ० कुछ अधिक प्राचीन है ।

मुख्य प्राकृतों के जो भेद और समानताएं ऊपर दी गई हैं जरूरी नहीं कि उन के आधार पर प्राकृतों का निश्चित वर्गीकरण किया जा सके । एक तो पूर्वी प्राकृत (मागधी) थी दूसरी दक्षिणी (महाराष्ट्री) और तीसरी मध्यदेशीय [शौरसेनी] । अर्ध मागधी को मध्यदेशीय की अपेक्षा दक्षिणी प्राकृत से अधिक समानता है । वर्तमान आर्य भारती भाषाओं की तुलनात्मक परीक्षा के आधार पर हमने महोदय ने यह कल्पना की कि एक समय समस्त आर्य भारतवर्ष में दो भाषाएं थीं—एक शौरसेनी और दूसरी मागधी । महाराष्ट्री के विषय में उस का यह मत था कि यह

कविकल्पित साहित्यिक प्राकृत है और महाराष्ट्र देश में बोली जाने वाली तत्कालीन भाषा से इस का कुछ सम्बन्ध न था । परन्तु प्राकृतों तथा आधुनिक भाषाओं की अधिक पड़ताल करने पर इस मत की पुष्टि नहीं होती ।

माहाराष्ट्री तथा जैन माहाराष्ट्री में ऐसे विशेष चिह्न पाए जाते हैं जिन के अग्रशेष अथ तक मराठी में विद्यमान हैं । और इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता कि माहाराष्ट्री प्राकृत का विकास महाराष्ट्र देश की प्राचीन बोली से हुआ ।

प्रियर्सन् महाशय के पास बहुत से साधन होने से उस ने प्राकृतों को आधुनिक भाषाओं से मिला कर प्राकृतों की स्थानीय बाट की है जो इस भाँति है—

केन्द्रीय प्राकृत

शौरसेनी

बाह्य

[पूर्व] मागधी

[दक्षिण] माहाराष्ट्री

अन्तरीय

अर्धमागधी ।

प्राकृतों की यह बाट उचित है क्योंकि शौरसेनी संस्कृत से बहुत मिलती जुलती है और मध्यदेश की भाषा को प्रकट करती है जो वैदिक काल के पश्चात् हिन्दू सभ्यता का केन्द्र था । इस केन्द्र से जो जो स्थान दूरवर्ती थे वहाँ की भाषा स्वाभाविकतया संस्कृत से अधिक भेद रखती थी । आर्य भाषा बोलने वाली जातियों का भारत वर्ष में प्रवेश किस प्रकार हुआ, इस विषय में जो मन्तव्य है उस के साथ इस बाट का बड़ा सम्बन्ध है । विद्वानों का ख्याल है कि जिन भाषाओं के आधार पर पाणिनीय संस्कृत का जन्म हुआ और फिर जिन से शौरसेनी प्राकृत निकली उन भाषाओं के बोलने वाले आर्यों ने अपने से पूर्व आए हुए आर्यों से कुछ काल पीछे मध्यदेश में बलात्कार प्रवेश किया । जो आर्य पहिले आए थे उन की सन्तान की भाषाओं से बाह्य भाषाएँ निकली हैं ।

यद्यपि भाषा सम्बन्धी कतिपय विषयों का समाधान करने वाले इस सिद्धान्त विशेष के पक्ष तथा विरोध में बहुत कुछ कहा जा सकता है, तथापि हम इस सिद्धान्त को न मानते हुए भी प्राकृतों की इस घाट को मान सकते हैं ।

इस घाट में एक झुटि दिखाई पड़ती है और यह है अर्धमागधी का स्थान । यदि अर्धमागधी अवघ प्रान्त में बोली जाती थी तो स्थूलतया यह प्राकृत आधी मागधी और आधी शौरसेनी होनी चाहिये थी । अब जो हम मागधी को देखते हैं तो यह अपने उच्चारण की विचित्रता के अतिरिक्त शौरसेनी से बहुत ही थोड़ा भेद रखती है । अगर हम शौरसेनी में १मा एरु० एकारान्त, किसीर शब्द में 'र' के स्थान में 'ल', 'स' के स्थान में 'श' और मागधी की कुछ उच्चारण विशेषताएँ ले आएं तो एक ऐसी प्राकृत बन जायेगी जो उपर्युक्त घाट में तो ठीक बैठेगी परन्तु जैन सूत्रों की असली अर्धमागधी से बहुत भिन्न होगी । इस में शक नहीं कि पूर्वी हिन्दी तो पश्चिमी हिन्दी और गिहारी भाषा के मध्यवर्ती है और इस में दोनों भाषाओं की कुछ कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं, परन्तु अर्ध मागधी प्राकृत में यह घाट दिखाई नहीं देती अर्थात् न तो इस का वह स्थान है और न यह पूर्वी हिन्दी की मूल प्रकृति प्रतीत होती है ।

मगर यह भी याद रखना चाहिये कि उपर्युक्त घाट प्रधानतया लोक भाषाओं की है जिन के आधार पर शिष्ट भाषाएँ बनीं । शिष्ट प्राकृतें सभी एक समय पर नहीं बनीं इस लिये वे तत्कालीन लोक भाषाओं का स्वरूप प्रकट नहीं करतीं । शौरसेनी का अपेक्षा अर्ध मागधी स्पष्टतया पुरानी है । यह मत भी प्रकट किया गया है कि महाराज अशोक की पूर्वी धर्म लिपियों की भाषा को अर्धमागधी का पुराना रूप समझना चाहिये । प्रो० लुडर्स इसे पुरानी अर्ध मागधी ही कहता है । ज्ञात किया जाता है कि यह मौर्य दरबार में प्रचलित भाषा थी । यह भी मतव्य है कि जिस भाषा में भग

चान् बुद्ध का उपदेश पादिले पादित लेखबद्ध हुआ वह इस से बहुत ही मिलती थी । पाली और संस्कृत त्रिपिटक पीछे से बने ।

यह भाषा जो समग्र गङ्गा दोआब में दूर दूर तक बोली जाती थी न तो वह शुद्ध मागधी ही हो सकती है और न शुद्ध शौरसेनी ही । यह भी जरूरी नहीं कि इस का स्वरूप सर्वथा काशी की भाषा जैसा हो । दोनों सीमाओं के अन्तर्गत मध्यप्रदेश की भाषा के आधार पर यह बनी होगी । पीछे से जब जैन धर्म का केन्द्र पश्चिम की ओर चला तब इस भाषा ने भी माहाराष्ट्री का कुछ रंग पकड़ लिया होगा जैसा कि जैन सूत्रों की अर्धमागधी में हम देखते हैं । इसी समय कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिन से बौद्ध त्रिपिटक का पाली भाषा में अनुवाद किया गया ।

पैशाची प्राकृत ।

जिन भाषाओं का अब तक वर्णन हुआ पैशाची उन से बाहिर रहती है । पैशाची शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है—(१) भूत भाषा अर्थात् भूतों की भाषा के लिये, (२) कई एक असभ्य भाषाओं के लिये जिन में कुछ अपभ्रंश हैं (३) घैयाकरणों की (खास कर हेमचन्द्र की) पैशाची भाषा के लिये जिस की उप भाषा घूलिका पैशाची (चू० पै०) है । इस पैशाची का स्वरूप कुछ प्राचीन प्रतीत होता है । इस की मुख्य विशेषता है घोष स्पर्शों के स्थान में अधोष स्पर्शों का होना—तामोतर=दामोदर, चू० पै० नकर=नगर, राचा=राजा, रम्म=धर्म, कन्तप्प=कन्दर्प ।

‘ण’ का ‘न’ और ‘ल’ का ‘ळ’ हो जाता है । ‘य’ वैसा ही रहता है । स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जनों का लोप नहीं होता । महाप्राण स्पर्शों को ह आदेश नहीं होता । झ, न्य का झ्र हो जाता है जैसा मागधी में और शायद प्रत्येक प्राकृत के प्रारम्भ काल में ।

इस प्राकृत को योलते कौन थे ? शाहवाजगढ़ी की अशोक धर्म लिपि में इस प्राकृत की कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं । दन्तकथा के अनुसार गुणादय ने अपनी मृत्युवा पेशाची प्राकृत में रची । यह कथा १२ या १० शताब्दी में काश्मीर में प्रचलित थी । सोमदेव ने अपने कथासरित्सागर में इस की कथा दी है और हेमचन्द्र ने बृहत्कथामञ्जरी इस का संक्षेप बनाया है । इन कारणों से कई एक विद्वानों का मत है कि चूलिका पेशाची पश्चिमोत्तर भारत की भाषा थी । सैर्जॉर्ज प्रियर्सन का मानना है कि हिन्दूकुश की वारद और काफिर भाषाएँ तथा शिणा और काश्मीरी की पूर्ण प्रकृति पेशाची से सम्बन्ध रखती हैं ।

इस के विरुद्ध दूसरा मन्तव्य यह है कि गुणादय दक्षिण का रहने वाला था । बृहत्कथा की रचना काश्मीर के उस साहित्यिक पुनरुत्थान से कई सौ वर्ष पहले हो चुकी थी जो हेमचन्द्र, विरहण, सोमदेव वरहण आदि ने किया । ए का न होना और ल का ङ होना द्रविड प्रभाव की सूचना देते हैं ।

दूसरी विशेषताएँ—जैसे सरमध्यवर्ती ल और य का यो रहना केवल प्राचीन प्रयोग हैं । घोष वर्ण के स्थान में अघोष धण का होना उत्तर और दक्षिण दोनों प्रातों में मिलता है । यह विकार उस समय बहुत देजने में आता है जब किसी भाषा को अय जाति प्रहरण करती है । पाठक को "मेरी वाइफ़ ऑफ़ चिडज़र" नामी नाटक के चेतज़ के रहने वाले सर ह्यू एवनज़ का संरण होगा । ग्राहलिक भाषा योलने वालों में भी यह प्रकृति पाई जाती है । आय भाषा की सीमा पर यदि कोई पेसी ग्लेचज़ भाषा होती भी, तो आय भाषा के विस्तार के साथ उस का लोप हो गया होता । इन विचारों के आधार पर इन चूड़ा धारी

भूतों का विन्ध्यवासी होना उतना ही संभव है जितना कि वे काश्मीरी पिशाच थे ।

पुरानी प्राकृतें ।

सब से प्राचीन प्राकृत जो लेख्यरुद्ध मिलती है वह महाराज अशोक की धर्मलिपियें हैं । पश्चिमोत्तर प्रान्त (शाहाबाज गढ़ी और मानसेहरा) की धर्म लिपियें खरोष्ठी लिपि में तथा इतर सब प्राचीन ब्राह्मी लिपि में खुदी हुई हैं, चाहे शैल पर हों या स्तम्भों पर । इन सब की भाषा एक समान नहीं है । पूर्वी और पश्चिमी धर्म-लिपियों की भाषा में अतिस्पष्ट भेद है ।

सूदम भेदों के साथ पूर्वी भाषा गङ्गा-जमना दोआब के स्तम्भों पर तथा कालसी और डडीसा के शैलों पर खुदे हुए लेखों में पाई जाती है । इस भाषा में 'र' के स्थान में 'ल' तथा अकारान्त पु० और नपु० समासों के समासक के रूप एकारान्त होते हैं जैसे मागधी में । इस के विरुद्ध इस में दन्त्य 'स' मिलता है न कि तालव्य 'श' (परन्तु कालसी के लेख में मूर्धन्य 'प' भी मिलता है) । कई विद्वान् इसे मागधी के नाम से पुकारते हैं परन्तु प्रो० लूडर्स का कहना है कि यह असली अर्धमागधी है ।

इस का नाम चाहे कोई भी उचित हो परन्तु यह वह भाषा है जिसे अशोक और उस के दरबारी बोलते थे । इस दरबारी भाषा का प्रभाव उत्तर तथा पश्चिम के लेखों पर भी पड़ा दिखाई देता है क्योंकि उन की भाषा शुद्ध स्थानीय भाषा प्रतीत नहीं होती । इस प्रभाव के कारण जो रूप व्यवहृत हुए हैं उन्हें मागध प्रयोग कहते हैं ।

पश्चिमी भाषा गिरनार के शैल लेख में पाई जाती है । इस में पु० समासक के रूप ओकारान्त हैं और नपु० रूपों के अन्त में 'अ'

होता है । इस में 'र' और 'स' पाए जाते हैं । (मागध प्रयोग हैं—
प्रियो और जतो के स्थान में प्रिये और जने; मूल के-स्थान में मूले
आदि) । इस की कई एक विशेषताएँ पाली की याद दिलाती हैं
परन्तु यह पूर्णतया पाली के समान नहीं है ।

यह भी कह सकते हैं कि यह पश्चिमी भाषा उज्जैन की तत्कालीन
भाषा का प्रायः पूरा नमूना है क्योंकि उज्जैन मौर्य राज के
एक प्रधान प्रदेश की राजधानी थी ।

जो लेख दक्षिण में पाए जाते हैं वे पूर्वी भाषा की अपेक्षा पश्चिमी
भाषा के अधिक समान हैं यद्यपि उन में अपनी विशेषताएँ भी
पाई जाती हैं ।

पश्चिमोत्तरी लेखों की भाषा पूर्वी और पश्चिमी लेखों से भिन्न
है । शाहायाजगदी की अपेक्षा मानसेहरा लेख में मागध प्रयोग
अधिक हैं । दोनों में र, स और श पाए जाते हैं । शाहाया० में
१मा एक० के रूप ओकारान्त और नपु० रूप अनुस्वारान्त हैं, परन्तु
मानसेहरा में (अर्ध)मागधी के एकारान्त रूप अधिक मिलते हैं ।
दोनों में 'र' वाले कई सयुक्त अक्षर मिलते हैं, जिन में प्रायः घर्ष
व्यत्यय हो जाता है । पियदसि के स्थान में प्रियद्रसि, भुतमुच=
गिरार भूतपुर्व=घीली हूतपुलथा, शाहाबा० अयो=गिर० श्री,
शाहाया० झुगो=मान० भिगे=गिर० मगो=पूर्वी मिगे । अन्तिम उदा
हरण पूर्वी और पश्चिमी भाषाओं के एक और भेद को प्रकट करता
है । (देखिये § ६०) ।

शाहाया० में 'क्ष' बना रहता है जैसे क्षमितविय में, परन्तु गिर०
क्षमितवे, पूर्वी क्षमितवे (देखिये § ४०) ।

प्रिय आदि में सयुक्त अक्षर प्र आदि जो दोनों पश्चिमी और
उत्तरपश्चिमी लेखों में पाए जाते हैं पहिले उन की संस्कृत प्रयोगों
के अग्रशेष मानते थे; परन्तु अब यह मत्तव्य है कि ये तत्कालीन

स्थानीय उच्चारण को प्रकट करते हैं क्योंकि उत्तर पश्चिम की आधुनिक भाषाओं में ऐसे संयुक्त अक्षर अब तक विद्यमान हैं। जैसे—लहदी त्रे, सिंघी त्रे, गुजराती त्रण “तीन।”

जब उत्तरपश्चिमी रूपों को ओरों से मिलाया जाय तो यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि परोष्ठी लिपि में स्वरों की दीर्घता प्रकट नहीं की जाती।

यह बात भी याद रखने योग्य है कि अशोक के न तो परोष्ठी लेखों में और न ही ग्राही लेखों में व्यञ्जनों का द्विर्भाव प्रकट किया गया है। जैसे—चकचाके के स्थान में चकयाके, चप्पुदाने के स्थान में चरुदाने मिलता है।

वैरात के और भागरा के लेखों में जो अथ कलरुत्ता के अजायय घर में सुरक्षित हैं, अशोक अपने कुछ प्रिय शास्त्रों का उल्लेख करता है। इस लेख की भाषा पर बहुत विमर्श हुआ है। लाघुल शब्द जित का पाली रूप राहुल मिलता है। तथा अधिगिच्च (=अधिरुत्प) शब्दों की समानता वाले रूप और किसी लेख में नहीं पाये जाते। ऐसा प्रतीत होता है कि ये बोद्ध ग्रन्थों की पाली से भी पहिली भाषा के रूप हैं (देखिये पृ० ६१)। इस लेख में प्रो० हूलदश ने प्रियदत्ति, सय्ये, प्रासादे और अभिमेत ऐसे रूप पढ़े हैं परन्तु जिस भाषा में स्वरान्त ‘र’ को ‘ल’ हो जाता है उस में ऐसे रूप होना आश्चर्य की बात है। यह भी बतला देना चाहिये कि इन रकारों की सत्ता एक छोटी सी रेखा पर निर्भर है जो किसी हालत में भी स्पष्ट नहीं है और शायद पत्थर के केवल ऊँचा नीचा होने के कारण दिखाई देती है।

यह देखा जायगा कि अशोक के लेखों की भाषा की बात पीछे की प्राकृतों की बात से भिन्न है। यह भेद आश्चर्यजनक नहीं। अगर शिक्षा और साहित्य के कई केन्द्र अर्थात् विद्वाविद्यालय

शिरा और मादित्य को लगातार प्रायः न रखें तो माधारण्ड लिगो पदों के बाम में आने वाली भाषाओं की आनीय पाठ कुछ काल के पीछे मिश्र हो जाती है । मादर्याय प्राकृतों में पञ्चाष और पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषा को प्रकट करने वाली कोई भाषा नहीं मिलनी । ऊपर देखा गया है कि कई विद्वान् पेशानो प्राकृत की इन भाषाओं की भाषा मानते हैं । इस बात के कुछ प्रमाण मिले हैं कि उत्तर देश के बौद्ध लोग एक और प्राकृत का प्रयोग करते थे । सोतान नगर के निकट गरोही लिपि में लिगे हुए "धम्मपद" के कुछ टुकड़े मिले हैं जो "दुतुरल द रों" पुस्तक (Dutreuil de Rhins manuscript) के नाम से प्रसिद्ध हैं । इस की भाषा में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो आज कल की पश्चिमोत्तरी भाषाओं में पाई जाती हैं । (यूनेस्को प्रसियातीक सन् १८६८ पृ० १६३, १६१२ पृ० ३३१) ।

पाली ।

पाली शब्द का मूल अर्थ है "सीमा, या रेखा" और यह शब्द बौद्ध धर्म की हीनयान सम्प्रदाय के सिद्धान्त ग्रन्थों (त्रिपिटक) के लिये व्यवहृत होता था । तत्पश्चात् यह त्रिपिटक की भाषा के लिये व्यवहृत होने लगा जो त्रिपिटक के अतिरिक्त और ग्रन्थों में भी पाई जाती है । ये सब कुछ लका, प्रज्ञा और स्याम देश के धर्म प्रचारक सभों में सुरक्षित रहे । फिर पाली शब्द कभी कभी इन ग्रन्थों में प्रयुक्त होता रहा—(१) अशोक महाराज के लेखों की भाषा के लिये, यद्यपि इस भाषा के तीन या चार स्पष्ट रूप हैं, (२) अशोक राज्य की दरबारी भाषा के लिये जो एक प्रकार की दूर दूर समझी जाने वाली मध्ययुगीन भाषा थी, और (३) लेखों और शासनों की प्राकृत के लिये जो उस समय तक पाई जाती है जब तक कि सरहद ने पाली या प्राकृत का स्थान नहीं ले लिया । बौद्ध ग्रन्थों की पाली भाषा विश्वविद्यालय की पढ़ाई का एक पृथक् और

स्वतन्त्र विषय है जो ब्रह्मदेश वासी यौद्ध लोगों के लिये संस्कृत का स्थान रखती है परन्तु भारतवर्ष में इस का पठन पाठन बहुत थोड़ा होता है । तथापि (१) भारतीय भाषा इतिहास और (२) प्राचीन प्राकृत लेखों के अध्ययन के लिये यह अत्यावश्यक है ।

पाली भाषा के लिये अनेक व्याकरण, पाठसंग्रह, मूलग्रन्थ तथा अनुवाद विद्यमान हैं इस लिये यहाँ इस का संक्षेप वर्णन ही किया जायगा ।

पाली की विशेषताएँ ।

अर्धमागधी की अपेक्षा पाली में प्राचीन व्याकरण के अवशेष अधिक मिलते हैं । आत्मनेपद के रूप बहुत हैं । लुङ् के रूप (विशेष कर लृ घाले) प्रचुरता से मिलते हैं । (लुङ् और लट् रूपों का भेद जाता रहा है) । अभ्यस्त लिट् के रूप विरले हैं पर मिलते ज़रूर हैं । प्राचीन गणों के भी कुछ अवशेष पाए जाते हैं । जैसे—सुणोति=श्री० सुणादि; करोति (आत्म० कर्त्तते)=श्री० करेदि; ददाति (देति भी)=श्री० देदि ।

उच्चारण की मुख्य विशेषताएँ—इस में केवल दन्त्य लृ होता है, ए रहता है, र कभी लृ घन जाता है (लेकिन मागधी की तरह सदा नहीं) । कभी न को भी ए हो जाता है । स्वरमध्यवर्ती व्यंजन घने रहते हैं और अघोष के स्थान में कभी ही घोष वर्ण आता है । जैसे—भवति या होति, कथेति, पुच्छति, गच्छति आदि, मतो=मृत ; कतो=कृत ।

किसी किसी शब्द में द्र, घ्र आदि संयुक्त अक्षर बने रहते हैं । स्वरभक्ति का प्रयोग प्रचुर है । आर्य शब्द का अव्यय या अरिय बन जाता है ।

आलोचक लेखों की व्याख्या के लिये निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया गया है—

पाली की जगभूमि के विषय में मतभेद है। आग्नाय के अनुसार बुद्धभगवान् ने मागधी में अपना उपदेश दिया। दासणी धीरों का यह विचार उचित ही था कि त्रिपिटक बुद्ध की अपनी भाषा में ही। इन हेतु से पाली मागधी (मगध देश की भाषा) होनी चाहिये। परन्तु वास्तव में यह बात ऐसे नहीं है—१मा एक० के ओकारान्त रूप तथा स, र, ज का होना इस बात को स्पष्ट सिद्ध करते हैं। कई विद्वानों का मत है कि पाली उज्जैन की भाषा थी जहाँ से अशोक का भाई महेन्द्र त्रिपिटक को लूटा छीप में ले गया। दूसरे विद्वान् इसे कलिङ्ग देश की आर्य भाषा ब्याल करते हैं।

घोस के शब्द में अथेय धर्म का होना आदि कुछ बातों में पाली पेशाबी से मिलती है। इस समाप्ता के आधार पर कई विद्वान् इसे पिप्वाचल के निवट देश की भाषा मानते हैं। इसी समानता के कारण कोई इसे राजशिरा की भाषा कहते हैं। मागधी आग्नाय के आधेय पर गाङ्गा मदाशय का ब्याल है कि पाली अर्धमागधी के किसी रूप से निकली है परन्तु यह किसी प्रदेश की शुद्ध भाषा नहीं है।

लेकिन अगर पाली त्रिपिटक सिद्धान्त का सब से प्राचीन सूत्र बद्ध रूप नहीं है तो आग्नाय पाली युक्ति बाधित हो जाती है। इस में सन्देह नहीं कि बुद्ध भगवान् का उपदेश और उस की सूत्र रचना किसी पूर्वी भाषा में हुए। पीछे से उस का अनुवाद और भाषाओं में हुआ और इन ही में से एक अनुवाद पाली त्रिपिटक का गया। डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी का कहना है कि धर्मेविकार और रूपरचना के आधार पर यह पाली मध्यदेश की कोई पश्चिमी भाषा अर्थात् शौरसेनी का प्राचीन रूप होनी चाहिये जिस में कि बहुत से पुराने रूप मिलते हैं। जब मौय राज्य का पतन हुआ तो पूर्वी दरबारी भाषा (अर्धमागधी) का प्रचार भी पद हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस के बाद पाली से मिलती जुलती किसी

पश्चिमी भाषा का प्रचार हुआ जो कि मार्वेल के लोगों में पाई जाती है ।

यद्यपि तत्र कुछ ही हो परन्तु यह स्पष्ट है कि पाली में कई भाषाओं के अंश मिले हुए हैं और कि यह समय वा कर बदलती रही है । इस का सब से प्राचीन रूप गाथाओं में मिलता है । इस के पीछे त्रिपिटक का गद्य भाग, फिर त्रिपिटकगद्य ग्रन्थ और अन्त में और भी पीछे के ग्रन्थ । संस्कृत ने भी पाली विकास पर कुछ प्रभाव डाला है ।

अशोक से पीछे के प्राकृत लोगों में से बहुत से लोग तो इतने छोटे हैं कि उन की भाषा का स्वरूप निर्धारण नहीं किया जा सकता । मार्वेल का लोग जो दार्थागुफा के द्वार पर खुदा हुआ है और जिम् की मिति वि० पू० दूसरी शताब्दी है अशोक के पूर्वी लोगों की अपेक्षा पश्चिमी या दक्षिणी लोगों से अधिक मिलता है । कई बातों में यह पाली से मिलता है और कई बातों में उस से भिन्न है ।

रामगढ़ पहाड़ी पर जोगीमार गुफा का लेख मागधी के किसी प्राचीन रूप में प्रतीत होता है ।

अश्वघोष ।

मध्य एशिया में ताबपत्र पर लिखे हुए ग्रन्थों के कुछ टुकड़े मिले हैं जिन को प्रो० लूडर्स ने जोड़ा है । उन में दो बौद्ध नाटकों के चण्ड पाए जाते हैं । उन में से एक तो केवल संस्कृत में है (कम से कम जो चण्ड मिला है यह केवल संस्कृत में है) । दूसरे नाटक में जो कनिष्क राजा के सहकालीन प्रसिद्ध बौद्ध लेखक अश्वघोष की रचना मानी जाती है उस में कई प्राकृत पाई जाती हैं । धूर्त तो एक प्रकार की मागधी बोलता है—स् > श; र > ल, रमा एक० एकारान्त । कई बातों में यह भाषा व्याकरण और नाट

कीय मागधी से अधिक प्राचीन है—दो के स्थान में ग्रहक, फीश के स्थान में विश्व । लूडर्स इसे पुरानी मागधी कहता है । एक और पात्र की भाषा जो अशोक के स्तम्भ लेखों से मिलती है एक प्रकार की पुरानी अर्धमागधी मानी गई है । चेश्या और चिदूपक की भाषा पुरानी शौरसेनी प्रतीत होती है । इस में स्वरमध्यवर्ती व्यञ्जन यने रहते हैं, न फा ए नहीं होता और य फा ज नहीं बनता ।

भास ।

इन के अतिरिक्त प्राकृत की एक और दशा है जो त्रियम्बुम से प्रकाशित हुए नाटकों में पाई जाती है । ये नाटक कवि भास की कृति माने जाते हैं । कई विद्वानों का मत है कि इन की प्राकृत अभ्यघोष तथा कालिदास, भवभूति आदि के मध्यवर्ती प्राकृत की अवस्था को प्रकट करती है । नि सदेह पहिले पहिल यह प्राकृत अभ्यघोष की प्राकृत से पीछे की और कालिदास आदि की प्राकृत से कुछ प्राचीन प्रतीत होती है । यदि भास का समय विक्रम की दूसरी या तीसरी शताब्दी माना जाय और ये नाटक भास की रचना माने जाय तो कई बातों का भली प्रकार समाधान हो जाता है ।

मगर खेद है कि हम निश्चय पूरे इन नाटकों को भास की रचना नहीं कह सकते । इन की जो प्रतिया अब तक मिली हैं वे सब दक्षिण में लिखी गईं । सातवीं शताब्दी तक उस के पीछे भी जो नाटक रचे गए उन की दक्षिण में लिखी हुई प्रतियों में प्राकृत की ऐसी विशेषताएं पाई जाती हैं । उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में प्राकृत का परंपरागत चरित्रविन्यास स्पष्टतया अधिक प्राचीन है । चूंकि दक्षिण में साधारण लोक भाषा द्राविड़ी है इस लिये उत्तर की अपेक्षा वहां प्राकृत का उच्चारण कम परिवर्तनशील होगा ।

दक्षिणी प्रतियों में पाए जाने वाले प्राचीन रूप प्राकृत के इतिहास के लिये बड़े काम के हैं । परन्तु अब तक कोई ऐसा समर्थ प्रमाण नहीं मिला जिस से इन नाटकों को भास की कृति या इन का रचना काल विक्रम की दूसरी शताब्दी माना जा सके ।

इस में सन्देह नहीं कि ये कालिदास की हमारी प्रतियों और प्राकृत धैयानुरणों से अधिक प्राचीन है ।

त्रियन्द्रुम नाटकों में शौरसेनी और मागधी प्राकृतें पाई जाती हैं । कर्णभार नाटक में इन्द्र और दो सुमट एक ऐसी प्राकृत थोलते हैं जो अर्धमागधी से मिलती है ।

इस शौरसेनी की मुख्य विशेषताएँ ये हैं— $\text{ल} > \text{ळ}$, $\text{इ} > \text{ऌ}$ या एण, $\text{मृ} > \text{एण}$ ।

	त्रियन्द्रुम	साधारण प्राकृत
	उट् > उट्य (जैसे पाली में)	उज्ज
	र्य > र्य्य " " (अभ्यघोष)	ज्ज
०या बहु० पु०	आणि (देखिये पुरानी अमा०)	-य
१मा, २या बहु० नपु०	आणि (पाली -आनि)	-आइ
३मी एक० स्त्री०	आअ [पाली आय (-य)]	-आप
	तय (अभ्यघोष)	तुह
	किस्स [पाली, किस्स अभ्यघोष]	कीस
	माग० किश्श	
दन्त, वर्तमान कर्मवाच्य }	गएहदि (पाली गन्हाति)	गेएहदि
	-इअमाण (पाली इयमान केवल एक बार)	इअन्त
	कत्तु, कत्तव, कमी काटु	कादव्व
पूर्वकालिक क्रिया	करिअ	कटुअ
	गच्छिअ	गटुअ

अर्वाचीन प्राकृत—अपभ्रंश (देगो अण्पाय २ १०)

भाषा विज्ञान के अभ्यासी के लिये अपभ्रंश अध्ययन की मुख्य विशेषताओं का जानना सामंजस्य होगा । वर्ण तथा रचना का परिवर्तन पुरानी प्राकृत में होता नहीं हुआ जितना नाटकीय प्राकृतों में, परन्तु हम पाँछे की प्राकृत में यह विचार बहुत अधिक हो गया है । जब कभी अपभ्रंश ग्रंथ में प्राचीन रूप मिलें तो हम भ्रमना चाहिये कि कर्ता ने इन को प्राकृत में लिया है या कभी कभी भाषा परिवर्तन का जो साधारण प्रवाद है उस के विरुद्ध किसी बोली में प्राचीन रूप प्रचलित रह जाते हैं । आर्य भारती की कई बाल भाषाओं में कई एक ऐसे प्राचीन रूप अब तक भी पाए जाते हैं ।

हेमचन्द्र वृत्त व्याकरण के आधार पर नीचे के कोठे में सज्ञा और भिया रचना के ये रूप दिये हैं जो केवल अपभ्रंश में पाए जाते हैं और प्राकृत में नहीं मिलते ।

सज्ञा की रूप रचना ।

एकवचन	बहुवचन
१मा पुत्तु	पुत्त
२या पुत्तु	पुत्त
३या पुत्ते ^०	पुत्तहि (हिं)
४मी पुत्तहे, पुत्तहु	पुत्तहु
६ष्टी पुत्तस्स पुत्तहु पुत्तह	पुत्तह
७मी पुत्ति, पुत्तहि ^०	पुत्तहि ^०
नपुंसक-फल	
१मा, २या फलु	फलहै

यदि द्वितीयादि विभक्तियों को एव दूसरे के साथ मिलाया जाय तो मालूम होगा कि अन्तिम स्वर का अस्पष्ट उच्चारण करने से

एकवचन म सब का एक रूप हो जाता है । इसी प्रकार बहुवचन में अनुनासिक वाला एक रूप हो जाता है (देसो धीम्स पु० = ५ ४२) । अपभ्रंश १मा एक० का 'उ' सिन्धी भाषा में पाया जाता है जहा रूपों के अन्त में बहुत हल 'उ' रहता है ।

६ठी एक० का स् वाला रूप भी अपभ्रंश में मिलता है । परन्तु हिन्दी में यह सर्धनाम की रूपरचना में पाया जाता है—तिस का, किस का । यूरोप के चगडों (जिप्सी Gypsies) की रोमनी भाषा में यह रूप मिलता है—चोरेस् केरो "चोर का ।" कश्मीरी भाषा में भी मिलता है—चुरस् निश् "चोर के निकट", गुरस् निश् घोडे के निकट । ये रूप ४र्थों का अर्थ देते हैं ।

मराठी में भी ४र्थों के रूप स् वाले होते हैं ।

क्रिया की रूपरचना ।

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पुच्छइ	पुच्छहि*
म० पु०	पुच्छसि, हि	पुच्छहु
उ० पु०	पुच्छउँ	पुच्छहुँ

यह रूपायली पुरानी हिन्दी से तो बहुत ही मिलती है और आधुनिक हिन्दी के रूपों पुच्छे, पुच्छें, पुच्छो, पुच्छें आदि से भी कुछ अधिक भेद नहीं रखती ।

अपभ्रंश के वर्ण विकारों में मुख्य और विशेष उल्लेखनीय ये हैं—

'उ' के पूर्व 'व्' का लोप—आहवु के स्थान में आहउ=आहव , महावु के स्थान में सहाउ=स्वभाव ।

१ रासखानी और वज्र के १मा एक० रूपों का ओ, और पञ्जाबी और हिंदुस्तानी का आ शक वाले रूपों से आए हैं । -कू का लोप हो गया और अको>अओ>अप० अउ>ओ या आ ।

उ और अ के मूल म् का लोप—जउगा-यमुगा; भमुहा वे तिप्पे
भउहा=भू, दुगाउ, दुगामु-दुगम ।

अन्तिम इ, उ का अनुनामिकत्व । प्र० पु० एव० रुणै भगै।
म० पु० एव० रमि०; उ० पु० १ एव० मगिउ भमिउ ।

स्वरमध्यवर्ती म् का वँ या वू हो जाता है जो ँव ँव वर के
भी लिया जाता है । कुँवर=कुमर, कुमार; भैयण-भ्रमण, सयण=
भ्रमण, पयाण=प्रमाण ।

दीर्घ स्वरों का द्वस्य होना—याणै=याणिव्य; वरण=कारण;
निय=नीत, पिय=पीत ।

सजातीय स्वरों का एकादेश—अधार=अध्वार; भएहार=
भाएहागार, उएदाल=उभ्यवाल, पियार=#पियवर=प्रियतर ।

द्विभूत व्यञ्जन का द्वस्य होना, और तत्पूर्व द्वस्य स्वर का दीर्घ
होना—सहास=सहस्म=सहस्र; भयस=भयिस्म=भयिष्य ।

प्रातिपदिकों के परे -अ, (अ) इ, -उस् प्रत्यय जोड़े जाते हैं ।
यद्यपि ये प्रत्यय प्राचीन प्राकृत में भी पाए जाते हैं परन्तु यद्वा इतने
यद्गुत नहीं । प्राकृत में 'आल', 'आलु', 'इल', 'उल' प्रत्यय बहुवचन,
बहुवचन के अर्थ में अथवा "तत्सय-पी" अर्थ में आते हैं ।

उदाहरण—

आल—महा० सिहाल=शिशानल, अमा० सहाल=शब्दयत्;
धणाल=धनयत् । आल+क—अमा० महालय=महत् ।

आलु—णिहालु=निद्रालु (यह प्रत्यय संस्कृत में भी पाया
जाता है) ।

इल—(महा० जैम० अमा० में बहुत मिलता है)

महा० फेसरिल, कन्दलिल, तुलिल, खेउरिल । अमा० नियडिल=
निकृतिमत्, माइल=मायाविन्; माइलग=भागिन्, गोइल=गोमत्,
कणइल, “शुक, तोता” देशी शब्द ‘कण’ से, बाहिरिल “बाह्य”,
महा०, अमा० गामिल “गवार”; अमा० जैम० पुविल “पहिला ।”

‘उल’—(प्राकृत में विरला)—दपुल=दर्पिन् ।

और विशेषण प्रत्यय ये हैं—‘अल’ (-अल) और -इर । महा०
अमा० महल=महत्, नवल=नव; भमिर “भ्रमण करता हुआ”,
लम्बिर “लटकता हुआ”, हसिर “हसता हुआ ।”

स्वार्थ में -क और -ड (संस्कृत -ट) प्रत्यय—देसड=देश, दोसड=
दोप; रणडअ=अरण्य (क) ।

अतः के दोनों प्रत्यय अपभ्रंश में बहुत मिलते हैं ।

साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि वर्तमान आर्य भाषा-
ओं की व्युत्पत्ति तथा उन के उच्चारण पर ऐतिहासिक विचार
करते समय अपभ्रंश रूपों से जहाँ तक वे मिल सकें प्रारम्भ करना
चाहिये^१ । इस प्रकार हिन्दी शब्द पहिला की व्युत्पत्ति करते समय
हमें अपभ्रंश पहिलड से प्रारम्भ करना चाहिये न कि स० प्रथम
या प्रा० पढमो से^२ ।

प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार साहित्य में प्रयुक्त होने वाली
अपभ्रंश तीन प्रकार की थी—वाचड, नागर, उपनागर ।

१ ग्रियर्सन का लेख Phonology of the Indo-Aryan
Vernaculars

२ ग्रियर्सन अप० पडविलड रूप मानता है (अमा० पडमिल से) ।
पिशु स० प्रथिड से बनता है (§ ४४६) ।

जेकोयी ने सिद्ध किया है कि माचट या माचड सय से पुरानी है । सतरहवीं शताब्दी के वैयाकरणों का कहना है कि यह सिन्ध देश की भाषा थी । ऐसा प्रतीत होता है कि यह वही है जिसे 'आभीरी भाषा' (अहीरों की भाषा) कहते हैं । जेकोयी माचट शब्द को व्रज शब्द से निकालता है और इस की पुष्टि में व्रज भाषा का उदाहरण देता है जो हिन्दी की एक साहित्यिक बोली का नाम है^१ । इस अपभ्रश की मुख्य विशेषता थी—सयुक्त अक्षर में 'र' का रहना अथवा व्यञ्जन के पदे 'र' का आगम और अरु का रहना ।

माचड और उपनागर या प्रास्य अपभ्रश की अपेक्षा नागर अपभ्रश अधिक समार्जित और शिष्ट प्रतीत होती है । यह वही अपभ्रश है जिसे हेमचन्द्र ने वर्णन किया है और जिस के उदाहरण दिये हैं । जेकोयी ने इस के दो और रूप वर्णन किये हैं जो हेमचन्द्र से कुछ ही भिन्न हैं । उन में से एक में वि० स० १२१६ में गुजरात की राजधानी अणहिलवाड में हरिमद्र ने "नेमिनाहचरिज" की रचना की । इस भाषा को "गुर्जर अपभ्रश" कह सकते हैं । श्वेताभ्यर जैनों ने इस का बहुत प्रयोग किया है । दूसरे प्रकार की नागर अपभ्रश को जेकोयी उत्तरी नागर अपभ्रश कहता है । इस में धनपाल ने "मयिसत्त-कह" की रचना की । इस की शैली सरल है और इस में प्राकृत के शब्द थोड़े हैं । अराकार भी सरल और थोड़े हैं । दिगम्बर जैनों ने इस का बहुत आदर किया । इन में मुख्य भेद सद्भा की रूप-रचना के स्वर-प्रत्ययों का है ।

प्राचीन वैयाकरण तथा कवियों ने अपभ्रश शब्द को नागर जैसी साहित्यिक भाषाओं के लिये प्रयुक्त किया प्रतीत होता है जो किसी स्थान विशेष में जन्म ले कर दूर दूर फैल जाती थीं । इस अर्थ में अपभ्रश का सम्बन्ध पश्चिमी भारत से है जिस के अन्दर

१ 'मयिसत्त-कह' की प्रस्तावना ।

अथ गुजराती, सिन्धी और राजस्थानी भाषाएँ बोली जाती हैं । इस शब्द का व्यवहार और स्थलों में भी हुआ होगा । कुछ काल पीछे यह शब्द भिन्न २ देश भाषाओं के लिये भी प्रयुक्त होने लगा । इस अर्थ के अनुसार शौरसेनी अपभ्रंश कई प्रकार की थी जो मथुरा के आसपास उस समय बोली जाती थी जब कि शौरसेनी प्राकृत साहित्यिक भाषा बन चुकी थी । इसी प्रकार जहाँ मागधी और महाराष्ट्री प्राकृतें प्रचलित थीं वहाँ मागधी और महाराष्ट्री अपभ्रंश भी होंगी । जब इन अपभ्रंशों में कोई स्पष्ट और उल्लेखनीय भेद न होता होगा तो इन की ओर कोई ध्यान भी न देता होगा, और न ही कोई इन का वर्णन करता होगा जब तक इन में कुछ कविता न बन जाती होगी ।

भरत मुनि ने कई एक विभाषाओं का उल्लेख किया है जिन्हें नाटकों के खास २ पात्र बोलते थे । इन में शाकरी (जिस का आधार मागधी है), चाण्डाली, शायरी, आभीरी और टाक्री शामिल हैं^१ ।

मार्कण्डेय ने इन का कुछ विस्तार से वर्णन किया है और वह द्राविड समेत २७ के नाम लेता है । द्राविड शब्द का अर्थ वहाँ तामिल आदि द्राविडी भाषा नहीं है किन्तु एक प्रकार की ठूठी फूटी आर्य भाषा है जो द्राविड देश में प्रचलित थी । रामतर्क चागीश ने इन विभाषाओं में से पाञ्चाली, मालवी, मध्यदेशीया आदि पर कुछ टिप्पण दिये हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब साधारण अपभ्रंश अर्थात् पश्चिम की साहित्यिक अपभ्रंश के स्थानीय रूप थे । इन की स्वतन्त्र सत्ता न थी । महाराष्ट्री और मागधी से मराठी

^१ ग्रियर्सन JRAS 1918 pp 489 ff

^१ ग्रियर्सन JRAS 1913 p 875 अपभ्रंश और देश भाषा के विषय में जेकोपी का मत भेद है । देखो अविमर्श ४६ की उपोद्घात ।

और यगता का रूप धारण करते समय तक इनकी किसी मध्यवर्ती प्रपञ्च का उद्भव नहीं मिलता। पुत्तनी विभागाय किसी एक भारत प्रियेय के स्थानीय या जातीय रूप होंगे न कि मध्यजालान भारतीय भाषाओं का स्वतन्त्र रूप। इस सिधे हम इन के गोठे बहुत महानि तो जान सकते हैं परन्तु यार्पे-भारती के विकास-मृग में इन का स्थान-निर्देश नहीं कर सकते।



अध्याय ११

प्राकृत साहित्य ।

सब से प्राचीन प्राकृत जो लेप्पारूढ मिलती है वह वि० पू० तीसरी शताब्दी की महाराज अशोक की धर्मलिपियों की है। बौद्ध ग्रंथ तो पहिले भी विद्यमान थे और जैसा कि ऊपर कहा गया है, अशोक ने कुछ ऐसे पाठों के प्रतीक भी दिये हैं जो उसे विशेष प्रिय थे, परन्तु प्रतीकों के जो शब्द उद्धृत किये गए हैं उन से प्रतीत होता है कि ये अभी उस पाली भाषा में बद्ध नहीं हुए थे जिस में रचा हुआ त्रिपिटक लफा और ब्रह्मदेश के हीनयान सघ में प्रचलित है। हम किसी पाली ग्रंथ को निश्चय के साथ अशोक से पूर्वकालिक नहीं मान सकते ।

जब किसी भाषा के साहित्य का वर्णन करना हो तो शिलालेख, ताम्रशासन आदि को प्रायः साहित्य के अतगत नहीं करते । परन्तु यदि अशोक की धर्मलिपिया पुस्तकाकार में सुरक्षित होतीं तो प्रत्यक्ष है कि वे प्राकृत साहित्य का सब से प्राचीन ऐसा अंश होतीं जिस का समय निश्चय पूर्वक ज्ञात है । इन लिपियों की भाषा तथा व्याकरण का पहले भी कुछ वर्णन किया जा चुका है । इन की रचना शैली गद्य के इतिहास में विशेष महत्त्व रखती है । यह अलंकारों से सर्वथा शून्य है और महाराज अशोक की सत्यप्रियता तथा उद्योगशीलता का परिचय देती है । यह मानने में कुछ आ

पत्ति नहीं कि धर्मलिपिया महाराज ने स्वयं अपने मुख से लिखवाई होंगी क्योंकि इन में प्रशंसा या स्तुति का कोई लेश नहीं है जो इन में स्वाभाविक तौर पर पाया जाता, अगर्भ के किसी राजकवि या लिपिकार की रचना होती।

इन लिपियों की रचना की तुलना पारसीक महाराज द्वारा के लेखों से की गई है। यह तो सचथा समय है कि अपनी जीवन घटनाओं को चट्टानों पर उत्कीर्ण करने का क्याल महाराज अशोक को पारसीक देश के लेखों से आया हो। परन्तु यह बात कि पाटलिपुत्र की राजसभा के सदस्य पारसीक भाषा से भली भाँति परिचित थे एक हृदयग्राही उपन्यास है जो अभी तक निश्चयपूर्वक सिद्ध नहीं हो पाया है। और कुछ ही हो, परन्तु इन दोनों लेखों की बाह्य आकृति में क्या भारी अंतर है।

महाराज द्वारा तो अपने इष्टदेव अहुमज्द की सहायता से शत्रुओं पर विजय पाने और विशाल राज्य के स्थापन करने पर हर्ष प्रकट करता है परन्तु महाराज अशोक कलिङ्ग देश को विजय कर के पश्चात्ताप सा करता है। अशोक का मुख्य प्रयोजन यह है कि देश देशांतरों में धर्मवृद्धि हो अर्थात् बौद्ध धर्म फैले। इस निमित्त से जो जो उपाय उस ने किये उन का वर्णन कर के धर्म वृद्धि के लिये शासनों द्वारा उद्बोधित करता है। प्रसंगपर ये लेख मौर्य राज्य की शासन पद्धति तथा उस समय का प्रजाहितैषी राजा लोकोपकार के क्या काम कर सकता था इस विषय पर कुछ प्रकाश डालते हैं। इन लिपियों की सरलता एक विशेष महत्त्व रखती है जो उत्तरकालीन अलंकृत प्रशस्तियों में नहीं पाई जाती।

यदि “प्राकृत साहित्य” का व्यापक अर्थ लें, तो सब से प्रधान स्थान पाली को देना होगा। इस स्थान के लिये पाली का अधिकार केवल इस की प्राचीनता पर ही निर्भर नहीं है, प्रत्युत इस के

आनुपद्मिक गुण और प्राचीन बौद्ध साहित्य के ऐतिहासिक गौरव पर भी है। भारत वर्ष के सब धर्मों में से बौद्ध धर्म ही ऐसा है जिस ने समस्त एशिया द्वीप पर अतीव गहिरा प्रभाव डाला है। इस धर्म के सब से प्राचीन ग्रंथ जो अब तक विद्यमान हैं पाली त्रिपिटक में ही शामिल हैं। इस बात के अतिरिक्त बौद्ध ग्रंथों में हमें भारतीय जीवन का ऐसा चित्र मिलता है जो कथा, आर्यायिका तथा ब्राह्मण धर्म के ग्रंथों में पाए जाने वाले आत्मश्लाघा के चित्रों का श्रेष्ठपूरक है। भारतीय इतिहास के प्रत्येक अभ्यासी को कुछ न कुछ जातक अर्थात् बुद्ध भगवान् के पूर्व जन्मों की कथाएँ अवश्य पढ़ लेनी चाहियें। बौद्ध स्तूप तथा विहारों के किराड़ों पर इन जातकों और बुद्ध भगवान् की जीवन-घटनाओं के चित्र निरंतर खुदे हुए मिलते हैं। सच तो यह है कि बौद्ध दर्शन का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त किये बिना और बौद्ध भिक्षु तथा उपासकों का जीवन चरित्र जाने बिना जैसा कि इन प्राचीन ग्रंथों में मिलता है कोई अभ्यासी उस सत्ता का यथार्थ स्वरूप नहीं जान सकता जो बुद्ध भगवान् के निर्वाण के पश्चात् एक हजार वर्ष तक भारत के इतिहास में प्रधान रही। इन्हीं प्रकार भारतीय दर्शन के अभ्यासी को पता लगेगा कि अतिसूक्ष्म तर्क वितर्क तथा उच्च और प्रगतम विचार ब्राह्मण दर्शनों तक परिमित न थे किन्तु बौद्धों में भी पाए जाते थे।

पाली में ऐतिहासिक साहित्य का उदाहरण भिजुसमुदाय का गाथायुद्ध वृत्तान्त है जो लंका के प्राचीन इतिहास का वर्णन करने वाले 'महावस' में मिलता है।

साधारण तौर पर पाली साहित्य प्राकृत साहित्य के अतर्गत नहीं गिना जाता। यदि पाली ग्रंथों को पृथक् कर दें तो समग्र प्राकृत साहित्य का अधिकांश जैन साहित्य ही रह जाता है। जैसा कि पहले कहा गया है यह साहित्य तीन भिन्न-प्रकृतियों में मिलता है।

अर्धमागधी सभ से पुगो जैन ग्रन्थों की भाषा है । ये ग्रन्थ भेताम्यर सम्प्रदाय का सिद्धान्त या आगम कहलाते हैं । सिद्धान्त में सब ४४ ग्रन्थ हैं जिन में ११ अङ्ग और ३३ उपाङ्ग भी शामिल हैं । इन का उल्लेख कभी प्राकृत नामों से और कभी सरसृत नामों से किया जाता है ।

१म अङ्ग—आचारगसुत्त=आचाराङ्गसूत्रम् ।

२म अङ्ग—सूयगदग=सूयगताङ्गम् ।

७म अङ्ग—उपासगदसाओ=उपासकदशा ।

१म उपाङ्ग—ओपपारपसुत्त=ओपपातिवसूत्रम् ।

विप्रम की पाचवीं शताब्दी में देवसिंहगणि हामाभमण ने सिद्धान्त को एकत्र करके लेखाकद किया । यह काम भगवान् महावीर के निर्माण से १८० वर्ष पीछे समाप्त हुआ अर्थात् वि० स० ५११ में (या शायद वि० स० ५७१ में) ।

ये प्राचीन ग्रन्थ जिन्हें पूर्ण कहते थे और जिन के आधार पर सिद्धान्त की रचना हुई, सर्वथा नष्ट हो गए हैं । अब सिद्धान्त के अन्दर सिद्ध २ काल के रचित ग्रन्थ और अध्याय शामिल हैं और उन को एक दूसरे से पृथक् करना कठिन कार्य है । कई ग्रन्थ और अध्याय भद्रबाहु स्वामी की रचना माने जाते हैं जो भगवान् महावीर से १७० वर्ष पीछे हुए । उन में से एक ग्रन्थ कल्पसुत्त (कल्पसूत्रम्) है जिस में भगवान् महावीर का जीवन चरित्र वर्णन किया गया है । वास्तव में यह देवसिंह गणि से पहिले का नहीं ।

प्राचीन गद्य ग्रन्थों की रचनाशैली बड़ी शब्दबहुला है । इन में ग्राम, नगरआदि के लम्बे लम्बे वर्णन पाए जाते हैं तथा बहुत से पाठ बार बार दोहराए जाते हैं । ग्राम पाठकों के लिये उन की महत्ता इस बात में है कि उन में प्रसङ्ग वश भारतीय जीवन का घृत्तांत तथा घटनाओं का वर्णन पाया जाता है ।

जैन साहित्य का सघ से प्राचीन काव्य "पउमचरिय" है जिस में रामायण की कथा पाई जाती है । इस का रचना काल विक्रम की चतुर्थ शताब्दी प्रतीत होता है ।

जैन माहाराष्ट्री में ज्वेताम्बरों के आगम-बाह्य ग्रन्थ रचे हुए हैं । इन में अधिक तर कथा संग्रह हैं, जिन में तीर्थंकर आदि शलाका पुरुषों और मुनियों के जीवन चरित्र तथा अन्य तीर्थियों के जैन धर्म ग्रहण करने का वृत्तान्त है । वर्तमान युग के विद्वानों ने ज्वेताम्बर साहित्य का कुछ भाग ही दृष्टिगत किया है । भाषाविज्ञान तथा इतिहास के लिये अभी बहुत सा भाग दृष्टिगोचर करने योग्य है ।

जैन शौरसेनी में रचे हुए दिगम्बर ग्रन्थ और भी कम प्रसिद्ध हैं । सर भाण्डारकर ने कुन्दकुन्दाचार्य कृत "पययण सार" और कार्तिकेय स्वामि कृत "कस्तिगेयाणुपेक्खा" के कुछ पाठ प्रकाशित किये हैं । ये दोनों ग्रन्थ छन्दोबद्ध हैं ।

जैन साहित्य न तो इतना प्रसिद्ध है और न इस का इतना पठन पाठन किया जाता है जितना बौद्धों के पाली साहित्य का । बहुत सा तो अभी तक हस्तलिखित ही पड़ा है या अशुद्ध प्रकाशित हुआ है । और बहुत सा तो टीका की सहायता से भी समझना कठिन है, टीका के बिना तो कहना ही क्या है ।

जैन आगम ग्रन्थों के पूर्व भी अर्धमागधी का प्रयोग साहित्य में होता था । इस में प्रमाण यह है कि अश्वघोष तथा उस के सह कालीन कवियों के बनाए नाटकों में और कई एक लेखों में अर्ध मागधी पाई जाती है । जैन माहाराष्ट्री कण्डुक के शिलालेख में मिलती है ।

काव्य रचना के लिये वेर से मुख्य प्राकृत भाषाएँ रही हैं। यही भाषा है जिस में प्राकृत महाकाव्य तथा गान्ध काव्य रचे जाते हैं और इसी का वर्णन प्राकृत व्याकरणों में सब से पहिले पाया जाता है।

सब से प्रसिद्ध महाकाव्य सेतुबन्ध है। इस की रचना शैली इतनी अच्छी है कि कई विद्वान् इसे कवि कालिदास की कृति मानते हैं। प्राकृत में इस काव्य को राघवजटो या दातुमुहपटो कहते हैं। इस में रामायण की कथा वर्णन की गई है परन्तु स्पष्ट किया जाता है कि इस की रचना काश्मीर के राजा प्रवरसेन के श्रीनगर में पुल बनवाने की यादगार के लिये हुई।

विक्रम की आठवीं शताब्दी के आरम्भ में बान्धुकुब्ज के राजा यशोधर्म ने बंगाल देश (गौड) पर विजय पाई इस विजय की स्मृति में "गडडपटो" काव्य रचा गया। इस के कर्ता का नाम कप्प इराञ्ज (याकूपतिराज) शायद कवि का गुप्त नाम है। इस कवि ने एक और काव्य "महुमदविजय" रचा परन्तु इस के एक दो श्लोक ही बचे हैं, शेष नष्ट हो गया है।

राघवजटो और गडडपटो की रचना शैली पर सस्कृत काव्यों का गहरा प्रभाव पड़ा है। इन दोनों में खूब सम्बन्ध समास पाए जाते हैं।

हेमचन्द्र कृत व्याधय महाकाव्य के अन्तिम आठ सर्गों का छोटा सा प्राकृत महाकाव्य बन जाता है जिस का नाम है 'कुमार पाल चरित'। इस में अणदिलनाड (गुजरात) के राजा कुमारपाल के पराक्रम का वर्णन है। समग्र काव्य की न्याईं इन आठ सर्गों का

१ प्रा० जेकोबी का विचार है कि महाकाव्य ने यह प्रभाव पद ४^{थी} शताब्दी में प्राप्त कर लिया था (प्राकृत कथा १८८६)। इस से पहिले के क्षेत्र तो महाराष्ट्र में मिलते हैं उन की भाषा पाखी वैसी है। तिसरी शताब्दी के कई क्षेत्रों में स्वामी-वर्ती व्यक्तियों का स्तूप देखा जाता है। जैन आगम विक्रम की ४^{थी} शताब्दी के आरम्भ में खेसराद हुए और इन की अधिमागधी पर माहा काव्य का प्रबल प्रभाव है। दूसरी कवि सेतुबन्ध की कड़ी प्रशंसा करता है।

प्रयोजन भी कवि के अपने बनाए 'सिद्ध-हेमचन्द्र' नामी संस्कृत प्रारुत व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण देना है ।

माहाराष्ट्री के ज्ञान के लिये सब से मुख्य ग्रन्थ हाल कृत सत्तसई (सप्तशतकम्) है । यह ग्रन्थ बहुत से कवियों के श्लोकों का संग्रह है । एक टीकाकार ११२ कविनामों का उल्लेख करता है । परन्तु भुवनपाल ३८४ कवियों के नाम प्रकट करता है । भिन्न २ प्रतियों में श्लोकों का क्रम भिन्न २ है और अब थोड़े ही श्लोक ऐसे हैं जो निश्चय से किसी एक कवि के बनाए कहे जा सकते हैं । इस संग्रह से अनुमान किया जा सकता है कि माहाराष्ट्री में कितनी कविता बनी होगी जो अब नष्ट हो चुकी है । हाल की वायत श्याल किया जाता है कि यह राजा सातवाहन या जिसे शालिवाहन आदि भी कहते हैं । और साधनों से हाल के अतिरिक्त कई दूसरे कवियों का पता भी लगता है । राजशेखर अपनी कर्पूर मञ्जरी (अ. १) में हरिउद्द, गन्दिउद्द और पोटिस का उल्लेख करता है । विद्वपक कहता है—“ता उज्जुअ जेय कि ए भणीअदि, अम्हाए खेडिआ हरिउद्द-गन्दिउद्द-पोटिस-हाल प्युहुदीए पि पुरवो सुकहासि ।”

इस सप्तशती के रचना काल का अभी निश्चय नहीं हुआ । प्रो० पेपर तीसरी और सातवीं शताब्दी के बीच इस की रचना मानता है । मैकडानल का कहना है कि हाल दसवीं शताब्दी से पहिले हुआ ।

इस हाल-सातवाहन की आन्ध्रप्रदेश का १७ वा (वि० स० १२५) का राजा मान लेने से कुछ गड़बड़ सी होगई है । जेफोयी कहता है कि यह हाल प्रतिष्ठान नगर का राजा सातवाहन था जिसने वि० स० ५२४ में जैनों के सवस्वरी पर्व की तिथि में कुछ परिवर्तन किया था ।

इस में सन्देह नहीं कि यह सप्तशती जिस के संग्रहीत कवि राजशेखर के समय तक प्रसिद्ध थे, प्रथम शताब्दी की रचना

१ अनुवाद—तो स्पष्ट क्यों नहीं कह देते कि यह हमारी दासी हरिउद्द, गन्दिउद्द, पोटिस, हाल आदि से भी बढ़िया कवि है ।

नहीं हो सकती, क्योंकि उस समय की प्राकृत पाली से जुलनी होनी चाहिये । सप्तशती के प्रारम्भ के श्लोक सूचना देते हैं कि दक्षिण के ये शृङ्गाररस मरे श्लोक उस इतने प्रचलित नहीं थे जितने कि वे पहिले दुआ करते थे ।

इसी प्रकार की एक और सप्तशती है जिस का नाम या घञ्जालगा है । इन का सरुला श्वेताम्बर भिजु जयव किया । इस में भी ७०० दुन्द हैं जिन में से कई एक हाल शती में भी मिलते हैं ।

नाटकीय प्राकृतें ।

संस्कृत का प्रत्येक पाठक जानता है कि संस्कृत ना तीन प्राकृतें (महा०, शौ०, माग०) भी व्यवहृत होती हैं । कौन से पात्र को कौन कौन सी प्राकृत बोलनी चाहिये इस मत भेद है । मृच्छङ्कटिक में प्राकृतों की संय से अधिक सफ जाती है । नाटक के नायक तथा विदूषक को छोड़ कर उस साथी संस्कृत में बोलते और गाते हैं । स्त्री पात्र संस्कृत नहीं परन्तु मालती माधन में बौद्ध भिक्षुणी संस्कृत बोलती है । प्राकृत का नाटक जिस में नायक भी प्राकृत बोलता हो भूत समझना चाहिये । ऐसे नाटक का प्रसिद्ध उदाहरण मञ्जरी है । इस के कर्ता कवि राजशेखर ने यह घतलाना समझा कि इस में संस्कृत का प्रयोग क्यों नहीं किया । प्रस में सूत्रधार चिंतन करता है, “फिर किस लिये कवि ने को छोड़ कर प्राकृत में ही रचना की है ?” इस के उत्तर में पार्श्वक माहाराष्ट्री में कहता है—

परसा सफ़्रवन्धा पाउअवन्धो वि होइ सुउमारो ।

पुरिस महिलाण जेसिअमिहन्तर तेसिअमिमाण ॥

संस्कृत रचना कठोर होती है लेकिन प्राकृत रचना कोमल है ।

१ मास के 'कव्यमा' में प्राकृत रूप धारी दुन्द भी प्राकृत बोलता है ।

सकती है। इस विषय में उनमें इतना अन्तर है जितना स्त्रीपुरुष में होता है।

स्त्री पात्र और विदूषक साधारण घात चीत शौरसेनी में करते हैं परन्तु गीत महाराष्ट्री के गाते हैं। दास, दासी, चामन, परदेसी आदि मागधी बोलते हैं। जैसे—शकुन्तला में दोनों राजपुरुष तथा धीवर। जैन भिजु तथा छोटे बालक भी इसी प्राकृत को बोलते हैं।

लिखित तथा छापे की पुस्तकों में पात्रों की भाषा बाट बटुधा अलङ्कार प्रन्थों और टीकाकारों के मत के विरुद्ध होती है। वे

१ पिराब् (§ २३) के अनुसार निम्नलिखित पात्र मागधी बोलते हैं—

मृच्छकटिक—चाकर, उम का नौकर स्थावरक, सवाइक, कुम्भीलक, वर्ध मानक, दोनों चापहाल और रोहसेन।

शकुन्तला—धीवर, राजपुरुष, सर्वदमन।

प्रबोधचन्द्रोदय—चापाकशिष्य और डल्लदून।

गुदाराक्षस—दास, जैनभिजु, वृत्त, मित्राधक और समिद्धार्थक जब चापहाल बनते हैं।

ललितविमहराज—वैतालिक और गुप्तचर (जो कभी शौ० बोलता है), गुरुक बन्दीजन और गुप्तचर। भारतवासी गुप्तचर शौ० बोलता है।

वेणीमहार—राक्षस और उस की भार्या।

मल्लिकामार्गल—हस्तिपालक।

भागानन्द—नौकर चाकर।

सैतन्य चन्द्रोदय—नौकर चाकर।

अपहकौशिक—चापहाल और भूत।

भूर्तसमागम—नापित।

हास्याशय—सागुर्दिसक।

छटकमेखक—दिग्गम्बर भिजु।

कसवध—कुन्जा।

अमृतोदय—जैन भिजु।

नहीं हो सकती, क्योंकि उस समय की प्राकृत घाती में मिलती जुलती होनी चाहिये । सप्तशती के प्रारम्भ के श्लोक इस घात की सूचना देते हैं कि दक्षिण के ये गृहकारण भरे श्लोक उस समय इतने प्रचलित नहीं थे जितने कि वे पहिले दुआ करते थे ।

इसी प्रकार की एक और सप्तशती है जिस का नाम जम्बवज्ज या धम्माराग है । इस का सम्बन्ध श्वेताम्बर भिक्षु जम्बवज्ज ने किया । इस में भी ७०० छन्द हैं जिन में से कई एक हाल की सप्त शती में भी मिलते हैं ।

नाटकीय प्राकृतें ।

संस्कृत का प्रत्येक पाठक जानता है कि संस्कृत नाटकों में तीन प्राकृतें (महा०, शौ०, भाग०) भी व्यवहृत होती हैं । कौन कौन से पात्र को कौन कौन सी प्राकृत बोलनी चाहिये इस में कुछ मत भेद है^१ । मृच्छकटिक में प्राकृतों की संख्या से अधिक संख्या पाई जाती है । नाटक के नायक तथा विदूषक को छोड़ कर उस के शेष साथी संस्कृत में बोलते और गाते हैं । श्री पात्र संस्कृत नहीं बोलते परन्तु मालती माधव में यौद्ध मिश्रणी संस्कृत बोलती है । केवल प्राकृत का नाटक जिस में नायक भी प्राकृत बोलता हो अपवाद भूत समझना चाहिये । ऐसे नाटक का प्रसिद्ध उदाहरण कर्पूर मञ्जरी है । इस के कता कवि राजशेखर ने यह बतलाना उचित समझा कि इस में संस्कृत का प्रयोग क्यों नहीं किया । प्रस्तावना में सूत्रधार चिन्तन करता है, "फिर किस लिये कवि ने संस्कृत को छोड़ कर प्राकृत में ही रचना की है ?" इस के उत्तर में पारि पार्थक्य मादाराष्ट्री में कहता है—

पयसा सकम्बवधा पाउश्वन्धो वि होइ सुउमारो ।

पुरिस महिलाण जेत्तिअमिहन्तर तेत्तिअमिमाण ॥

संस्कृत रचना कठोर होती है लेकिन प्राकृत रचना कोमल भी हो

१ भाग के 'कर्णमार' में प्राकृत रूप घाती इद भी प्राकृत बोलता है ।

कती है । इस विषय में उनमें इतना अन्तर है जितना स्त्रीपुरुष में होता है ।

स्त्री पात्र और विदूषक साधारण बात चीत और सेनी में करते परन्तु गीत महाराष्ट्री के गाते हैं । दास, दासी, वामन, परदेसी प्रादि मागधी बोलते हैं । जैसे—शकुन्तला में दोनों राजपुरुष तथा धीवर । जैन भिजु तथा छोटे बालक भी इसी प्राकृत को बोलते हैं ।

लिखित तथा छापे की पुस्तकों में पात्रों की भाषा बाट बहुधा प्रलङ्कार ग्रन्थों और टीकाकारों के मत के विरुद्ध होती है । ये

१ पिशा (§ ६३) के अनुसार निम्नलिखित पात्र मागधी बोलते हैं—
मृषङ्कटिक—चाकर, उस का नौकर स्थावरक, सबाइक, कुम्भीतक, बर्थ मानक, दोनों चायडाल और रोइसेन ।

शकुन्तला—धीवर, राजपुरुष, सर्वदमन ।

प्रबोधचन्द्रोदय—चार्याकौशिक और डक्कलवूत ।

सुमाराचस—दास, जैनभिजु, वूत, सिद्धार्थक और समिद्धार्थक जब चायडाल बनते हैं ।

शक्तिविम्वराज—वैतालिक और गुसचर (जो कभी शौ० बोलता है),
गुसक व दीजन और गुसचर । भारतवासी गुसचर शौ० बोलता है ।

वेणिसहार—राचस और उस की भार्या ।

भल्लिकामाहत—इस्तिपालक ।

नागानन्द—नौकर चाकर ।

वैतन्य चन्द्रोदय—नौकर चाकर ।

घण्टकौशिक—चायडाल और भूत ।

भूर्तसमागम—नापित ।

दास्याश्रय—साधुर्हिसक ।

खटकमेखक—दिगम्बर भिजु ।

कसवध—कुम्भ ।

प्रमत्तोदय—जैन भिजु ।

मली प्रकार पदा लिया पुरुष ससृष्ट बोल सकता था इसलिये नायक ससृष्ट बोलता था और नाटकीय नियम के अनुसार सदैव ससृष्ट बोलता था जैसे असली राजा तो कर्मी ही मुकुट पहिनते हैं परन्तु नाटकों में राजा सदैव मुकुट पहिनते हैं ।

उपर्युक्त विचार से यह सूचना भी होती है कि ससृष्ट नाटक ने शूरसेन में स्थिर रूप प्राप्त किया^१ । गीतों में माहाराष्ट्री का प्रयोग करना—इस के लिये एक और युक्ति देनी पड़ेगी । यह भी कवि समय की बात है । दक्षिण में गीतात्मक कविताने ऐसी उन्नति की कि वह दूर २ फैल गई । नि सन्देह माहाराष्ट्री गीत समग्र भारत में गाए जाते थे, जैसा कि अब फारसी के छंद गाए जाते हैं । स्वाभाविक था कि प्राकृत गीतों के लिये लोग इसी भाषा को उपयुक्त समझने लगे । इस युक्ति के आधार पर नाटक में दूसरी प्राकृतों के प्रयोग का समाधान करना कठिन न होगा । इस प्रश्न का ससृष्ट नाटक के विदास और इतिहास के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । परन्तु इस विषय में हमारा ज्ञान बहुत ही कम है । इस बात में मतभेद है कि किसी नाटक में प्राकृतों की संख्या का अधिक होना (जैसा कि मृच्छकटिका में) उस की प्राचीनता का द्योतक है वा अर्थाचीनता का । फिर कई एक विद्वानों का मत है कि पहिले पहिल नाटक प्राकृत में ही होते थे । उन में ससृष्ट का प्रयोग पीछे से हुआ ।

प्राकृत मूल न केवल नाटक का ही यत्कि इतिहास और पुराणों का भी माना गया है^२ यह तो स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि

१ सिलवां लेवी (भारतीय नाटक १८६० पृ० ३३१, क्रैच भाषा) का कहना है कि नाटक में शूरसेनी के प्रयोग का सम्भव तो मथुरा को कृष्ण सम्प्रदाय के साथ है, और मागधी मगध देश के मागध (भाटों) की शक्त है ।

२ पार्जिट्—कलियुग के राजवंश । ग्रियर्सन । Encycl Brit. प्रो० हर्देल ने पञ्चतन्त्र का भी प्राकृत मूल माना है । कोई गीतगाविद का भी प्राकृत मूल मानते हैं ।

बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में थी महाभारत और पुराणों का भी मूल प्राकृत में ही बताया जाता है। इसमें प्रमाण यह है कि उनके वर्तमान सस्कृत रूप में व्याकरण तथा छन्द सम्यन्धी कई ऐसी बातें हैं जो इस बात की सूचना करती हैं कि ये प्राकृत से अनुवाद किये गए हैं। इस विषय पर यहाँ विचार नहीं किया जा सकता। तथापि यह याद रखना चाहिये कि यह कविता अथवा छन्द जो मूलतः साधारण लोकों में प्रचलित हो, यह सस्कृत में अस्मृति होने से पहिले किसी न किसी साधारण लौकिक भाषा में (चाहे वह कितनी ही अनियत और परिवर्तनशील हो), रची हुई होगी। यदि ऐसी कविता बहुत पुरानी हो तो उस का मूल प्रथम युग की प्राकृत में होगा न कि मध्य युग की प्राकृत में। प्रथम युग की प्राकृत पाणिनीय सस्कृत के सर्वथा सदृश तो न होगी, हाँ उन में समानता बहुत होगी। (तदुत्तरवर्ती काल में किसी ग्रन्थ को सस्कृत रूप देने की उत्तरोत्तर चेष्टा जिससे उस ग्रन्थ के सय भागों को एक जैसी सफलता न हो वर्तमान महाभारत तथा पुराणों की सी भाषा को ही जन्म देगी)। इस प्रकार प्रथमयुगीन प्राकृत का सस्कृत रूप और बात है और मध्य-युगीन प्राकृत से पाणिनीय सस्कृत में अनुवाद करना और बात है।

प्राकृत व्याकरण प्राकृत साहित्य का एक विशेष अङ्ग हैं। सय से प्राचीन ग्रन्थ भारतीय नाट्यशास्त्र है जिस के अध्याय १७ में श्लोक ६—२३ में प्राकृत व्याकरण का सक्षिप्त वर्णन पाया जाता है। अध्याय ३२ में प्राकृत के उदाहरण दिये हैं। रोद् है कि इस का पाठ इतना भ्रष्ट हो गया है कि अब यह काम मैं नहीं लाया जा सकता।

पाणिनि को भी प्राकृत सक्षिप्त नामी एक प्राकृत व्याकरण का वर्णन मिलता है। प्राकृत रूप में कोई कविता मिलती नहीं है।

यन का प्राकृत प्रकाश है । यह बड़ी वररचि है जो पाणिनि का धार्मिककार है । प्राकृत प्रकाश पर सब से प्राचीन टीका मामह कृत मनोरमा है । इस टीका के साथ इस व्याकरण का कौवल महाशय ने अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादन किया है । दसवें अध्याय में मामह ने पैशाची के दो छोटे से पाठ दिये हैं । ये शायद बृहत्काथा से उद्धृत किये हैं ।

चण्ड अपने प्राकृत सङ्गण में महाराष्ट्री तथा जैन प्राकृतों (अमा०, जैम०, जैशौ०) का वर्णन करता है । इसके विषयक्रम के आधार पर कह सकते हैं कि यह खासा पुराना है ।

सब से अधिक उल्लेखनीय प्राकृत व्याकरण हेमचन्द्र का है (वि० स० ११४५—१२२६) जो उस के सिद्धहेमचन्द्र का आठवां अध्याय है । इस से पहिले सात अध्याय ससृष्ट व्याकरण का प्रतिपादन करते हैं । हेमचन्द्र ने देशीनाममाला कोश भी लिखा है ।

और व्याकरण ये हैं—

कमदीश्वर के सत्तिसार का अंतिम अध्याय । यह वररचि का अनुसरण करता है और किसी काम का नहीं ।

त्रिभुक्तमदेय का प्राकृत व्याकरण जो तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया, हेमचन्द्र का अनुसरण करता है ।

प्राकृत सर्वम्—इस का कता मार्कण्डेय कयीद्र सत्रहवीं शताब्दी में उड़ीसा के राजा भट्टेद्रपाल के समय में हुआ ।

रामतर्कवागीश का प्राकृतकल्पतरु ।

इन के अतिरिक्त और कई व्याकरण हैं जो अधिक प्रसिद्ध नहीं ।

१ सूत्र ४ के नीचे—इवस्य पिव ॥ कमल पिव सुत । सूत्र १४—
इदयस्य हितयकम् ॥ हित अक हरसि मे तल्लुनि ।

अपभ्रश के फुटकर श्लोक जैन ग्रन्थों में, अलंकारशास्त्रों में तथा शुकसप्तति, चेतालपञ्चविंशति आदि अर्वाचीन कथासंग्रहों में पाए जाते हैं । आश्चर्य की बात है कि विक्रमोर्वशीय नाटक की कई प्रतियों में चौथे अङ्क में राजा पुरुरवा के मुख से अपभ्रश के श्लोक कहलाए हैं^१ । चौदहवीं शताब्दी के छन्दोग्रन्थ प्राकृत पिङ्गल में भी अर्वाचीन प्राकृत या अपभ्रश के पद्य पाए जाते हैं । इन की भाषा इतनी अर्वाचीन है कि जेकोबी इस को अपभ्रश कहना उचित नहीं समझता । इसे तो आधुनिक भाषाओं का आदि रूप कहना चाहिये ।

अपभ्रश का सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ जो अब मिलता है धण्वाल्ल द्वारा भविष्यत्तकह है । इस में एक धणिकपुत्र भविष्यदत्त का चरित वर्णन किया गया है । किस प्रकार उस ने यात्रा करते समय क्रुद्ध जाङ्गल और पोतन के युद्ध में भाग लिया । जेकोबी के मतानुसार पोतन तक्षशिला का नाम है । इस के पश्चात् मुख्य कथा पानों के पूर्व तथा उत्तर भागों का वर्णन है ।



१ शङ्कर पाण्डुरङ्ग ने अपने सस्करण में इन श्लोकों को नहीं दिया । अब ये प्रसिद्ध माने जाते हैं ।

दूसरा भाग ।

पाठावली

पाठ १

[शौरसेनी]

भीदर्पकृत ' रत्नावली ' नाटक के द्वितीय अङ्क का प्रवेशक । नायिका की दो सखियों सुसगता और निपुणिका का सङ्घाप ।

(ततः प्रविशति सारिकापञ्जरपद्महस्ता सुसगता ।)

सुसगता—हृदी हृदी ! अध कर्हि दारिणं मम हृत्पे इमं सारिअ
णिक्खिअणिअं गदा मे पिअसही साअरिअा भयिस्सदि ?
(अन्यतो वृष्टा) एसा खु णिउणिअा, इदो ज्जेव्ये आअच्छदि ।

१ हृदी=हा धिक् । अध § १४ । कर्हि ० भी एक० का रूप=कस्मिन् । "कही" और "किभर" का अर्थ भी देता है । दारिणं § ७४ ।

२ निक्खिअणिअं=निष्पिप्य । इस से पहिले अङ्क में निक दे कि सारिका ने मैना सुसगता के हाथ सङ्घ दी थी । गदा § १२२ । पिअसही § ५, ४५, १३ ।

३ इदो मेव § ६८ (२)

(सत प्रविशति निपुणिका)

निपुणिका—उवलंदो खु मय भट्टिणो वुत्तन्तो, ता जाय गदुअ
भट्टिणीय णियेदेमि । (इति परिक्रामति)

सुस०—इला णिउणिय । कहिं दाणिं विम्हआकिपत्तहिअआ
विअ इधदठिद म अचघोरिअ इदो अदिकमसि ?

निपु०—कथ सुसगदा ? इला सुसगदे । सुट्ठु तय जाणिद ।
पद खु मय विम्हअस्स कारण । अज्ज किल भट्टिणा सिरि
पवदादो आअदस्स सिरिपण्डदासनामधेअस्स धम्मिअस्स
सआसादो अआल-कुसुम-सजणण-दोइल सिफिअ, असणो^१ परि-
गहिद योमालिअ कुसुम-समिद्धिं सोद्धिद करिस्सदि ति पद वुत्तन्तं
देवीय णियेदिदु पेसिद मिह । तुम उणं कहिं पदठिदा ?

सुस०—पिअसहिं साअटिअ अण्येसिदु^२ ।

१ उवलंदो § १०, १२५ । मय § १०६ । भट्टिणो § ३६ । ता=वैदिक
तात् "इस क्षिये" । जाय § १, २६ । गदुअ=गत्वा § १२२ ।

२ विम्हअ § ४७ । आलित (आ+विप्) § १०५ । हिअअ § ६, ६०
विअ=इव (व्=क्रम इव) । ठिद (स्था) § १२५ । अदिकमसि (अति=क्रम) ।

३ सुठ § ३८ । जाणिद § १२५ (ज्ञा) ।

४ पद § १२ ।

५ अज्ज § १४ । सिरि § ६८ । पवदादो=पर्वतात् § ५०, § ८६ ।
आअद § २ । धम्मिअ=धार्मिक, यहां अर्थ है ' जादूगर, इन्द्रजातिया ।'
सआसादो=सकाशात् । अआल=अकाल ।

६ असणो § १०० । गहिद [ग्रह] § १२५ । योमालिअ § ७५ ।

७ समिद्धि=समृद्धि । ति § ७४ । पेसिदमिह § ६८ [१] ।

८ उण ' परन्तु ' § ३, " लेकिन ?' अर्थ में प्रयो । पदठिदा [प्र+स्था] ।

९ अण्येसिदु, अनुबन्त [अनु+इप्] ।

सचरुद्विद इम जण परिचरुद्विद रणमेच-दसण परिचिद' जण अणु
गच्छतो ए सज्जसि' अधया को तुह दोसो ? अणुग-रार पट्ठे-
मीदेण तप पच्च अज्झसिद । भोदु ! अणुग दाप उयालहिस्सं'
[सासम्] भअय पुसुमाडद । लिज्जिद सुरासुरो' भविअ
इत्थीजण पहरतो ए सज्जसि ! सचरुधा मम मन्दमाइणीय इमिणा
दुयिणमित्तेण' अयस्स मरण उचट्ठिद । [पज्जकमयसोवण] ता जाय ए
को पि इध आअच्छदि ताप आतोफन-नमर्पिद त अदिमद जण
पेक्खिअर्धे जधासमीहिद करिस्स [सावग्गममेकमा भूया माअेन पत्तक
गृहीया निवास] जइ पि अदिसग्गमेण' येयदि अअ अदिमेत्त मे
अग्गाहरो, तथा पि तस्स जणस्स अणो दम्मयोयामो' एरिण ति
जधा तथा आलिहिअ पेक्खिस्स । [तत्त भविशति सुसंगता]

सुस०—एद सु वअलोहर ता जाय पयिसामि [मरिषपापसोव
व सविस्मयम् ।] किं उण पसा गय आणुराआपित्त हिअओ आलिहन्ती
ए म पेक्खदि । ता जाय दिट्ठिवध से' परिहरिअ विरुपइस्स ।

१ दसण । § ४३ ६४ ।

२ पट्ठे § २० [देखो हि० पट्ठे] । अज्झसिद § ४४ [अवि +
अव + / भो] भोदु § ७२ ।

३ उयालहिस्स=उपासयये ।

४ पिज्जिद=निर्जित । भविअ § १२२ । इत्थी=एही, यह शब्द प्राचीन रूप
इत्थी की सूचना देता है । पहरन्तो=प्रहरन् ।

५ दुयिणमित्त=दुर्निमित्त । उचट्ठिद=उपरिपत ।

६ आलोक्कसमपिद=आलोक्कसमपिद ।

७ पेक्खिअ § १२१ ।

८ सज्जस=साजस ।

९ उपास=उपाय § १७ । एरिष=नास्ति § ८३ ।

१० गरुअ=गुरु [क] ' मारी ' § ७१ ।

११ दिट्ठिवध=दृष्टेयम् । से=तस्या § १०६ ।

कथं ? भट्टा आलिहिदो ! साहु साथरिण साहु ! अथ वा ए
कमलाश्वर यजिअ रात्रदसी अणस्सि अदिरमदि ।

साग०—(साम्प्रतम्) आलिहिदो मय एसो । किं उण शिव-
इन्त वाह-सलिलो मे दिठ्ठी पेप्पिअहु ए पमधदि ।

कथं सुसगदा ? सहि सुसगदे, इदो उवविसं ।

सुस०—(उपसृत्य फलक गृहीत्या दृष्ट्वा च) सहि, को एसो
तय आलिहिदो ?

साग० (सलज्जम्)—सहि, ए पउत्त महुसँवो भअव अणुगो ।

सुस०—(सस्मितम्) अहो दे शिउणत्तण ! किं उण सुएण विअ
चित्त पडिभादि ! ता अह पि आलिहिअ रदि-सणाध करिस्स ।

साग०—(विलोक्य सप्रोधम्) कसँ तय अह एत्थ आलिहिदा ?

सुस०—(विहस्य)—सहि, किं अअरेण कुप्पसि ? जादिसो तय कामदेवो
आलिहिदो, तादिमी मय रदी आलिहिदा ता अणधा सभाविणि किं
तुह पदिणा आलपिदेण ? कधेहि सव्व सुत्तन्त ।

साग०—(भव्नीह स्थगतम्) ए जाणिदमिहि पिअसहीण । पिअसहि,

§ १०१ । परिहरिअ क्वात्त (परि+हृ) । शिरूवइस्स निरूपण करुणी § १० ।

१—कमलाश्वर 'कमलों का डेर', कमलों की वावड़ी । यजिअ यजदि
(यज्) का क्वात्त रूप, 'छोड़कर' ।

२—शिवइन्त § १० ।—वाह—(वाण्य) § ३८ के विरुद्ध । "भौसू"
के लिये प्रत्ययत बण्फ *याफ—वाह (§ § ६, १३) हो जाता है । "भाप"
इत्यादि के अर्थ में वह बण्फ रहता है (सुसना करो—हिन्दी याफ, भाप)
(पिशल § ३०१) ।

३—उवविस (उप+विश्) ।

४—पउत्त § १२१ (प्र+वृत्) ।

५—कीस "क्यों ?" । एत्थ "यहाँ" § ७० ।

६—कुप्पसि 'तु श्लेध करती है' ।

७—पदिणा=पदेय । आलविद (आ+लप्) । सव्व § ४१ (हिन्दी सब) ।

८—य=नून ।

मददी तु मे लज्जा । ता तथा करेत्तु जघा य पद युत्तन्त अयरो
को वि जाणिस्मदि ।

सुस०—सदि, मा लज्ज, मा लज्ज ।

अनुवाद

सागरिका—दृश्य, शान्त हो जा, शान्त हो जा । इस दुर्लभ जन की प्राप्ति के लिए आशा बनाये रखने में क्या फायदा है ? इसका परिणाम केवल क्रोध है । एक और बात—यह कैसी मूर्खता है कि यद्यपि उसके दर्शनमात्र से ऐसा सन्ताप होता है तथापि तू उसको फिर देखना चाहता है । निष्ठुर, ये निष्ठुर हृदय ! क्या तुझे लज्जा नहीं आती कि तू इस जन को छोड़कर जो जन्म से ही तेरे साथ बढ़कर बड़ा हुआ है, एक ऐसे व्यक्ति के पीछे जा रहा है जिसको तू केवल एक क्षणिक भूलक में देखा है ? नहीं इसमें तेरा क्या दोष है ? तूने कामदेव के पापों के गिरने से भयभीत होकर ऐसा निश्चय किया । अस्तु मैं काम को डाहूंगी । (आँसु पहाती हुई) भगवन् कुसुमायुध ! सुर और असुरों को हराने के बाद क्या तुम्हें स्त्रियों पर प्रहार करने में लज्जा नहीं आती ? इस दुर्निमित्त से मुझ सर्वथा मन्दभागिनी का मरण अवश्य निकट है । (चित्रफतक को देखती है) इसलिए जब तक कोई दूसरा नहीं आता तब तक इस अभिमत जन को चित्र में बना कर मैं अपने अभिलाष को पूरा करूंगी । (चित्र फलक को बड़े ध्यान से देखकर आह भरती हुई) यद्यपि सत्ताम के कारण मेरी उगली अत्यन्त काप रही है तथापि उसे देखने का और कोई उपाय नहीं है । इसलिए यथा कथञ्चित् चित्र बनाकर उसे देखूंगी । (सुसगता आती है) ।

सुसगता—निश्चय यह कदली गूदा है । इसलिए मैं पहिले अंदर जाऊँगी । (अंदर जाती है और विस्मय से देखती है)

यह क्या, इसका हृदय उत्कट अनुराग से इतना तन्मय हो रहा है कि चित्र बनाती हुई यह मुझे नहीं देखती । तो पहिले आँख बचाकर वास्तविकता का पता लगाऊँगी। (चुपके चुपके उसके पीछे जाती है और उसके कन्धे के ऊपर से देखती है, प्रसन्न होकर) यह क्या, महाराज का चित्र बनाया गया है ? साबाश, सागरिका साबाश ! अथवा कमलाकर को छोड़कर राजहसनी दूसरे के साथ रमण नहीं करती ।

सागरिका—(आँखों में आँसू मरे हुए) मैंने इसका चित्र बना लिया है । किन्तु मेरी दृष्टि गिरते हुए आँसुओं में डूबकर इसे देख नहीं सकती । कैसे, सुसगता ? सखी सुसगता, इधर बैठ ।

सुसगता—(निकट आकर और चित्र फलक को देखकर) सखी ! यह तुमने किसका चित्र बनाया है ?

सागरिका—सखी ! भगवान् अनङ्ग का, जिनका महोत्सव मनाया जा रहा है ।

सुसगता—(मुसकराती हुई) अहो ! यल्लिहारी है तेरी निपुणता की ! किन्तु चित्र सूना जैसा लगता है इसलिए मैं भी इस के पार्श्व में रति का चित्र बनाये देनी हूँ । (कूची को लेकर चित्र बनाती है) ।

सागरिका—(चित्र को पहिचान कर, रोप से) क्यों, तूने इस पर मेरा चित्र बनाया है ?

सुस०—सखी, अकारण क्रोध क्यों करती है ? जैसा तूने कामदेव बनाया है वैसे ही मैंने रति बना दी है । अतएव ये पाश्चाटिनी ! तेरे इस प्रलाप का क्या प्रयोजन ? सारा वृत्तान्त कह सुना ।

सा०—(सङ्कुचती हुई, आप ही आप) अच्छा, तो प्यारी सखी ने मेरे दिल की बात जान ली । (प्रगट) प्यारी सखी, मैं

बहुत लज्जित हूँ । इसलिये ऐसा कर जिससे इस रात को कोई दूसरा न जाय ।

सुस्त०—सखी न लजा, न लजा ।

उद्धरण नं० ३

शारसेनी ।

यह उद्धरण पिशल के द्वारा सम्पादित (१८७७) बंगाल संस्करण से लिया गया है, पृष्ठ २६ (अङ्क २, आरम्भ) । साधारण वेद नागरी संस्करणों के साथ इसकी तुलना करने से मालूम होगा कि मूल पुस्तक में अ धातुन्ध देरफेर किया गया होगा । यहाँ राजा अपने हाथ में धनुष धारण किये हुए है और वनपुष्पों को माला पहिने हुए है, दूसरे विवरण में यह वनपुष्पों से (जगनीहिं) परिधारित है जो धनुष धारे ओर फूल पहिने हुई हैं । यहाँ राजा अपनी प्रेमिका के चिन्तन में जाग कर रात बिताता है यहाँ राजा नहीं किन्तु विदूषक है जो सो नहीं सकता, यद्यपि वह निद्रा की गोद में विश्राम लेने की चेष्टा में व्यग्र है ।

शकुन्तला के दूसरे अङ्क में विदूषक मृगयाशील राजा के वयस्यमाय के कारण होनेवाले अपने दुष्टों का वर्णन करता है ।

ही माणहे^१, हवो मिह, पदस्स मिअअ्हा सीलस्स^२ रणो यअ स्मभायेण निठियो । 'अअ मओ', अअ धराहो'त्ति मज्झन्दिणे

१—ही माणहे, खेद सूचक शब्द जो साहित्यकारों के मतानुसार विदूषक के मुँह से निकलता है । पाठांतर—ही ही ओ, यह विस्मय सूचक है ।

२—मिअअ=मृगया 'शिकार' । रणो § ६६ । चित्तिवरण=निर्विषय । (निर + विद्) ।

३—मओ="मृग" । मज्झन्दिणे, तुलना करो § ६६ । तिहो=प्रीति § ४७ । पादव="पेद" § १७ ।

वि गिम्हे विरल पादव च्छात्रासु चण राईसुं आदिहिरुअ, पत्त-सकर
कसाअ विरसाई उएद कडआइ पिजन्ति गिरिणई सलिलाइ ।
अणिअद वेल च उएहुएद मस भुञ्जीआदि । तुरअ मआण च सदेण
रत्तिं पि णत्थि पकाम सुइदव्व ।

महन्ते जेव पच्चूसे दासीय पुत्तेहिं साउणिअ तुद्धेहिं कएणो
घयादिणो घणगमणं कौताहलेण पयो गीआमिं । एत्तिकेणाविं
दाय पीडा य पुत्ता जदो गएडस्स उवरि विफ्फोडओ सयुत्ते । जेणं

१—वणराईसु=‘जगती पगडिहियों में’ । आदिहिरुअ ‘भटकते हुये’
हिपद् ‘भटकना’ धातु प्राकृतिक शायद भनार्य धातु है, तुलना करो, आदिहिरुअ
‘पथिक’ (गृह्यकरिक) ।

२—पत्त=‘पता’ § ४२ । सकर ‘मिधन्य’ । उएद=उप्य § ४७ । कडुअ
कडुक । पिजन्ति=पिये जाते हैं (कर्मवाच्य) ।

३—अणिअद=अनियत (√ यन्) । भुञ्जीअदि= खाया जाता है (कर्मवाच्य) ।

४—रत्तिं पि, कालापथि-सूचक कर्मकारक ‘रात भर’ पाठान्तर रत्तिमि वि
‘रात को भी’ । सुइदव्व=आ० सुविदव्व, सुवदि (सोता है) क्रिया से ।

५—पच्चूसे= सुवइं तुलना करो § ४४ । साउणिअ=(शाब्दिक)—
सुव=(शुग्ध, अधिक प्रचलित रूप तुब्धक), ‘चिदीमार’, ‘शिकारी’ ।

६—कानो को फाड़ने वाला, कएण=कर्म, तुलना करो प० कज हिं० कान ।
घणगमण (चिदीमारों का) ‘तपस्वियों का नहीं’, पाठांतर घणगहण
“जगल को घेरना और जीवों को बाहर न निकलने देना”, यह पाठ अच्छा
अर्थ देता है ।

७—पबोधीआमि=(कर्मवाच्य) ‘जगाया जाता हूँ’ ।

८—शौ० धुत्तिक धुत्तिअ=एतावत् । पुत्ता=(वृत्त) “समाप्त हुआ” ।
विफ्फोडओ=विस्फोट (क), “फोड़ा” ।

९—पाठान्तर हिओ=ह्यस्, फल § २८ । अण्हेसु, अप्तमी बहु०
§ १०६, अनुस्वार वैकल्पिक है ।

१०—दासीपुत्र गात्री है, जैसे हिं० हराम जादा प० कजर दा पुत्र ।

११—पाठ, गहण ।

किरा अग्नेस्तु अयदीणैस्तु तत्थमयदा मय्यासुसारिणा अस्समपद
 पविट्ठेणं मम अधरणदाप सउन्तला णाम पावि तावत्तण्ण दिट्ठा ।
 त पेक्खिअ सम्पद राअर गमणस्स कन्धे पि ण करेदि । एद ज्जज
 चिन्तअ तस्स मम पद्दादा अच्चीसु रअणी । ता का गदी ? जाय
 ॥ किदाआरपरिकम्मं पिअयअस्स पेक्खामि । (परिक्कम्यायलो
 क्य च) एतेो धाणासण दत्थो दिअ णिदिद पिअ अणो धण पुक्क
 मालाधारी इदो ज्जेय आअच्छदि पिअयअस्सो । भोदु अह्म मइ पिअ
 रो^१ भविअ पिट्ठस्सं, एव पि णाम विस्साम लहेअ । (एददवाष्ठ
 मयलम्भ स्थित) ।

अनुवाद

ऊ ! मैं इस मृगयाशील राजा के धयस्य माय से तग आ गया
 हूँ । ' यह मृग है, यह सुअर है ' इस प्रकार प्रीप्स के
 मध्याह्न समय भी ऐसे या मार्गों में भटक कर जहाँ प्राय कोई
 छाया घुल नहीं है, पत्तों के मेल से कैसेले गिरि नदियों का नीरस

१—पविट्ठ=(प्र+विष्) । अधरणदा='अधन्यता' § ४३ । इद पाठ
 सउन्तला है, न कि सउदला ।

२—कथ=कहानी § १३ (कथाम्) ।

३—पद्दादा=प्रमाता (प्र+मा) । 'प्रमात हो गई' । अच्चीसु, सप्तमी
 षष्ठु, § ३६ ।

४—विद § १२५, आआर=(आचार), परिकम्मो=निन्दकर्म ।

५—मइ=मृद 'मदन, मुरकना' पाठांतर मइ । विअजो=(विक्रजो) ।
 लह्मवा ।

६—विस्साम=विधाम । लहेअ, विधिबिह उ० पु० एकव
 § ११७ (२) लम् ।

कहुवा जल पीना पड़ता है । अनियत समय जला भुना मास खाना पड़ता है । हाथी घोड़ों के कोलाहल से रात को भी मन भर कर सोना नहीं मिलता । सुबह बड़े तड़के दासीपुत्र चिट्ठीमार मुझे जंगल को घेरने के कर्ण भेदी कोलाहल से जगा डालते हैं । और यह सब कुछ होते हुए भी मेरे क्लेशों का अन्त नहीं हो पाता, क्योंकि फोड़े के ऊपर यह एक और फुन्सी निकल आई है । क्योंकि (कल) हमें पीछे छोड़ जाने के बाद महाराज हिरन का पीछा करते करते एक आश्रम में जा निकले और मेरे दुर्भाग्य से उनकी दृष्टि शकुन्तला नाम की तापस कन्या पर पड़ी । जब से उन्होंने उसको देखा है वे नगर को लोटने का नाम तक नहीं लेते । मैं इसी विचार में पड़ा हुआ था कि मेरी आँखों में ही रात कट गई । तो अब क्या हो सकता है ? चलकर अपने सखा के दर्शन करता हूँ जो जानादि नित्य कर्म से निवृत्त हो चुके हैं । (धूमकर ऊपर को देखता है) वे हाथ में धनुष लिये हृदय में प्रियजन को रक्षे और गले में जगली फूलों का हार पहिने वे आ रहे हैं । अच्छी बात, अङ्ग अङ्ग के टूटने की विकलता दिखलाकर पड़ा हो जाता हूँ । इस तरह शायद विश्राम मिल जाय । (लाठी पर झुककर सड़ा होता है)

उद्धरण ४

शौरसेनी

राजा के सामने शकुन्तला, जिसे वह भूल गया है ।

अङ्क ५^१ (स्वगतम्) इम अवस्थेतर गदे तादिसे अणुराए

१—पिण्ड का संस्कारण, पृ० १०४ । गुजना करो मोनियर् विलियमस्
पृ० २०३ ।

२—अपत्यान्तरम्, यद्वली हुई दशा ।

किं वा सुमरादिदेष्टे । अथ वा अत्रा दार्णि मे सोधणीओ । भोदु,
ववसिस्स । (अत्राशम्) अजउत्त — (अज्जोत्ते) अथ वा सम
ईदो दार्णि पमो समुदाचारो । पोत्थ ' जुत्त याम तुद पुत्त अस्स
मपदे सम्भायु चाण हिथैअ इम जण तथा समअ पुब्ब सम्भाविअ
सपद ईदिसेहि अफपरहि पयाचिपिउदु ।

राजा हैरानी और रोष की द्वाारा में ।

शत्रुन्तला आगे कहती है—

भोदु । परमाथेदो जह पर-परिगह-सद्धिणा तप एद पउत्त
ता अहियणाणे^१ पेण वि तुद सदेह अवणइस्स ।

१—सुमरेदि धातु का क्तिन्त प्राप्ति रूप ।

२—सोधणीओ-सुध्+णिच्+आणि । पाठान्तर सोधणीओ=सोधनीव ।

३—ववसिस्स वि+अव+सो का लृट् रूप, ' मैं निश्चय करूँगी । टीका में
'रहस्य की बात कहना ' दिया गया है । अजउत्त § २ ।

४—सरायित सरावाअक" (सम+शी) शब्द ' कोशित करूँगी । "

५—समुदाचारो ' उचित सभाधन " अथवा अजउत्त " शब्द । पाठकों में
श्री अपने पति को इसी शब्द से संबोधन करता है । यह शब्द और सम्बन्ध में
भी व्यवहृत होता है ।

६—जुत्त याम ' यह तो ठीक ही है " § ३४ । पाठान्तर-य जुत्त याम ।

७—' स्वभाव से शुद्ध और सरल हृदय वाली '

८—समयपूर्वम् समय=काल । सम्भाविअ का पाठान्तर पतारिअ " धोला
देकर " । अफपर=अपर ।

९—प्रति+था+अच् प्रत्याएवान करना ।

१०—शौरसेनी सक्का के बीच जो संस्कृत भाष्य थे वे छोड़ दिये गये हैं ।

११—परमाथत ' वास्तव में ' । ' जह शौरसेनी में यदि भी होता है § १ ।

परिगह ' परिग्रह '=पत्नी । पउत्त=प्रयुक्तम् § १२२ (युज्) ।

१२—गिरानी । शौरसेनी में इस नाटक का नाम अहियणाण-सठन्तल होगा ।

१३—पिशल का पाठ तत्त । सन् १९०० में उन्हें भी ' तुद ' पाठ प्राप्त
होता । तुलना करो आमर § ४२१ ।

[राजा 'प्रथम समय' के सम्बन्ध में व्यावहारिक शब्द कहता है] ।

हज्जी ! हज्जी ! अगुलीअअ-सुरणा में अगुली । (सविपादं गौतमीमुखमीक्षते) ।

गौतमी—जाई ए दे सकावदारे सचीतिरैये उदअ वन्दमाणप पम्भट्ट अगुलीअअ ।

[राजा स्त्रियों की चतुराई पर मुसकराता है] ।

शकु०—एतथे दाव विहिणा दसिद पडुसैण, अवरे दे कघइस्स ।

[राजा अब भी सुनने के लिए इच्छुक है]

ए पफदिअम वेदस-लदा-मएइवए एलिणी-घस-भाअणुगैद उवअ तुह हत्थे सणिहिद आसी ।

[राजा अब भी सुनता है] ।

तपणसो सो मम पुत्त-किदओ मअ-सावओ उवत्थिदो । तदो तप अअ दाव पढेम पिबहु त्ति अणुकम्पिणा उवच्छन्दिदो । ए उण दे अवरिचिदस्से हत्थादो उदअ अवगदो पाहु । पच्छा तहिस

१—“ अगुली से सूनी । ”

२—जाद “ पुत्र ” ।

३—शाकावनारे शचीतीर्थे । पम्भट्ट=तिरगयी (प्र+अश्) ।

४—एतथे ‘ यहाँ ’ § ७० ।

५—=, प्रमुक्कम्), तथा, इसकी उत्पत्ति-स्वयं से है ।

६—कघइस्स § १३४ ।

७—कमल के पत्तों के “ देने में ” ।

८—आसी § १३३ ।

९—=तपणसम् । पुत्तकिदओ “ गोद लिया हुआ बच्चा ” । इस संसार में पदम्यत्वय है । मअसावओ=मृगशावक “ हरिया का बच्चा ” ।

१०—पठम § १० । उवच्छन्दिदो (उप+छन्द) “ प्रवृत्त कर बुझाया गया ” ।

११—अवरिचिद=अपरिचिन (अ+परि+चि) ।

उद्धरण नं० ५

शौरसेनी

कर्पूरमञ्जरी अङ्क ४

खरिप्र-नायिका कर्पूरमञ्जरी रानी के महल के एक कमरे में बद्ध की गई है । किन्तु इस कमरे से महल के उद्यान तक एक सुरङ्ग है । रानी ने इस सुरङ्ग के उद्यान वाले द्वार को बन्द करवा दिया है ।

सारङ्गिका राजा के पास प्रवेश करती है और विदूषक रानी से सन्देश लेकर उसके पास आता है ।

सारङ्गिका—(पुरतोऽद्यलोक्य) एसो महारावो मरगद-पुञ्जादो कञ्जली-घर अणुप्पविट्ठो । ता गदुअ देयीए विण्णधीर्द्धं शिवेदेमि । (उपागच्छति) जञ्जदु जञ्जदु मट्ठा । देवी विण्णवेदि जञ्जा साम्भस-मये तुम्हे मए परिणायिद्वर्णं ति ।

विदूषक—भोदि किं पद अकण्ठ-कुम्भण्ड-पट्ठेण ?

राजा—सारङ्गिय सव्व वित्थरेण कधेसु ।

सारङ्गिका—एद विण्णधीर्द्धं । अणन्तरादिक्कत-वदुहसी दिवसे देयीए पौम्म-राअ-मई गोरी भेरयान-देण कदुअ पडिहा

१-मरगद § १२ । “ मरकतपुञ्ज ” शब्दवत् किसी आसन या कुञ्ज का नाम है, जहाँ से राजा कर्पूरमञ्जरी को हिंडोले पर झूलती देखा करता था । अणुप्पविट्ठो (अनु+प्र+विष्टृ) ।

२-विजन्त वत्तान्त (वि+ज्ञा) ।

३-साम्भसमये “ साम्भ समय ” ।

४-विजन्त-विधि-कृदन्त (परि+नी) ।

५-अकण्ठ (अकारण्ड) ‘अनपेक्षित’ कुम्भण्ड ‘सपेद मुखी’ § ६२ । जैनमैन इसका अनुवाद करते हैं—“ विमल आकाश से तरपुजों की धौद्वार ।”

६-‘विजन्त कर्मकाय’ ।

७-‘धौदहवें दिन जो अमी बीता है’ । पौम्म § ३६ ‘छाजों का मना हुआ’ ।

सारगिका—द्वेषीय फारिद् पमदुञ्जाणस्मं मज्झ दिट्ठद-पट-सद
मूले चामुण्डा अदण । भेरवाणदो वि द्वेषीय सम तदिं भाग
मिस्सदि । तग्गेवे अ तक्कण विट्ठिदे कोदुञ्ज घरे विद्यादो भवि
स्सदि (परिग्रम्य निष्पान्ता) ।

राजा—पमस्स ! सज्ज पद भेरवाणन्दस्स विध्वभिद् तित्ठेमि ।

विदूषक—पप ऐद' । ए इ मज्झ-सज्जण अन्तेरेण अण्णो
मिअद्द मणि पुत्तल्लिअ पम्भरावेदि सेद्दालिआणुसुमुद्धर या करोदि ।

(तत प्रविशति पेन्द्रजातिको भेरवानन्द) ।

भेरवानन्द—इअ सा पटतरुमूले विभिण्णरस्स सुरगा दुया
स्स पिघाय चामुण्डा । (तामाराधयितुं हस्तौ प्रसारयति मद्दा
राष्ट्रीमाधित्य श्लोकमेकञ्च पठति) । “अयतु काली” इत्यादि
(प्रविश्य उपविशति) अअ वि ए निग्गच्छदि सुरगा दुम्भारेण
कप्पूरमञ्जरी ।

(सुरगामुखे द्विद्व विघाय कप्पूरमञ्जरी प्रविशति) ।

कप्पूरमञ्जरी—भअय पणमोमि !

१—‘प्रमदोचान’ (प्र+मद्), मज्झ ५ ४४, -टि ५ ५ १८, १९५ ।

२—‘आमदय’ ‘भर्मस्थान’ (आयतन), उदि ५ १२ ।

३—‘तग्गेवे’=सरलत तद् गते, कोदुञ्ज=कोदुञ्ज ।

४—‘विध्वभिद्’ प्रपञ्च, पदमन्त्र (वि+जृम्) । तत्थेमि ५ ४२ ।

५—‘दु+इद’ ।

६—‘चदमा’ (मृग-आण्डवृण) ।

७—‘मिअद्दमणि’ ‘चदकातमणि’, पुत्तल्लिआ ‘पुतल्ली’, पम्भरावेदि
‘पुवाता है’ विजन्त (प्र+वर) ५ ४० । सेद्दालिआ (=शेषालिआ)
उद्धर ‘हर’ ।

८—‘विभिण्ण’ (निर्+भिद्), दुम्भार ‘दरवाजा’ ५ ४० ।

९—(प्र+नम्) ।

भैरव—उरुंद घर लहसु । इध जेव्व उवविस ।

(कर्पूरमञ्जरी उपविशति)

भैरव—(स्वागतम्) अज्ज वि ण यदि देवी ।

(ततः प्रविशति राक्षी)

रानी—(परिक्रम्य पुरतोऽवलोक्य) इअ भअधवी चामुएडा (परिणमति) (ततः परितोऽवलोकयन्ती) इअ कप्पूरमञ्जरी । ता किं ऐद ? (भैरवानन्द प्रति) इद विण्णवीअदि, णिअ-भधये विवाह-सामग्गि कहुअ आअदग्गि । ता गेएिहअ आगमिस्स ।

भैरव—घच्छे एवं करीअहु ।

(राक्षी निष्क्रमण नाटयन्तीथ परिक्रामति) ।

भैरव—(विहस्य स्वगतम्) इअ कप्पूरमञ्जरी ठाण अएणे सिदु गदा ।

(प्रकाशम्) पुत्ति कप्पूरमञ्जरी सुरङ्गा-दुआरेण जेव तुरिद-पेद गहुअ सदढाणे चिट्ठ । देवीए आगमये पुणो आगन्तव्य ।

(तथा करोति)

रानी—इद रक्खा-घर । (प्रविश्य परितोऽवलोक्य)

(स्वगतम्) अय, इअ कप्पूरमञ्जरी ! सा का वि सारिक्खी

१—उचितम् । लहसु § ११६, नोट २ (लम्), उवविस (उप+विश्) ।

२—विण्णवीअदि विजग्ग कर्मवाच्य (वि+शा) । णिअ-भधये ' स्वय मेरे घर में ' ।

३—गेएिहअ गेयहिदि (गृह्) का क्तवान्त रूप, वच्चा ' लहकी ' (= वत्सा) ।

४—' हूँटना '

५—' तेज पाल से ' § ७२ । गहुअ § १२२ । सदढाणे स्वय तुम्हारे कमरे में, तुलना करो § २० ।

६—रक्षा-गृहम् ।

७—सारिक्खी ' सखी ' § ११, १० ।

विद्धा । (प्रकाशम्) घञ्छे कर्पूरमञ्जरी कीर्दिस दे सरीर ?

(आकाशमापितम्) किं भण्णासि मह सिरो वेअण्णा समुप्पण
सि । (स्वगतम्) ता पुणो तद्धि गमिस्स । (प्रविश्य समन्तादय
लोफ्य) इत्ता सद्धिओ विवाहोवअरणाइ राहु गेहिद्वअ आअच्छध
(परिक्रामति) ।

(कर्पूरमञ्जरी प्रविश्य यथापूर्वमुपविशति) ।

रानी—(पुरतोऽप्यलोफ्य) इअ कर्पूरमञ्जरी ।

भैरव—घञ्छे विम्ममेलेहे आणीदाइ विवाहोवअरणाइ ?

रानी—अघ इ । किं उण घणसारमञ्जरी-समुद्दाइ आइरणाइ
विमुमरिदाइ । ता पुणो गमिस्स ।

भैरव—एव मोदु ।

[राणी निष्क्राम्य नाटयन्ती]

भैरव—पुत्ति कर्पूरमञ्जरि त जेव करीअहु ।

[निष्क्रान्ता कर्पूरमञ्जरी]

रानी—(कारागारप्रवेश नाटयन्ती कर्पूरमञ्जरीमवलोक्य) अय ।
सारिक्खदाये विणदिदं मिह । (स्वगतम्) भाणधिमाणेण खिण्णिय
परिसप्पिणा त आणेदि जोईसरो । (प्रकाशम्) सद्धिओ ज ज वि
येविद त गेहिद्वअ आअच्छध । (चामुण्डामन्दिर प्रति निवर्तन
नाटयन्ती कर्पूरमञ्जरीमवलोक्य) अहो सारिक्खदा !

१-कीर्दिस § ७० ।

२-सिरो वेअण्णा ' सिर दर्द ', शिरो वेदना ।

३-उवधरण=उपकरण § १७ । खहु ' तेजी से ' (=अधु) ।

४-(आ+जी) ।

५-आइरण ' आमरण ', विमुमरिद ' विस्मृत ', तुलना करो सुमरदि
§ २७ ।

६-छोद, कर्मवाच्य ।

७-विण्णिविवा " विकल

भैरव—देवि उषयिस, महाराजो वि आश्रयो जेव घटदि ।

अनुवाद

सारंगिका—(सामने देवकर)ये महाराज तो मरकत के पुत्र में बदली गृह के अन्दर धंटे हैं । सो जाकर राजा को पिशापनीय (यात) निवेदन करती हूँ । (निकट जाकर) महाराज की जय हो ! महारानी कहती हैं कि हम सासु को तुम्हारा विवाह करेंगे ।

प्रियूष—अरी यह आकस्मिक श्रेयत वद्दुर्घों का गिरना क्या ?

राजा—सारंगिका, सारी यात विस्तार से कहो ।

सारंगिका—यह पिशापनीय निवेदन करती हूँ । गत चतुर्दशी के दिन देवी ने भैरवानन्द द्वारा पञ्चराग मणि की गौरी धनवा कर प्रतिष्ठापित की थी और यह योगीश्वर दीक्षा विधि में तत्पर महा रानी द्वारा शुद्धक्षिणा के लिए प्रस्थापित किया गया था । इस पर उसने कहा—'यदि अवश्य क्षिणा देनी ही है तो लाइए, दीजिए।' तब महारानी ने कहा—'जो भगवान् आज्ञा करते हैं वही होगा।' उसने फिर कहा—'लाट देश में चन्द्रसेन नाम का एक राजा है । उसकी कन्या घनसारमञ्जरी के विषय में ज्योतिषियों ने बताया है कि यह शक्रवर्ती राजा की गृहिणी होगी । इसलिए उसका महा राज से विवाह होना चाहिये जिससे शुक की क्षिणा भी धी जावे, साथ में महाराज भी शक्रवर्ती धन जायें।' तब महारानी ने इस कर कहा—'जो भगवान् की आज्ञा है वही हो । मैं आपको सूचना

'जादू' § ४४ निधिष्य 'निर्विघ्न' § ३६ । वटदि § ४२ । इस प्रकार की थोड़ा बहुत निधयोक्त "होरा" कियानों में हम सहायक कियानों की उत्तरकाशीत मन्त्र के आरम्भों में पाते हैं । आश्रयो वटदि, तुलना करो आ गया है; दिव्यो भोदि—तुलना करो, दिया है; किदो भोदि—तुलना करो, दिया है ।

देने के लिए भेजी गई हैं । गुरुदासिणा भी दे दी गई है ।

विदूषक—(दस कर) इधर यह सिर पर साप है और पैर कहीं दूर देश में है । इधर आज विवाह, और छोट देश में घन सारमञ्जरी ।

राजा—तुम्हें इस से क्या, भैरवानन्द के प्रभाव से सब कुछ परोक्ष है ।

सारङ्गिका—महारानी ने प्रमदोद्यान के मध्य में स्थित घटगृह के नीचे चामुण्डा का मन्दिर बनवाया है । भैरवानन्द भी महारानी के साथ वहाँ आयेगा । और उसी क्षण कौमुदगृह के पा जाने के पश्चात् उसी के अन्दर विवाह होगा । (जाती है)

राजा—मित्र ! मेरा विचार है कि यह सब भैरवानन्द का ही प्रभाव है ।

विदूषक—ठीक है । चन्द्र को छोड़ कर चन्द्रकान्तमणि की मूर्ति को कौन द्रवित करता है अथवा शेफालिका कुसुम स्तम्भ को बनाता है ।

[भैरवानन्द जादूगर का प्रवेश]

भैर०—इस घट के मूल में सुरङ्ग के दरवाजे पर चामुण्डा की मूर्ति है । (आराधना करने के लिए हाथ फैलाता है और महाराष्ट्री में एक श्लोक पढ़ता है “काली की जय हो” इत्यादि, प्रवेश करके बैठ जाता है) अभी तक सुरङ्ग द्वार से कर्पूरमञ्जरी नहीं निकली ।

[सुरङ्ग के मुख पर छेद करके कर्पूरमञ्जरी प्रवेश करती है]

कर्पू०—भगवन् , प्रणाम करती हूँ ।

भैर०—योग्य घर पाओ । आओ, यहाँ बैठो ।

[कर्पूरमञ्जरी बैठ जाती है]

भैर०—(आप ही आप) अभी तक महारानी नहीं आई !

(रानी का प्रवेश)

रानी—(आगे होकर उसकी तरफ देखती है) अरे, यही मगवती चामुण्डा ! (झुक कर इधर उधर देखती है) और यह कर्पू

रमञ्जरी है। तो यह सब क्या है ? (भैरवानन्द के प्रति) प्रार्थना है कि मैं अपने घर में विवाह सामग्री तय्यार कर आई हूँ सो उसे ले आती हूँ।

भैर०—बेटी, ऐसा ही करो।

[रानी जाने का नाट्य करती हुई घूमती है]

भैर०—(दस कर) यह कर्पूरमञ्जरी का स्थान ढूँढ़ने गई है। (प्रकट) बेटी कर्पूरमञ्जरी सुरङ्ग द्वार से शीघ्र जाकर अपने स्थान पर ठहर। महारानी के आने पर फिर आ जाना।

[कर्पूरमञ्जरी ऐसा ही करती है]

रानी—यह रत्ना गृह है। (प्रवेश करके चारों ओर देख कर आप ही आप) अहो यह कर्पूरमञ्जरी है ! यह बहुत घुरी हालत में दिवाई देती है। (प्रकट) पुत्री कर्पूरमञ्जरी, तेरा शरीर कैसा है ? (आकाश में) क्या कहती है कि बन्नी भारी शिरोवेदना हो रही है। (आप ही आप) तो फिर वहीं खलती हूँ। (प्रवेश कर के चारों ओर देखती है) प्यारी सखियों, विवाह-सामग्री शीघ्र ले आओ। (घूमती है)

[कर्पूरमञ्जरी प्रवेश करके पहिले ही की भाँति बैठ जाती है]।

रानी—(देखकर) यह कर्पूरमञ्जरी है।

भैर०—पुत्री विभ्रमलेखा, क्या विवाह सामग्री ले आई हो ?

रानी—और क्या ? परन्तु धनसारमञ्जरी के योग्य आभरण लाना भूल गई। सो फिर आती हूँ।

भैर०—ऐसा ही हो।

[रानी बाहर निकल जाने के बहाने नृत्य के साथ]।

भैरव—पुत्री कर्पूरमञ्जरी फिर वैसा ही करो।

[कर्पूरमञ्जरी का प्रस्थान]।

रानी—(वन्दीगृह में प्रवेश करने के बहाने कर्पूरमञ्जरी की ओर देखकर) अहो ! मैं सदृशता के कारण भ्रम में पड़ गई हूँ।

(आप ही आप) ।

(प्रकट) साँपियों जो कुछ तुम्हें कहा है यही लेकर आओ ।
(घामुण्डा के मन्दिर में जाने का यद्दाना करके कर्पूरमखरी को देखती है) अहो !

भैर—देवि येतो । महाराज भी आते होंग ।

उद्धरण नं० ६ ।

शौरसेनी]

कर्पूरमखरी अक् २ ।

श्लेषपूर्व शैली का नमूना—विदूषक अपने स्वामी के प्रेम ज्वर का वर्णन करता है ।

एतो पिअथअस्तो दनो गिअ मुणमोणसो, करी पिअ मअ
क्यामो मुणालंक्षणे विअ घणघम्ममिलोणो, विणदिएणंदीपो विअ
विअलिदच्छाओ पमाद-पुणिलमा-अदो विअ पणहर-परि-
कलीणो चिदठदि ।

१—(क) ' शृम्यद्वय ' (ख) ' मानस (कील) को छोड़कर ' ।

२—(क) ' काम से दुर्बल ' (ख) ' काम ' (ख) ' मद से दुर्बल (हापी) ' ।

३—मुण्डा ३ ६० ।

४—(क) ' अत्यधिक काम से पीया ' (ख) ' अत्यधिक धूप से कुम्ह
झापा हुआ ' मिश्राय ३ २० ।

५—' दिन के समय दिया गया प्रदीप ' अनुप्रास को देखो ' दिन के
समय प्रचलित दीपक की भाँति ' ।

६—विअलिद ' विगलित-चली गई ' (वि+गल्) । लामा (क) रग
(ख) प्रकाश ।

अनुवाद

यह शून्यहृदय प्यारे मित्र मानस (मील) को छोड़े हुए हंस के समान, दुर्बल मद रहित हाथी के समान मद क्षाम मुरझाए हुए कमल की डण्डी की नाई अत्यधिक काम-ज्वर से क्षीण, दिन के समय प्रज्वलित दीप की भान्ति शोभा रहित प्रातः काल के पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान कान्ति रहित और उदास होकर बैठे हैं ।

उद्धरण नं० ७

शौरसेनी

मृच्छकटिक अङ्क ६

वसन्त सेना और एक बेटी

बेटी—कध अज्ज पि अज्जआ ण विबुज्झदि । भोदु । परि सिअ पडियोधइस्स । (इति नाट्येन परिष्कामति) ।

(ततः प्रविशति आच्छादितशरीरा प्रमुक्ता वसन्तसेना) ।

बेटी—उत्थेदु उत्थेदु अज्जआ ! पमाद सवुत्त ।

वस०—(प्रतिबुध्य) कध रंत्ति जेव पमाद सवुत्त ?

बेटी—अग्धाण एसो पमादो । अज्जआए उण रंत्ति जेव ।

वस०—ईजे, कहिं उण तुग्धाण जूविअरो ?

१—अज्जआ ' आया ' । विबुज्झदि ' जागती है ' (वि+बुध्) ।

२—उत्थेदु ' उठे ' (उव्+स्था) । पमाद ' प्रमात ' , सुषह ।

३—' कैसे, अभी तो रात है सबेरा कैसे होगया ? ' सवुत्त नपुसकलिङ्ग है । अगले पात्र में पमादो पुलिङ्ग है ।

४—ईजे शब्द से कोई भी महिला अपनी बेटी को सदा सम्बोधित करती है । जूविअरो ' जुआरी ' (पूतकरो) ।

चेटी--अञ्जय, पद्दमाण्य समादिसिञ्ज पुण्णकरणकेञ्ज जिण्य
आण गणे अञ्ज चारुदत्तो ।

यस०--किं समादिमिञ्ज ?

चेटी--जापेदि ण्णीय पवद्दण, वसन्तसेणा गच्छुत्तु ति ।

यस०--दधे । कदि मय गन्तव्य ?

चेटी--अञ्जय, अदि चारुदत्तो ।

यस०--(चेटी परिष्वज्य) सुद्धु ए निग्गमादेदो रत्तीय । ता
अञ्ज पवर्धेण पेक्खिस्स । हञ्जे, किं पविट्ठा अद्द इद्द अन्नमन्तर
चदुस्सालम्भ ?

चेटी--ए वेयल अन्नमन्तर-चदुस्सालम्भ । मन्थजलुस्म पि
दिअअ पविट्ठा ।

यस०--अपि सत्तप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो ।

चेटी--सत्तप्पिस्सदि ।

यस०--कदा ?

चेटी--अदो अञ्जया गमिस्सदि ।

यस०--तदो मय पटम सत्तप्पिद्वय (सातुनयम्) हञ्जे, गेएद्द
एद्द रत्तणीयलि । मम यद्विणिअपि अञ्ज-भूशण गदुअ समप्पेदि ।

१--पुण्ण कु ३८ । कद्वरुअ 'देकरी', जिण्य 'पुराणा' जीय, (जू),
वज्जाय 'वज्जान' ।

२--मोपदि 'लुत्ताणो' (पुद्) का विज्जन्त ओर रूप । एतिप,
जैसाकि उद्दण्त सरकरण में पाया जाता है, असम्भव है । वज्ज
सरकरण में राखीये ।

३--निष्पात ।

४--प्रत्यय । चदुस्सालम्भ 'जिसके चार कमरे हों' ।

५--'सकट में है' ।

६--रम्य 'रम' कु २१ । शौरसेनी में भी रदय है ।

७--यद्विणिअ 'बहिन' । ४ यधिनी=मणिनी, तुलना करो दिदी बहिन

मणिद्वय च ' अहं सिरिचायवत्तस्स गुणणिज्जिहा दासी, तदा तुम्हाणं पि । ता एसा तुह जेव कण्ठाहरणं होदु रअणावली ' ।

चेटी—अज्जए, कुप्पिस्सदि चायवत्तो अज्जाए दाय ।

धम्म०—गच्छ । ॥ कुप्पिस्सदि ।

चेटी—(माला गृहीत्वा) ज आणयेदि । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति) अज्जए, मणादि अज्जा धूदा—' अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदो । ण जुत्तं मम पदं गेहिदु । अज्जउत्तो जेवमम आहरणं-विसेसो सि जाणादु भोदी ' ।

(ततः प्रविशति दारकः गृहीत्वा रदनिका)

रद०—एहि चच्छ, —सअडिआए कीलाम्ह ।

दारका—(सककणम्) रदणिए ! किं मम पदाय मट्ठिआए सअडिआए ? त जेव सोवणं-सअडिआ देहि ।

रद०—(सनिर्वेद निःश्वस्य) जाव, कुदो अम्हाणं सुवणवय-हारो । तावस्स पुणो वि रिदीए सुवणं-सअडिआए कीलिस्ससि । ता जाव विनोदेमि ण । अज्जआ-वसन्तसेणाए समीध उवसप्पिस्सं (उपसृत्य) अज्जए पणमामि ।

पञ्जावी अथ । समप्येहि विजन्तं लोदं लकार (सम्+अ) ।

१—कुप्पिस्सदि ' क्रोध करेगा ' ।

२—' उसे तुम्हें दिया ', अर्थात् माला को ।

३—सअडिआ ' खिलौना गाड़ी ' (शकटिका) । कीलाम्ह ' हम खेलें ' ।

§ ११, § ११६ ।

४—मट्ठिआ मिट्टी' § १२ (मुखना करो हिन्दी मिट्टी, माटी) ।

चारदत्त के लड़के रोहसेन को मागधी बोलनी चाहिए किन्तु यहाँ वल्लभे मुख में साधारण शौरसेनी रक्खी गई है ।

५—रिदि=अदि § १० ।

६—विजन्तं लोदं (वि+जुद) ।

७—(उप+सृप्) H P में सेणाआए पाठ है ।

चेटी--अज्जप, वद्धमाणअ समादिसिअ पुप्फकरएअ जिणए
जाण गदो अज्ज चारुदत्तो ।

वस०--किं समादिसिअ ?

चेटी--जोएहि रत्तीए पवइए, वसन्तसेणा गच्छुत्ति ।

वस०--इजे ! कहिं मए गन्तव्य ?

चेटी--अज्जप, जहिं चारुदत्तो ।

वस०--(चेटीं परिभ्यज्य) सुद्धु ए शिज्जाईदो रत्तीए । ।

अज्ज पचरूप पेक्खिस्स । इज्जे, किं पविद्धा अह इह अम्मन्त
चदुस्सालअ ?

चेटी--ए केवल अम्मन्तर-चदुस्सालअ । सव्वजणस्स ।
हिअअ पविद्धा ।

वस०--अपि सन्तर्पेदि चारुदत्तरस परिअणो ।

चेटी--सतप्पिस्सदि ।

वस०--कदा ?

चेटी--जदो अज्जआ गमिस्सदि ।

वस०--तदो मए पढम सतप्पिद्वय (सानुनयम्) इ-
पद रअणायलि । मम वहिणिआए अज्जा-धूदाए गदुअ १

१--पुष्प § ३८ । करएअ ' टोहरी ', जिणए ' पुराणा ' की
उजाए ' उमान ' ।

२--जोएहि ' लुतनाओ ' (युज्) का शिज्जन्त खोद रूप
जैसाकि उद्धृत सस्करण में पाया जाता है, असम्भव
सस्करण में रादीये ।

३--निष्पात ।

४--प्रत्यय । चदुस्सालअ ' जिसके चार कमरे हों ' ।

५--' सफट में है ' ।

६--रअए ' रअ ' § २१ । शौरसेनी में भी रअए ।

७--वहिणिआ ' वहिन ' । * वधिनी=वहिनी,

धम०—पिदुणो दे गुणणिज्झिदा दासी ।

रद०—जाद, अज्झथा दे जणणी मोदि ।

दारक—रदणिप, अलिअ तुम मणासि । जइ अम्हाण अज्झथा जणणी, ता कीस अलकिदा ?

धम०—जाद, मुदेण मुहेण अदिकरुण मन्तेसि (नाट्येना-
भरणानि अचत्तार्य्य रुदती) एसा दाणि दे जणणी सत्तुत्ता । ता
गेएह पद अराकारअ । सोवणण-सअट्ठिअ घडोवेहि ।

दारक—अवेहि । ए गेएइस्स । रोदसि तुम ।

धम०—(अधूणि प्रमृज्य) जाद, ए रोदिस्स । गच्छ कील ।
(अलङ्कारैर्मृच्छकटिक पूरयित्वा) जाद ! कारेहि सोवणणसअ
ट्ठिअ (इति दारकभाषाय रदनिका निष्क्रान्ता) ।

अनुवाद

चेटी—अरी ! यार जी अभी तक नहीं उठी, अच्छा तो अय
चल के जगाऊँ । (धूम कर)

(सोकर उठी हुई जैसी चादर ओढ़े घसन्तसेना आती है ।)

चेटी—उठिए उठिए, यार जी, सवेरा हो गया ।

घसन्त०—(आँखें पोंलकर) अरी, रात ही को सवेरा होगया ।

चेटी—हमारे लेपे तो सवेरा हो गया, आप चाहे रात ही समझें ।

घसन्त—अच्छा तुम्हारे जुआरी कहाँ गये ?

चेटी—जी, श्रीवास्तव धर्ममानक से कहकर पुष्पकरएह भाग
में चले गये ।

घसन्त—क्या कहकर ?

चेटी—कि रात ही को बहेली जौत छोड़ना ताकि घसन्त-
सेना जा सके ।

घसन्त—अरी ! मुझे कहाँ जाना है ?

चेटी—यार जी, जहाँ चारुदत्त जी हैं ।

१—अलिअ ३ ६० ।

२—घट्ट घटना का शिजत (गुलना करो हिन्दी घटना, घदना) ।

से तुम अत्यंत करुण बानें बदन हो । (गद्देने उतार कर रोती हुई) सो, अब मैं तुम्हारी मौ हो गई । इन्हें ले जाओ, सोने की गाड़ी बनवा लेना ।

पालक—जाओ, मैं तुम्हारे गद्दे नहीं लेता । तुम तो रोती हो ।

यस-त—(आँसू पोंछ कर) न रोऊंगी । जाओ, चलो । (गाड़ी को गद्दों से भरकर) जाओ घेटा, सोने की गाड़ी बनवा लेना ।

(पालक के साथ रदनिका वादर जाती है)

उद्धरण न० ८

शौरसेनी

मृच्छकटिक में विदूषक की बात में लम्बे समासों के दो नमूने (अङ्क ४)—

घेटी—पेचछदु अज्जे । अम्भेकरअ गेहकुआर ।

विदूषक—(अवलोपय सधिरमयम्) अहो सलिरासित्त मग्गिद बिद हरिदोयलेयणहंसं यिधिद सुअग्घि-सुसुमोयहार वित्त लिहिद भूमिभाअहंसं गअण तलाअसोअण कोदुल्ल-दूयणामिदसी-सहंसं दोलाअमाणयलम्येदेरायण हत्थे-अममाइद मग्गिआ दाम गुया लकिदहंसं समुच्चिद दन्ति दन्त तोरणायमासिदहंसं महा-अणो

१—सित ' सींवा गया ' (सिष्), मग्गिद ' सुहरा गया ' (घृन्), हरिद ' हरित ', उबलेवण ' लेप ' (गोबर से) (उप+सिष्) ।

२—सुअग्घि ' सुगन्धित ', उवहार ' उपहार ', अराया, वित्त लिहिद ' यन्त्रार्थ ' विप्र विधित ' । भाअ=भाग ।

३—' गअण=' आकाश, (गगन), तला+अ (वृ) अलोअण, उयणामिद ' उठा हुआ ' (उ+नामित), सीस ' सिर, मिरा ' ।

४—अवअग्घिद ' छटकना हुआ ' ।-अममाइद ' टीका में अमागत दिया गया है । इससे शौरसेनी में अममाअद होना चाहिये । बेहतर यह लगता है कि यह अममा (घृ)इद ' सधुग्घ ' है, इस नाटक में सुखना करी रोदाविद, ' रक्षाया गया ' । मग्गिआ दाम-गुया " अमेजी के हार " ।

५—' हाथी दांत के ऊँचे तारण से देदीप्यमान ' ।

पराधोषसोहिता पवण चलदोलणा ललन्त-चञ्चलगाहृत्त्रयेण ' इदो
पदि ' ति बाहरन्तेण विश्रम सोहृगपडाआ शिवहेणोवरणेदि
दस्सं तोरण धरण स्थम्भ पेदिआ निषिपत्त समुल्लसन्त हरिद-चूद-
पल्लव ललाम फटिह मङ्गल कलसाभिरामोदथ पासस्सं महासुर
वक्कप स्थल दुग्गेज्ज वज्ज शिरन्तर पडिवद्ध-कण्ठ-कवाडस्सं दुग्गद
जणमणोरदाआस फरस्सं वसन्तसेणा भवण दुग्गारस्सं सस्सिरी
अर्वा । ज सच्च मज्झत्थस्सं वि जणस्सं पलादिदिठ आर्थाणेदि ।

१-सोहृग ' मङ्गलमय ' पडाआ ' पताकाओं ' के शिवहेण ' समूह से '
उवसोहिद ' देदीप्यमान बनाया गया ' बाहर-तेण ' पुकारते हुए ' (बाहरदि
का सचत् रूप-(वि+आ+इ)), महारथण ' बहुमुख्य रत्न ' या (=महा
रत्न) ' अभिराम ' के उधराभ ' रग ' से उवसोहिणा ' देदीप्यमान ',
अमाहृत्त्रेण ' उगली से ' वज्ज ' कम्पायमान ', पवण ' पवा ' के चल
से अ-दोलणा ' झूले ' के साथ ललन्त ' आगे पीछे खहराता हुआ ' ।

२-' जिसके दोनों (उधभ) पाई (पास, § ४४) स्फटिक (फटिह
§ १६, फटिह या फलिह बेहतर होगा देखो विशाल § २०६) के घने हुए
मङ्गल-कलशों से मनोहर (अभिराम) जो फाटक (तोरण)
को धामने वाले (धारण) स्तम्भों (स्थम्भ) की पेदी (पेदिआ) या
अष्टालिका पर खड़े हुए (निषिपत्त) हैं और जो आम की हरी कोंपलों (हरिद
चूद-पल्लव) के शिरोभूषणों (ललाम) से देदीप्यमान (समुल्लसन्त) हैं ' ।
(पास असम्भव है) ।

३-' विशाल दानव (महासुर) के वक्क स्थल (वक्क-स्थल) जैसे
दुर्भेद्य (दुग्गेज्ज (दुर+भिद्) वज्ज (वज्ज) से निरन्तर (शिरन्तर) संचित
(पडिवद्ध) सोने के किवाड़ (कण्ठ-कवाड) ।'

४-' जो शरीरों (दुग्गद=दुर्गत) को दु प (आघात) देता है (कर) ।'

५-सरिसरीअश=सभीकता सुन्दरता लावण्य, -स्स=मानो स्वरसक्ति का
स्वर प्रयुक्त नहीं किया गया हो, सुखना करो सकुण्योदि=शम्येति ।

६-मस्तुत सस्करण ॥ बजादिदीं पाठ है जो सम्भव नहीं है । बजा माहा

सेत्री—एतु एतु । एतु पदम पमोदर पदिसतु अये ।

विदूषक—(मणिरुपायमोक्षय च) हा हा भो ! इषो वि पदमे
पमोदरे मणि-मङ्ग मुग्धाम गच्छादीयो विग्रीहिद-सुग्ध मुद्रित-
पादुगाया विषद-रसग गडबड वक्ष्य-सोपाय-मोदिसाभो पासा-
पैर्माभो भोगाभिर मुग्धा-दामेदि पटित-वार्तामग मुद्रयभेदि
निर्मलायमि विभ वञ्जरति । भोगिभो विभ सुदोषोपरतो निहा
अदि दुषारिभा । नदीदोषा वसमोदयन पमोदिसा च भवधामि
पायसा वि सुधा-मयगुहाय । अदितानु भादी ।

साक्षी में क्या जाना है । तबसे बहारो बेहरा खीरसेही है । काफोदि दिवना
(का+ह) मन्मथ 'उदासीन' मन्मथ ।

१—पमोदरे 'मंगम' (=कोठ) ।

२—'उसी के जेमे रंग बाधा (लण्ण-दाध, मुग्धना करो मन्दार-दूरी मया
दाया', दिग्गु मन्दार-दूरी खीरसेही मया, मुग्धना' । विरल (§ १६२) ने
ब्रह्मा की वपति 'दायाता से 'दाया' या 'दायादा' से बगड़ई है । 'बगड़ना,
रहना या कमजोर-नाज' ।

३—मुद्रित 'मुद्रित' सुख 'पूना' (अथवा सुखद, दिग्दी पूना) ।

४—सोवय 'सीदिसा', सोपान, § १३ ।

५—'मदलों की पटिया', § १२ ।

६—'विवक्षित' 'जहाँ इया अन्दर जाती है' (वगायन) ।

७—निमग्नानि 'देखते हैं' (निरु-ब्धि) ।

८—भोगिभो=भोगियो, निहायदि 'सोता है' (दिग्दी भीर), दोवारिभो
(दोवारिक) ।

९—सद्विद्या करवकारक 'दुही से' इषि, मुग्धना करो हिंदी दही
कलम 'सरदधनु के धान', वञ्जरति (म-सुग्) मन्मथानि 'जाते हैं' (मधु),
पायसा 'कीरे', [मधुव सत्करय में पायसा है जो सारत है न कि
खीरसेनी] ।

अनुवाद

चेटी—आर्य, हमारे घर के द्वार को देखिये ।

विदूषक (देखकर, विस्मय से)—क्या कहना है ! इस पर जल छिड़का गया है, मार्जन किया गया है और हरा रंग चढ़ाया गया है । नाना प्रकार के सुगन्धित कुसुमों के उपहार से देहली चित्र जैसी सुहायनी हो रही है । यह फाटक गगन तल को देखने के कौतूहल से अपने सिर को बहुत ऊँचा उठाए हुए है, चमेली के घन्दनघारों की लटकती हुई लड़ियों से अलङ्कृत है जो सुरगज की सूड की भांति भून रही हैं, हाथी-दात के बने हुए उच्छ्रित तोरण से भासमान और मंगलमय पताकाओं से सुहायना है जो महारत्नों के उपराग से रञ्जित हैं और हवा में फहराती और अपनी चञ्चल उगलियों को थिरकाती हुई मानो मुझे भीतर बुला रही हैं (' इधर आओ ' यह कह रही हैं) । दोनों पार्श्व तोरण के आधार-स्तम्भों की वेदिका पर रखे हुए, समुल्लसन्त हरित आम्र-पल्लवों से रमणीक, स्फटिक के बने हुए, मङ्गल-कलशों से सजे हुए हैं (मनोभिराम हो रहे हैं) । सोने के कियाड़ों (कनक-कपाटों) पर निरन्तर महा अमुर के घट स्थल जैसे कठोर हीरे जड़े हुए हैं । वसन्तसेना के गृह द्वार की सश्रीकता का क्या कहना है ! यह दुर्गत मनुष्यों के मनोरथों के लिए आयासकारी है ।

चेटी—आइए, आइए । यह पहला प्रकोष्ठ है । धीमान् प्रवेश करें ।

विदूषक—(अन्दर जाकर और देखकर)—हहह ! इस पहले प्रकोष्ठ में चन्द्रमा जैसी, कमल नाल जैसी शुभ्र प्रासाद पक्षिया ऊपर फेंकी हुई चूर्ण मुष्टियों से धवल और नाना प्रकार के रत्नों से जड़े हुए स्वर्ण सोपानों से सुशोभित हो रही हैं । ये प्रासाद-पक्षिया मानो स्फटिक के बने हुए झरोखों के रूप में अपने मुख-चन्द्रों से, जिन पर मोतियों की झालरें लटक रही हैं, उज्ज

यिनी को निहार रही है। धोप्रिय की भाति आशम से पैठा हुआ
 द्वारपाल नौद से रदा है। दही और भात से प्रलोभित कौवे
 घूने की सयंता के कारण यालि को मक्षण नहीं करते। भीमती
 जी आगे चलिय।

उद्धरण नं० ६ हाल की सत्तसई।

माहाराष्ट्री

श्लोक २ अमिअ पाउअ-कव्य

पडिउ सोउ अ जे ख आणन्ति,

कामस्स तत्त-तत्ति

पुणन्ति, ते कह ण लज्जन्ति ?

अमिअ=अमृत। पाउअ, शीरसेनी पाउद § १२। कव्य § ४०।
 पडिउ, 'पढ़ना', हिन्दी पढ़, सोउ 'सुनना'। आणन्ति 'जाते हैं'
 § १२१। तत्त तन्ति। काव्यमाला में यह पाठ है जिसमें इसका
 ससृष्ट पाठ तत्तचिन्ता दिया गया है। यह पाठ गङ्गाधर भट्ट की
 टीका के अनुसार है जिस में तन्त्रघाता भी दिया गया है। धेयर
 (१८८०) को तत्ततन्ति पाठ उपलब्ध हुआ जिससे उन्होंने तन्त्र
 तन्त्री का अनुमान किया। अपने संस्करण में (१८८१) उन्होंने
 दूसरी हस्तलिपित प्रतियों के आधार पर तत्ततत्ति (८-तत्ति)
 पढ़ा। इसका अनुवाद या तो यह हो सकता है—प्रेम के रहस्यों
 का अभ्यास करना या 'प्रेम के सिद्धान्तों के विषय में चिन्ता
 करना', अर्थात् उन सिद्धान्तों का चिन्तन करना जो कामशास्त्र
 में दिये गये हैं। कह=कह, 'कैसे'।

जो प्राकृत काव्यामृत को पढ़ना और सुनना नहीं जानते
 (और) कामशास्त्र का तत्त्वचिन्तन करते हैं वे क्योंकि
 लज्जित न होंगे ?

श्लोक ३—सत्त सञ्चाइ कहि चच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।

हालेण विरइआइ सालकाराण गाहाण ॥

“ कविचत्सल हाल ने एक करोड़ श्लोकों में से सात सौ सालकार श्लोकों का संग्रह किया है । ”

कइ=कवि, चच्छल, § ३६ । ‘ कविमङ्गल ’ । कोडीअ, ‘ एक करोड़ में से ’, § ६४, १, मज्झआर जैन माहाराष्ट्री । मज्झआर ‘ मध्य ’ के लिए देशी शब्द ।

श्लोक ४—उअ निच्चल निष्फन्दा

भिसिणी-वत्तम्मि रेहइ यलाआ ।

णिम्मल मरगअ-भाअण-

परिद्धिआ शहुसुत्ति अय ॥

उअ ‘ लो ! ’ घेवर ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि यह वैदिक, √ऊह, ‘ ध्यान में लाना, देखना ’, का सक्षिप्त रूप है । पिशल ने एक और ही √उप् का अनुमान किया है जिससे ओष्प की उत्पत्ति है, त्रिविक्रम में ‘ देखा गया ’ । भिसिणी=विसिनी, शीरसेनी विसिणी । पाली और अर्धमागधी में विस के लिये भिस शब्द है । घोष वर्ण की महाप्राणता दुर्लभ है, अघोष वर्ण की अधिक साधारण, § ६ । वत्तम्मि=पत्रे । रेहइ, ‘ चमकता है ’ तुलना करो वैदिक रेभति, ‘ चटकता है ’ इत्यादि, रेभायति, ‘ चमकता है ’ । भाअण, (भाजन) ‘ वर्तन ’ । शहुसुत्ति, ‘ शहु शक्ति, सीपी ’ यह श्लोक व्यङ्ग्य को समझाने के लिये काव्यप्रकाश और दूसरे साहित्य ग्रन्थों में उद्धृत किया गया है ।

“ लो ! कमल के पत्रे पर एक सारस विलकुल निष्कल होकर इस प्रकार चमक रहा है जैसे निर्मल मरकत भाजन के किनारे पर रपसी हुई शहुशक्ति । ”

श्लोक ८—अत्ता ! तह रमणिज्ज

अमद्द गामस्स मडणी हूअ ।

सुअ-तिल-पाण्डि-गरिष्ठ

सिसिरेय कअ भिसिणी-मअ ॥

अच्छा तुलना करो मृदुकटिक् पृष्ठ ११० अतिआ के साथ, टीकाकारों के अनुसार 'सास' । प्रत्यक्षत घर में माता, यही वहिन इत्यादि किसी भी यही मदिरा के लिये प्रयुक्त किया जाता है । सुअ 'कटा हुआ' (= सुत, ला के लिये) । पाण्डि, 'पाटिका' (= पाटी) । तुलना करो हिन्दी बादा (पाट+व) ।

"ये माता । इस प्रकार शिशिर ने कमल निचय को, जो ग्राम का मण्डन और उसके लिए इतना रमणीय था, बड़े हुए तिलों के घोंद के सदृश बना दिया है ।"

इस प्रकार रमणीय अपने प्रेमी को सचेत करती है । उसके ठीक ठीक अभिप्राय के सम्बन्ध में परिउत्तों में मतभेद था । मुदुकटिक् से कि तिल के घोंद के बदले समागम का स्थान कमलों की बागड़ी बनाई जायेवाली थी, चूँकि लोग तिलों की फसल को काटने के लिये आने जाने लगेंगे, तुषार से अने कमल अब निर्जल पड़े होंगे । दूसरा मत यह था कि दोनों में से कोई भी स्थान अयुक्त नहीं था । श्लोक १३ रज्ज-कम्म-निउणिए ।

भा भूरसु, रत्त-पाइल-सुअ थ ।

मुद-भाकअ पिअ-तो

धूमाइ सिदी थ पज्जलइ ॥

"विनाश कार्य में निपुण", अर्थात् प्रेम के जादू में चतुर । भूरसु, 'मोहित होना' √ ज्वर् या जूर्, 'गरम होना' (क्योंकि यह आग जलती नहीं) । धूमाइ=धूमायते । नाम प्रत्यय 'आय' आश्रयन जाता है, इसी प्रकार मागधी जिलाअदि=चिरायति । शौरसेनी शीदलाअदि=शीतलायति यह आश्रय-प्राय मादाराट्टी इत्यादि में सक्षिप्त होकर आश्रयन जाता है । पज्जलइ 'प्रज्ज्वलित' होती है' (प्र+ज्यल्) ।

'अग्नि (शिखी) तेरे मुख के रक्तपाटल जैसे सुगन्धित वायु (मायत) को पीती हुई केवल धुँआँ पैदा करेगी,

प्रज्ज्वलित नहीं होगी, क्योंकि इस दशा में फिर सास ही निकलना बन्द हो जायेगा" ।

श्लोक ११ अमअ-मअ गअण-सेहर

रअणि-मुह-तिलअ चन्द दे छियसु ।

छित्तो जेहि पिअअमो

मम पि तेहि चिअ करेहि ॥

यह चन्द्रमा के प्रति सम्बोधन है । अमअ-मअ=अमृतमय । दे='ते' । छियसु, छियह 'छूता है' का लोटलकार, (√क्षिप्), छित्तो इसी का क्लान्त रूप । चिअ (K M ने इसको चिअ पढ़ा है) मर्यादाघोटक निपात 'स्वयं इन हाथों से' ।

अमृतमय, गगन शेखर, रजनी मुग्ध तिलक, चन्द्र, तेरी जिन किरणों ने (मेरे) प्रियतम को स्पर्श किया है उन्हीं से मुझे भी (स्पर्श) कर ।

श्लोक ४२ आरम्भतस्स धुअ

लच्छी मरण वा होइ पुरिसस्स ।

त मरण अणारम्भे

धि होइ, लच्छी उण ण होइ ॥

धुअ, 'अवश्य' (ध्रुवम्) । लच्छी=लक्ष्मी ।

कार्यारम्भ करनेवाले अव्यवसायी पुरुष की लक्ष्मी अध्यामरण निश्चित है । मरण आरम्भ न करनेवाले (आलसी ब्यक्ति) का भी होता है किंतु लक्ष्मी नहीं होती ।

श्लोक ४६ थोअ पि ण लीसरइ

मज्झएह उअ सरीर तल लुका ।

आअप-भएण छाही

वि, ता पद्धिअ कि ण धीसमासि ॥

थोअ, ' थोड़ा सा ' (स्तोकम्) । लीसरइ लीसरइ (=नि सरति) के लिप् आया है, मज्झएह, ' मध्याह्न ', १ ५२ । उअ, देखो श्लोक ४ ।

लुफका ' लगा हुआ ', संस्कृत में इस की व्याख्या 'लीन' शब्द से की गई है, 'फाड़कर शिथिल किया हुआ या फाड़ा हुआ' = लुफन जिसका सम्बन्ध √लुञ्च् से है (पिश्ल, § ४६६) । तुलना करो पञ्जाबी लुफना ' छिपना ' । आश्रय ' गरमी ', (आतप) । छाही ' छाया ', यह शब्द सीधे छाया से नहीं किन्तु * छायाकी > * छायायी (महाप्राणता, § १६) > * छायाही से लिया गया है । (पिश्ल, § १६) * छायाही सक्षिप्त होकर छाही बन जाता है । पद्धिअ ' पथिक ' । वीसमसि (वि+अम्) । हस्य स्वर के लिये √कम् से बने हुए रूपों लिफमह, शौरसेनी अदिफमसि इत्यादि और इसी तरह √अम् से माहाराष्ट्री जैन-माहाराष्ट्री धीसमह, इत्यादि शौरसेनी धीसम, कर्मेवाच्य धीसमिअदु रूपों के साथ तुलना करो ।

मध्याह्न समय आतप के भय से छाया शरीर से किञ्चित् मात्र भी बाहर नहीं आती है अथवा शरीर से लगी रहती है, इस लिए हे पथिक मेरे पास विधाम करो ।

श्लोक ८६—ए वि तह विपस वासो

दोग्गश्च मह जणेइ सताव ।

आससिअत्थ विमुहो

जह पणइअणो णिअत्ततो ॥

विपस ' विदेश ' । दोग्गश्च ' निर्धनता ' (दीर्गत्यम्) । विमुह ' उदासीन, विमुख ' । आससिअ ' इच्छित ' (आ+शस्) । पणइ ' प्रेमी ' (प्रणयिन्), अणो=जणो (जन) । णिअत्ततो ' लौटता हुआ ' (नि+घृत्) ।

(प्रणयी का) विदेश-वास (और) दीर्गत्य (निर्धनता) मुझे उतना सताप नहीं देते जितना अभीष्ट अर्थ के प्रति विमुख प्रेमी का (विदेश से) लौटना ।

श्लोक ८७ अहसणेण पेम्म

अवेइ, अहसणेण वि अवेइ ।

पिमुण जण अपिण्ण वि

अपेइ, एमेअ वि शवेइ ॥

‘दृष्टि से दूर हुए कि मन से निकल चले’ और ‘अति परिचय से अनादर होता है।’ अपेइ=अपेति। एमेअ=एवमेव (पिशल, ६ १४६)।

श्लोक १४ सुअणो ज वेसं अल
करेइ, स चिअ करेइ पवसन्तो ।

गामासणुम्मूलिअ

महा घट ट्ठाण सारिच्चं ॥

पवसन्त (अ+वच्)। घट ‘घट’ (घट)। उम्मूलिअ ‘उन्मूलित’। सङ्केतस्थान रद्द कर दिया गया है।

श्लोक १०७

गोला अड द्विअ पेच्छिअण

गह वइ सुअ हलिअ सोएहा ।

आदसा उत्तरिउ

डुक्खुचारार्ये पअवीप ॥

गोला=गोदाघरी, अड ‘तट’। सुअ ‘सुत’। गहवइ (=गृहपति)। सोएहा ‘स्नुपा’, सुणुहा से सलित अधिक प्रचलित सुणुहा के लिए तुलना करो, पैशाची सुनुसा=स्नुपा। आदसा ‘उसने आरम्भ किया’ (आ+धा का णिजन्त रूप आदवइ जिसका कर्मवाच्य आदप्पइ और क्तान्त आदत्त बनता है)। हलिअ ‘हलयाहक’। पअ वीप ‘पथ से’।

यह देखना चाहती है कि यह मुझे सहारा देता है या नहीं।

श्लोक ११४

सवत्थ दिसा-मुइ पसरिपहि

अणोण-कडअ-सग्गेहि ।

छिंणि व मुअइ विंमो

मेहेदि विसघटतेहि ॥

छिंणि ‘छाल, त्वचा’। मुअइ (√मुच्)। मेह ‘मेघ’। कडअ

‘डलाम’, इत्यादि (कटक) । धि+सम्+घट् ‘तितर-वितर हो जाना, धिघ्न भिघ्न हो जाना’ ।

धर्या श्रुतु का अन्त ।

श्लोक १२८

मधु मास मारुआदध
मधुघर भक्तार मिम्मरे रएण
गाइ विरहफसरायद
पदिअ-मण मोहण गोपी ॥

मधुमास के समीर में लाये गए मधुकरों की मद्वार से निर्भर अरण्य में कोई गोपी पथिक के मन को मुग्ध करनेवाला विरह गीत गा रही है ।

श्लोक १७१

गोला-णरूप कच्छे
धफध-तो राइआइ पसाइ ।
उप्फडइ मफहो खोफधेइ
अ पोदठ अ पिदेइ ॥

‘गोला नदी के तट पर’ तुलना करो ऊपर का श्लोक १०७ । धफधन्त धर्तमान सध-त रूप । धफधइ=अस्ति ‘निगल जाता है’, तुलना करो मराठी, हिन्दी < घाब । राइआ ‘राई’, राजिका । मफकड ‘घ-दर’ (मकंट) । उप्फडइ K M ने उत्पतति दिया है जिसका उप्पडइ बनना चाहिये । वेयर के उद्धोधनानुसार / स्फद् जिसका सम्बन्ध स्फुद् से है, तुलना करो फुडइ फिहइ । खोफधेइ ‘खीसता है’ देशी शब्द । पोठ ‘पेट’ ? प्रोष्ठम् ‘बेंच या पीढ़ा’ । पिठेइ=‘ठोंस लेता है’ देशी शब्द । वेयर का कहना है कि इसका सम्बन्ध / पिण्ड से है ।

“गोला नदी के तट पर काली राई के घर्षों को निगलता हुआ बन्दर फूदता फादता है, खीसता है और अपने पेट को ठसाठस भरता जाता है ।”

उद्धरण नं० १०

माहाराष्ट्री

शकुन्तला से उद्धृत पद्य ।

(अ) प्रस्तावना में घसन्त श्रुतु सम्यन्धी गीत—

इसीसि-चुमियओइ ममेरीह सुउमार केसर सिद्धाह ।

ओदसअन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीसडु सुमाह ॥

(ब) शकुन्तला की विदाई का शोक—

उल्ललिअ दग्मकयलौ मई परिचत्त णअणों मोरा ।

ओसरिअ पडु यत्तां मुअन्ति असूह ध लअाओ ॥

(स) अंक ३, शकुन्तला अपनी सधियों के कहने से अपने रथे हुए पद्य को पढ़ती है—

१--इसीसि=इषदीषत् ।

२--(अव+तस्) ।

३--उल्ललिअ, देशी शब्द (तुलना करो हिन्दी उलटाना, बलाना) । उल्लिखित ध्याख्या है, अतएव प्राकृत पाठ उल्ललिअ । (विशाल का संस्करण, पृष्ठ १६१)—कवल ' निवाला ' । मई ' मृगी ' जैसा कि विशाल के संस्करण में है । देवनागरी हस्तलिखित प्रतियों में मिहँओ पाठ है । बौटलिक ने मिआ ' मृग ' का अनुमान किया था ।

४--अत=अथ । नचया, तुलना करो हिन्दी भाषना । मोरा ' मोर ' , विशाल मोरी ' मोरनी ' ।

५--ओसरिअ (अव+र) । यत्त ' यत्ता ' । मुअन्ति (मुष्) ।

६--विशाल के यज्ञका संस्करण में अद्दाह व पाठ है । देवनागरी हस्तलिखित प्रतियों में अस्सुयि विभ पाठ है । बौटलिक ने असू का अनुमान किया था ' अस्सुयि ' (अस्सूह के लिए) विभ लदाओ ' शौरसेनी है माहाराष्ट्री नहीं । ऊपर दिया हुआ असूह व लअाओ पाठ बोलचाल की भाषा, छंद और अर्थ के अनुकूल है । अनु, ६५ ४६, ६४ । अभा, ५ १२ ।

तुज्झ ण आणे दिअअ, मम उण मअणो दिवा अ रात्ति च ।

णिक्खि दावइ बलिअ तुह हुत्त मणोरदाइ अगाइ ॥

ण आणे 'मैं नहीं जानती' तुलना करो न० ६ पद्य १ । म-
अणो, मोनियर विलियम्स ने कामो पाठ दिया है । णिक्खि 'निष्ठुर'
निष्ठुरप । दावइ टीका में तापयति दिया गया है । पिश्ल (पृष्ठ
१५४) के कथनानुसार ठीक तापयति नहीं किन्तु मराठी दावेण,
गुजराती दावधु, उर्दू दावना । (मोनियर विलियम्स, तथैइ अर्थात्
तथैइ=तापयति) । पलिअ (पलीय) । हुत्त ' सामने ' टीका—
' अभिमुख ' । इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित है । सर्याओं के साथ
माहाराष्ट्री अर्धमागधी, खुत्त=कृत्य । मोनियर विलियम्स ने हुत्त=
धृत्त पाठ दिया है । आइ पछी एक ध्वन । दिया अ=दिया च ।

" ये निष्ठुर । तेरे हृदय को मैं नहीं जानती किन्तु मेरे अङ्गों
को कामदेव अत्यन्त पीड़ित करता है, मेरे मनोरथ तुझ में
निहित हैं । "

(व) अक ५ इसपदिका गाना गाती हुई सुनाई देती है—

अहिणय-महु-लोलुवो तुमम्

तह परिखुम्बिअ चूअ-मअरि

कमल-उसइ-मेत्त-णिब्बुओ

महुअर धीसरिओसि ण कह ?

लोलुवो 'लोलुप', बंगाली सस्करण में लोह भाविओ पाठ है ।
चूअ 'आम' (चूत) । मेत्त § ६६ । निब्बुओ (निष्ठ+वृत्), मोनियरविलि
यम्स ने निब्बुओ पाठ दिया है जो शौरसेनी है । महुअर 'मधुकर' ।
धीसरिओ 'विस्मृत' । मोनियर विलियम्स ने विम्हरिओ पाठ दिया
है । इसके समर्थन में उन्होंने चरकचि ३३२ का हवाला दिया है
जिससे विम्हअ आदि की व्युत्पत्ति के विषय में तुलना करो § ४७ ।
किन्तु इदो माहाराष्ट्री नहीं है । माहाराष्ट्री में धीसरिअ, विसरिअ
होता है । शौरसेनी विमुमरिद (जैन शौरसेनी धीसरिद, जैन-

मादाराष्ट्री विस्सारिय, योलवाल की भाषा में विम्हरिअ, तुलना करो हिन्दी पिसरना । यह कान्त अर्थ में कर्तवाच्य है ।

“ये मधु के लोमी भौरे ! आघ्रमजरी को इस प्रकार चुम्बन करके कमरा के अन्दर निवास करने मात्र से सन्तुष्ट होकर तू उसे कैसे भूलगया है ?”

(६) अंक ६-(मोनियर विलियम्स पृष्ठ २३०, विशल पृष्ठ १२०) अरिहसि मे छूअकुर दियखो कामस्स गहिअ-चावस्स सवविअ-जुअइ-लफयो पञ्चम्मदिअो सरो होउ ।

गहिअ=शौरसेनी गहिद । चाव ' चाप '=धनुष । सवविअ, सवयइ=सत्यापयति का कान्त रूप, ' सव्या करना ' सव्याई को परचना, कौल करना । जुअइ=युयती । पञ्च+अभि+अधिक । होउ ' होना ' । मोनियर विलियम्स का इस में मतभेद है, उन्होंने अरिहसि होउ के लिये होहि ' होना ' पाठ दिया है और तु सि मप ' तू मुझ से समर्पित की गई है ' से आरम्भ किया है, सवविअ के लिये अधिक आसान पदिअजण, तुलना करो मेघदूत=पाथिक-वनिता ।

“ये चूताकुर, मैंने तुझे गृहीतधन्वा कामदेव को दे दिया है । तू ' वाग्दत्ता ' युवतियों को अपना लक्ष्य बनाकर उस के पाँच बाणों में से सब से बढ़िया बाण हो ।”

अनुवाद ।

(अ) दयार्द्र प्रमदा शिरीष कुसुमों के कर्णावतल बना रही हैं, जिनकी सुकुमार पशुदियों के सिरे भौरों से थोड़ा थोड़ा चूमे गए हैं ।

(ब) मृगियों ने दर्भ के घासों को उगल दिया है, मयूरियों ने नाचना छोड़ दिया है, लता जिनसे पीले पत्ते झड़ रहे हैं आस्र जैसी बहा रही हैं ।

उद्धरण नं० ११ ।

मृच्छकटिकम् ।

माहाराष्ट्री

(अ) (श्लोक ११)

पिचरत खेउर-जुमल, छिज्जन्ति अ मेहला मणि-फणइआ
यलआ अ सु-दरअरा रअणइर जाल-पडिपइआ ।

खेउर, ससृत नूपुर के लिये नियमित प्राकृत रूप, किसी *नेपुर या *नेपूर रूप से, तुलना करो केयूर, प्राकृत केऊर ।
(P § १२६) । छिज्जन्ति, कर्मवाच्य (छिद्) । फणइअ (षप्) ।
सुन्दरअर=श्रीरसेनी सुन्दरदर । रअण § ५१ ।

“ नूपुर-युगल पिचलित हो रहा है, मणि-घचित मेहला टूट कर गिर गई है, रत्नाकुर-जाल से प्रतियन्त्र सु-दरतर धाजूपन्द (टूटकर गिर रहे हैं) ” ।

(घ) अंक २, कर्णपूरक (श्लोक २०)

आहणिकण सरोस त इत्थि विष्म-सेल-सिहराभ
मोआविओ मय सो द-तन्तर-सण्ठिओ परिवाजओ ।

आहणिकण छदन्त (आ+हन्) । विष्म, § ३५ । सेल=शैल
[H P सस्करण में शैल पाठ है जो प्राकृत नहीं है, देखो पिगल,
GR § ६०] । मोआविओ क्लान्त खिजन्त (मुप्) । ठिओ § ३८ ।
परिवाजओ ‘ परिवाजक ।’

मैंने उस विच्य शैल शिखर सदृश हाथी को रोप से मारा और
दान्तों के बीच स्थित उस परिवाजक को छुड़ा डाला ।

(स) अङ्क ५ (श्लोक ३०) । विदूषक घसतसेना की माँ का
उपहास करता है ।

सीहु-सुरासव मत्तिआ
एआवत्थ गथा हि अत्तिआ,

जइ मरइ पत्थ अत्तिआ,

होइ सिआल सहस्स पज्जत्तिआ ।

सीधु 'रम, एक प्रकार की मदिरा', (सीधु) । सुरा ' शराब, इत्यादि', आसव ' कच्चे साग पात और पानी से बना हुआ मद्य ' । पञ्चावत्थ=पतद्+अवस्था । अत्तिआ ' मा ', देखो मोनियर विलि यम्स दिक्शनरी, अत्ता के नीचे । प्रत्यक्षतः यह आर्य भाषा का शब्द नहीं है । पज्जत्तिआ ' यथेष्टता ' (पर्याप्तिका) । पुस्तकों में गदा और भोदि पाठ है, जो शौरसेनी रूप हैं ।

"शराब, मदिरा, मद्य पीकर मा इस दशा को प्राप्त होगई है । यदि यह मा मर जाय तो सहस्र नृगालों के लिए पर्याप्त हो" ।

उद्धरण नं० १२ ।

कर्पूरमञ्जरी ।

माहाराष्ट्री

(अ) अङ्क २ श्लोक १०

णीसासा हार लट्ठी-सरिस पसरणा चन्दणबोडकारी,
चण्डो देहस्स दाहो, सुमरण सरणा हास सोहा मुहम्मि,
अङ्गाण पण्ड भावो दिअह-ससिकला कोमलो; किं च तीण,

णिच्च बाह-प्पवाहा तुह, सुहअ कप होन्ति पुम्मादि तुल्ला ।

णीसास 'नि श्वास' । लट्ठी 'लाठी', 'हार की लड़ी' भी [लट्ठी से मोतियों की भांति छूट पड़ते हैं, लैनमैन ।] उबोड 'घिशीए होती हुई' खुद-अर्थ निश्चित नहीं है खुद का अर्थ 'चटकना' या 'झीण होना' मतलाया जाता है । शायद नि श्वासों की नम गरमी से चन्दन से सुगन्धि निकल रही है । चण्डो 'चण्ड' । सुमरण-सरणा, 'स्मरण ही जिसकी शरण है', तुह कप 'तेरे लिये' सुहअ=सुमग । पुम्मा 'नदी से निकली हुई नहर' । तुल्ला 'तुल्य' । बाह (देखो पृष्ठ८४) ।

(घ) विदूषक का प्रत्युत्तर (श्लोक ११)

पर जोरहा उएदा, गरल मरिसो चन्दपरसो,
 दझ-दघारो दारो, रधलि पयवा देद-तरणा,
 मुणाली घाणाली, जलइ अ जल-दा तरुणघा
 परिहा ज विहा कमल-यमण मा सु एमणा ।

जोरहा 'ज्योत्स्ना', 'चौदनी' । उएदा § ४७ । गरल 'विष' ।
 दझ 'दत्त, दाय' । दघार 'दार, गारा' । तयणा (तप्) । जलइ
 जली जाती है । जलइ, 'जलाई' । तरुणघा 'तरु-सता', § १२ ।
 परिहा 'परिहा' 'उत्तम तरुणी' ।

आंतरिख तुषों पर ध्यान दें ।

(स) (श्लोक २५)

णिसगा चगरस वि भाणुमरस सोदा समुम्मीलर भूपयोदि,
 मणीण जघाय वि हीरपदि विहमणे लगार का वि लच्छी ।
 णिसगा 'निसर्ग, प्रकृति' (नि+छृ) । चङ्ग 'दर्शनीय अच्छा'
 तुला करो पञ्चाशी चङ्गा 'अच्छा' । मणीण 'मणीण' के लिप पद्य
 बहुवचन । जघाय, पद्य य० य० 'घरा' (जात्य) । लच्छी-लामी ।
 (६) श्लोक ३२ इसमें नायिका के भूलने का वर्णन है ।

रणत मणि-गेउर भण भणन्त दार च्छद
 कणणणिम किंकिणी मुदला मेदला दम्पर
 विलोल यलभारली जणिअ मञ्जु सिखा-रय
 ए कइस मण मोदण ससि मुदीअ दिन्दोलण ।

रण 'ठनठाना' । भणभण 'भनभनाना' । छदा 'छटा' । कण-
 कण 'कणकणाना' (कण) । किंकिणी 'कण्टी' । मुदल 'मुण्डर'
 § २६ । दम्पर 'पुञ्जीभूत ध्वनि' । सिखा 'भनभनाने की ध्वनि' ।
 ससि-मुदी 'शशि मुदी' ।

लौभेनने इस छंद को अनुकरणात्मक शब्दों के प्रयोग का विशेष प्रयास ध्यान किया है, पृष्ठ २५५ ।

(३) विदूषक की घामिता भी उद्बान लगाने लगती है और

यह आठ श्लोकों में भूलने का वर्णन करता है जिसका अन्तिम श्लोक ४० है ।

इअ पआइ विलासुज्जलाइ दोला पयञ्च-वरिआइ
कस्स ण लिहइ य चित्ते णिउणो कन्दप्प चित्तअरो ?

इअ 'इस प्रकार', इति से सम्बद्ध । पआइ=शौरसेनी एदाइ ।
पयञ्च 'प्रपञ्च', प्रदर्शन । चित्त 'हृदय' । चित्तअरो 'चित्रकार' ।

(फ) अक ३ श्लोक २

मरगअ-मणि-गुत्था हार-लट्ठि ध्व तारा
ममर-कवल्लिअन्ता मालइ-मालिअ ध्व ।
रहस-यलिअ-कण्ठ तीअ दिट्ठी धरिट्ठी
सवण पइ णिविट्ठा माणस मे पविट्ठा ।

गुत्थ 'गुथा हुआ' (गुप्) । तारा 'चमकीला', कवल्लिअ
'कवलित', 'चूसा हुआ' । अन्त 'अन्त' । रहस 'रमसा'
'तीव्रता से', यलिअ 'यलित', मुट्ठा हुआ । सवण 'अवण', कान
(शु) । पइ=पथ ।

(ग) श्लोक ३५ नायिका की रचना ।

मएइले ससहरस्स गोरीए दन्त पञ्जर विलास-चोरए
भाइ लच्छणमओ फुरन्तओ केलि-कोइस तुल धरन्तओ ।
'शशधर', चन्द्रमा । दन्त 'दायी दान्त' । भाइ 'भाति',
चमकीला है (अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ आविर्भूत होता है) ।
मओ 'मृग' । फुरन्तओ 'स्फुट (स्फुट्)', तुल 'तुल्यता' ।

(ह) अक ४, भरतवाक्यम्
अणुदिअइ विफुरन्तो मणीसि जण-सअल गुण विणास अरो
रित्तत्तण-दावग्गी विरमउ कमला-कडक्क-वरिसेण ।
मणीसि 'मनीषिन्', चतुर, कृतविद्य । रित्तत्तण 'रिक्तता, निर्ध-
नता' । दावग्गी 'दावाग्नि' । कमला=लक्ष्मी । कडक्क 'कटाक्ष' ।
वरिस 'वर्षा' § ५७ ।

अनुवाद

श्लो० १० (उसके) निश्वास द्वार की लड़ियों के सदृश विखर रहे हैं, चन्दन लेप चटका जाता है, देह का दाह प्रचण्ड होगया है, मुख पर हँसी की शोभा स्मृति का विषय रह गई है, अङ्गों की पाण्डुरता दिन के समय की शशि कला के समान कोमल (मन्दप्रम) हो रही है, और ये सुभग ! तुम्हारे कारण प्रतिदिन (उसके) घाण्य प्रवाह (अभुधाराएँ) कुर्याओं (गुलों) के तुल्य हो रहे हैं ।

श्लो० ११ (उसे) ज्योत्स्ना अत्यन्त उष्ण (लगती) है, चन्दन का लेप विष-सदृश (हो रहा) है, द्वार घाय पर नमक छिड़कने के तुल्य अत्यन्त (दुःसह) है, रात की दयाएँ देह को तपाने वाली हो रही हैं और मृणाली (कमलनाल) तीरों की चौद्यार (जैसी क्लेशकारिणी) है, जलाद्रं तनुलता (सुकुमार देह) जली जाती है, इस दशा में मैंने उस सुनयना, कमलमुखी धराङ्गना को देखा था ।

श्लो० १५ स्वभाव-सुन्दर मनुष्य की भी आभूषणों से शोभा बढ़ती है । उत्तम मणियों की भी हीरों के साथ सजाने में लक्ष्मी (शोभा) अनिर्वचनीय लगती है ।

श्लो० ३२ चन्द्रमुखी (कर्पूरमञ्जरी) का झूलना (हिन्दोलन) किस के मन को नहीं मोहता ? (जिसमें) मणिनूपुर बज रहे हैं, द्वार-छड़टा की झणझणाहट हो रही है, कल कणन करती हुई किंकिणियों (घुघुराओं) से मेघलाढ्यवर मुखरित हो रहा है, [और] विलोल धल धावलि से मञ्जु मनमन ध्वनि निकल रही है ।

श्लो० ४० इस प्रकार इन उज्ज्वल विलासयुक्त दोला प्रपञ्च के चरित्रों को निपुण कन्दर्प चित्रकार [कामदेय रूपी चित्तेरा] किसके चित्त पर अंकित नहीं करता ।

अक ३ श्लोक २—

मरकतमणियों से गुम्फित द्वार की लट्टी की भाँति देदीप्यमान, भ्रमर कवलितान्त मालती माला के समान, तीव्र वेग से तिरछी

गर्दन किये हुई उसकी सुन्दर चितवन ने श्रवण पथ से होकर हृदय में प्रवेश किया।

श्लो० ३१ हाथी दान्त के विलास को घुराने वाले [अत्यन्त शुभ्र] चन्द्रमा के गौर मण्डल में केलि-कोकिल के सादृश्य को धारण करता हुआ सुव्यक्त लान्छन मृग सुशोभित हो रहा है।

अक ४ भरतयाफ्य—

कमला [लक्ष्मी] की कटाक्ष वर्षा से मनीषियों के अशेष गुणों को विनष्ट करनेवाली प्रतिदिन झुलगती हुई निर्धनता रूपी दाया मि शान्त हो।

उद्धरण नं० १३

माहाराष्ट्री

रत्नावली।

(अ) अक १ मदनिका गाती है।

कुसुमाउह पिय-दूअओ मउलाइअ यहू-चूअओ
सिदिलिअ भाण गहणओ वाअइ दाहिण-पवणओ।
धिरइ धिवदिदअ सोअओ कखिअ पिअ अण-मेलओ
पडिवालणसमत्थओ तम्मइ जुवई-सत्थओ।

इह पदम महुमासो जणस्स हिअआइ कुणइ मउआइ
पच्छा विज्झइ महुमासो जणस्स हिअआइ कुणइ मउआइ
पच्छा विज्झइ कामो लद्ध प्पसरेहि कुसुम-पारेणहि

वाअइ ' यहती है '। दाहिण ' दक्षिण ', स्वर को दीर्घ करने से दक्षिण * दाक्षिण हो जाता है और इससे § १३ से दाहिण बनता है। तुलना करो ' दक्षिण ' और हिन्दी दाहिना।

कखिअ ' उत्कथित ' पिअ अण ' प्रिय-जन ', वालण (पाल)
असमत्थओ ' असमर्थ '। सत्थओ ' दल '। कुणइ ' करता है '।

मउअ 'स्त्रिभ' (मृदुक) । पञ्चा ५ ३८ । विजम्भ (विष्पति)
 ५ ३५ । लद्ध प्पसर ' लब्ध प्रसर ', बेरोकटोक ।

"कुसुमायुध कामदेव का प्यारा दूत आमों को मुकुलायित करने वाला, (स्त्रियों के) मान ग्रहण को शिथिल करने वाला, दक्षिण पवन यह रहा है । विरह से विवर्द्धित शोकयुक्त प्रियजन के मिलने के लिये उत्कण्ठित अपनी रक्षा करने में असमर्थ युवतियों का समुदाय [सार्थक] प्रेम के कारण कुम्हला रहा है । यहाँ पहले वसन्त मास [मधुमास] मनुष्यों के हृद्यों को मृदुल बनाता है, इस के पश्चात् कुसुम बाणों [फूलों के बाणों] से कामदेव बेरोकटोक उन्हें घीघता है ।"

[य] अक ४ पेन्द्रजालिक

पणमह चलोणे इन्दस्स इन्दआलम्मि लद्धणामस्स,
 तह अज्ज-सम्बरस्स पि माआ सुपट्ठिअ-जसस्स ।
 किं धरणीय मिअको आआसे महीधरो जले जलयो,
 मज्झएहम्मि पओसो दाविज्जउ देहि आणसिं ।

पणमह, लोढ़ [म+नम्] । चलोणे, पु० द्वितीया व० व०, सस्कृत न० लि० । इन्दआल [इन्द्रजाल] 'माया' । पट्ठिअ [प्रति+स्था] जस 'यश' । आआस 'आकाश' । जलयो [ज्वल्] । मज्झएह ५ ५२ । दाविज्जउ, लोढ़ कर्मवाच्य गिजन्त [दा] 'दिलवाया जाय' । आणसिं [आ+दा] ।

"इन्द्रजाल से अपना नाम ग्रहण करनेवाले इन्द्र की करतूतों को प्रणाम करो । इसी प्रकार माया से सुप्रतिष्ठित यशवाले सम्बर की करतूतों को प्रणाम करो । धरणी पर मृगाक [चन्द्रमा] आकाश में महीधर [पहाड़] जल में अग्नि, मध्याह्न में प्रदोष [साक], इन में से क्या हो ? आघा दीजिये ।"

[स] किं जप्पियण बहुणा ज ज दिअपण महसि सन्ददहु,
 त त दसेमि अह गुरुणो मन्व प्पदावेण ।

महासूत्र के अनुसार है ।

“यद्दुत प्रलाप से क्या ? जिस जिस वस्तु को हृदय से देखना चाहता है उस उस को मैं गुरु के मन्त्र के प्रभाव से दिखावाये देता हूँ ।”

(द) हरिहर-यमद-पुमुदे देवे दसेमि देवराज च,

गअणम्मि सिद्ध विज्जाहर बहु-सत्थ च खुधन्त ।

यमद, तुलना करो § १२ । देवे द्वितीया व० य० ।

“ गगन में हरिहर ब्रह्मा आदि देवताओं को और देवराज को भी और सिद्ध विद्याधर-यधुओं के नृत्य करते हुए समुदाय को दिखावाये देता हूँ ।”

इस नाटिका में बहुत कम माहाराष्ट्री है । उसकी सादगी और हासशील कर्पूरमञ्जरी के साथ उसके महान् विरोध पर ध्यान दीजिये । कर्पूरमञ्जरी में भी स्थय चरित्र नायिका को लाकर इन्द्र-आल के द्वारा उसके दर्शन की आयोजना की गई है ।]

उद्धरण नं० १४

माहाराष्ट्री

सेतुबन्ध या रावणवहो ।

सर्ग १ श्लोक ५७ ।

इस में यह दिखावाया गया है कि यन्दरों ने पहाड़ी नदियों को कैसे पार किया ।

घोलन्ति अ पेच्छन्ता पडिमा-सकन्त धवल वण सघाय ।

फुड फडिह सिला-सकुल खलिओधरि पत्थिय विअ णइप्पयहे ॥

✓घोलू ‘ पार करना ’, तुलना करो योलेह ‘ कालक्षेप करता है ’ । माहाराष्ट्री पेच्छह=शौरसेनी पेक्खदि § ४० । पेच्छन्ता, प्रथमा य० य० सधन्त । पडिमा-सकन्त ‘ प्रातिमा-सफ्रान्त, प्रति-यिम्मित ’ । सघाये, द्वितीया बहुवचन § ८६ । खलिअ=शौरसेनी

अति३ । पण्डित-श्रीरसेनी पण्डित (प्र+स्था) । पण्डित-प्रवर्द्धात् ।

“ और वे नदियों की उन धाराओं को पार करते हैं जिनमें वे स्नेह वाद्यों का प्रतिबिम्बित देखते हैं, माने वे सूँवर स्वप्न स्वटिक चित्तों के पुत्र के ऊपर दीड़े आ रहे हों ।”

सर्ग ७ श्लोक २६

और जैसे पम्बर पानी में पहाड़ों को दासने हैं सहरें आकाश को आग्नपित्त करती हैं ।

उपपिबन्ध नुम विषदा गिरि या उच्चत मुच्छिन्न महा मच्छा ।

येता-रोता पयतिमा उद्य मिश्रमिन्ति उद्यदि जल-जलोमा ॥

उपपिबन्ध, टीका=उत्तमिन्ति (उत्+स्नग्म्) । यह नियम से माहाराष्ट्री में उत्तमिन्ति और श्रीरसेनी में उत्तमिद् होता है । उच्चत (उद्+भृत्) । मुच्छिन्न ' भूँड़ित ' ; मच्छा ५ २६ कसमिन्ति (स्वत्) । मिश्रमिन्ति, मिद् का कर्मसम्बन्ध । उद्यदि ' उद्यधि ', समुद्र ।

“ समुद्र के जल की सहरें उन धूपों के समूहों को उठाये जिन पर पहाड़ों के पुत्र से भूँड़ित महामच्छ विष मान हैं तब की शिलाओं पर स्थलित होकर आकाश ही में विप्र भिन्न हो जाती हैं ।”

सर्ग = श्लोक ३

समुद्र बँट जाता है ।

गिरि-सहोद विमुक्ता भीषा अप्पत्त-पदम-गमणोभासा,

मग्गोत्तण-मउत्ता मग्गागय विम समुद्र-सलिल-उत्पीडा ।

सहोद=ससोम । विमुक्ता (वि+मुच्) । भीषा ५ ४० । अप्पत्त (प्र+प्र+धाप्) । पदम ५ २० । मग्गागय=अवकाश । मउत्त=मृदुक । विम ' सदृश ', ' जैसा ' । उत्पीडा ' कण्ठारे ' कण्ठारों के रूप में फूटते हैं ' ।

“ समुद्र जल के कण्ठारे पहाड़ों के ससोम से मुक्त होकर पहिले

जैसे ऊँचे नहीं उठते हैं किन्तु बैठ जाते हैं और मन्द मृदुल आन्दोलन के साथ दोलायमान हो रहे हैं।”

श्लोक ६ जल और थल का मिश्रित भ्रंसावशेष ।

मोत्ता घटन्त-कुसुम सम मरगञ्च वत्त भङ्ग भरिआवत्त,

विद्दुम मिलिअ किसलअ स-सङ्ग-धवल-कमल पसम्मइ सालिल ।

मोत्ता 'मुक्ता' । घटन्त सघनत रूप (घट्) ' जोड़ा जाता

हुआ ' । मरगञ्च ' मरकत ' § १२ । वत्त ' पत्ता ' । आवत्त (आ+वृत्) । विद्दुम ' विद्रुम ', मूगा । पसम्मइ (प्र+शम्) ।

“जल शान्त हो जाता है, फल मोतियों से मिले हुए हैं, भयर (आवर्त) पत्तों और पत्रों के डुकड़ों से भर गये हैं, कलिया मूगों से, (और) सफेद कमल शृङ्खों से मिल गये हैं।”

श्लोक १४ काम करनेवालों की थकावट—(सुग्रीव नल से बातें करता है) ।

अपिओ धाणरलोओ दूरट्टिअ विरल-पण्वअ महि-वेद,

ए अ दीसइ सेउ-वहो, मा हु एमेज्ज गुरुअ पुणो राम धणु ।

अविओ 'परिभ्रान्त' (लप् क्षि का लिजन्तरूप) । पण्वअ 'पर्वत'

महि 'पृथ्वी' । वेद=वेष्ट 'घेरा' § ३८, तुलना करो मादाराष्ट्री वेदिअ शीरसेनी वेदिइ, टीका में इसका अर्थ मही पृष्ठ दिया गया है । दीसइ=दृश्यते । वहो=पथ । एमेज्ज विधिलिइ अन्यपुरुष एक वा बहुवचन ।

टीकाकार को निश्चय नहीं है कि धणु प्रथमा है या द्वितीया ।

(अ) यदि प्रथमा हो तो 'राम का धनुष न सुके',

(व) यदि द्वितीया हो तो 'राम अपने धनुष को न सुकावें' ।

टीकाकार ने नमयत शब्द को प्रस्तुत किया है किन्तु एमेज्ज मध्यम पुरुष बहुवचन नहीं है ।

“वातर लोग परिभ्रान्त हो गये हैं, पृथ्वीके तल पर पर्वत तो हैं किन्तु दूर स्थित और विरल, सेतुपथ दृष्टिगोचर नहीं होता, अतएव

(कहीं) राम का धनुष फिर गुरुता से 'भुजे' ।

श्लोक २० नल का उत्तर—

सधिश्रो पश्यथ शिवहो दलित्थ य रसाग्रल धुत्रो एव समुद्रो,
जीथ या परिचत्त अज्ज य संभावणा तुह शिव्यूदा ।

परिचत्त (परि+त्यज्) । टीका के अनुसार या प्रकृतार्थ-बोधक है । अज्ज के बाद एक टीकाकार वि पाठ रखना उचित समझता है ।

“पर्यंतों का एक समूह समाप्त हो चुका है, चाहे रसाग्रल को छिन्न भिन्न करना पड़े, समुद्र नष्ट हो, जीवन का परित्याग करना पड़े, किंतु अब आपकी आयोजना सिद्ध होगी चाहेपि ।”

राक्षस सीता को अपनी माया से राम के कटे हुए सिर का नज़ारा दिलाते हैं—सर्ग ११ श्लोक ६१ पृष्ठ ३४५ ।

पेच्छइ अ सरदसोदरिअ-मण्डलागादिघाअ-यिसम च्छिण्ण,
दूर धणु-सधिमचिअ सर पुद्यालित्थ सामलित्थआयग ।

ओदरिअ, क्लान्त (अव+ह) । मण्डलाम् ‘अङ्ग’ । अदिघाअ (अभि+हन्) । सधिमचिअ=सधित+अक्षित § ६५ । सर पुद्य ‘तीर का पक्ष’ । आलित्थ (आ+तिह्)=आलिङ्ग्य । अयग ‘अपाङ्ग’ § १७ । पेच्छइ का कर्म ६६ वें श्लोक में आता है—“रामसिर” ।

“आज सीता ने छिन्न भिन्न (मानव सिर को) देखा जो तलवार के आघात से अपहृत किया गया था, आप्रों के अपाङ्ग तान कर पीछे को खींचे हुए धनुष पर रखे बाण के पत्र से अन्धकार भय हो गये थे ।”

श्लोक ६२

शिव्यूद-कादिर-मण्डुर मउलन्त च्छेअ मास पेत्तिअ विवर,

मज्जत पडिअ-पहरण वण्ठ च्छेअ-दर लग्ग घारा सुण्ण ।

शिव्यूद=[निर्व्यूद] । मउलन्त शब्दार्थ [जिससे कलिया निकल रही हों] [मुकुल] § ७१ । च्छेअ ‘घाव’ । पेत्तिअ*पेलिअ*पेरिअ=पेरित । टीकाकार ने इसका अर्थ मुद्रित ‘जिस पर मुद्र

१—टीकाकार कहता है समुद्रतापनाय, ‘समुद्र का तापन करने के लिए’ ।

लगी हो' दिया है। भजन्त भजइ से क्लान्त 'टूट गया है'। दर 'थोड़ा सा'।

"तलवार की धार का चूर्ण, प्रहार के कारण उसके कण्ठ पर पड़े हुए घाव पर लग गया जिस पर गिरने से तलवार टूट कर टुकड़े टुकड़े हो गई, जब कि घाव का पाएदुर रुधिर-रहित मांस विशीर्ण हो चुका था और उसने उसके विवर को ढांप दिया था।"

श्लोक ६३

णिद्वय सन्दद्वाहर मूल उक्लिप्त दर दिट्ट दादा हीर,
सङ्गाअ सोणिअ पङ्क पडल पूरेन्त कसण-कण्ठ च्छेअ,
णिद्वय 'निर्वय'। सन्दद् (सम्+दग्)। अहर=अघर। उक्लिप्त
(उत्+क्षिप्)। दादा 'दायी का दान्त', § ६५।
सङ्गाअ टीका=सस्त्यान्त 'जमा हुआ', अत्यल्प प्रयुक्त धातु स्तै
से। बेहतर *सस्फ्यात् से होकर सस्त्यात् क्लान्त से। कसण=कण्ठ।

"निर्वयता से काटे हुए अघर (निचले होंठ) के उठे हुए मूल पर एक हीरक दान्त थोड़ा दिखाई देता है और कण्ठ का काला घाव जमे हुए शोणित के पङ्क पटल से भर गया है।"

श्लोक ६४

णिसिअर कअ ग्गहाणिअ णिलाड अड-णट्ट मिउडि भुमआमग,
गलिअ रहिर ख लहुअ अणहिअ-उम्मिल्लतारअ रामसिर।

णिसिअर=*निशिवर, कअ-ग्गह 'केशप्रहरण' (कच)। आणिअ=
आणीअ। णिलाड 'ललाट' णलाड भी होता है, पालि नलाट या
ललाट और धर्ण न्यत्यय से माहाराप्पी णडाल या माहाराप्पी शौर-
सेनी णिडाल। अपभ्रंश णिडला (पिशल § २६०)।—अड=तट्ट,
मिउडि, टीका=भुकुटि घस्तुत=भृकुटि, जिसका प्रयोग देखने में
आता है। अर्धमागधी भिगुडि। पिशल के कथनानुसार भुउडि
हुउडि रूप अशुद्ध हैं (पिशल § १२४)। भुमआ 'मौह'। अणहिअअ
का अर्थ है अहदय, तुलना करो अणमिल्लिअ=अमिलित, अणादीहर=
अदीर्घ। उम्मिल्ल=*उन्मीलन=उन्मीलित।

“उसका धमझ उसके ललाट तट से नष्ट हो चुका था, क्योंकि राजस राम के सिर को केश पकड़ कर ताये थे जो खून के निकलने से आधा हल्का हो गया था और जिसके तारक उन्मीलित किंतु जीवन से शून्य हो गये थे।”

सीता का विलाप

श्लोक ७५ (पृष्ठ ३५०)

आयास मय अर विश्व ए होइ दुःखस्त दाघण निग्यदणं,
ज महिला-वीहृत्य दिष्ट सदिश च तुद मय अयसाण ।

आयास=आपात, विश्व (अर्धमागधी चिय), सरो के बाद विश्व का अर्थ पय होता है। चेस रूप भी होता है, (चिय तुलना करो जेय=नैय)। वीहृत्य=वीमत्स। सदिश ‘सहन किया’।

“यद्यपि दुःख का आरम्भ मयकर होता है उसका अन्त (निर्यदण) इतना दाघण नहीं होता, यदि मैं स्त्रियों के लिये वीमत्स दृश्य को देख सकती हूँ और तुम्हारे अयसान को सहन कर सकती हूँ।”

सीता यह न जान कर कि सिर मायामय है इस बात से हैरान होती है कि मैं अभी तक जीवित हूँ। टीका में महिला-वीहृत्य का अर्थ ‘स्त्रियों में निन्दा का कारण’ दिया है।

श्लोक ७६

बाहु-एद तुज्ज उरे जमोच्छिदिमि सि सण्ठिअ मद्दिअण,
घर निगमण पयत्त साहसु त कमि विव्यविज्जउ दुफ्फा ॥

बाहू या बाहू ‘आहू’। एहम् ‘उष्ण’। पुस्तक में उद्ग पाठ है जो अशुद्ध है। तुज्ज, तुज्ज का यह गौण रूप हिन्दी ‘तुज्ज को’ में विद्यमान है, इस की उत्पत्ति मल्ल के सदृश * तुज्ज से है। उरे, उरो ‘यज्ञ स्थल’ का सप्तमी का रूप। ‘मोच्छिदिमि’ मुष् का भविष्यत् का रूप, मोच्छ भी होता है। ठिअ § १२।

पञ्चान्तं=प्रवृत्तम् । साहसु 'कहो' लोट, शास् । कम्मि सत्तमी=शौरसेनी कस्मिन् । णिन्वविज्जउ (निर्+वप्) कर्मवाच्य लोट 'उठेला जाय ।'

'घर छोड़ने के समय से मेरे हृदय में यह बात घेठी हुई थी कि ॥ तुम्हारे उर स्थल पर उष्ण आसू बहाकर अपने शोक को दूर करूंगी । अब मुझ से कहो मेरा शोक कदा उठेला जायेगा ।'

श्लोक ७७

धिरहम्मि तुज्झ धरिअ दच्छामि तुम सि जीविअ कह वि मय,
त एस मय दिट्ठो फल्लिआ वि मणोरहा ण पूरेन्ति मइ ।

दच्छामि 'द्रक्ष्यामि', मैं देखूंगी, दच्छिमि औरदच्छ रूप भी धनते हैं, शौरसेनी में पेक्षिप्स्स का प्रयोग होता है । कह वि=कथम् अपि, कह अधिक पाया जाता है । सर्वनामों और क्रिया विशेषणों में अन्तिम अनुस्वार की प्रवृत्ति अपवाद की ओर है । इस प्रकार मइ=मह । एस=एसो । हेमचन्द्र के अनुसार 'एस' का प्रयोग स्वच्छन्दता से सभी लिङ्गों के लिए किया जाता है, इसके विपरीत 'स' का प्रयोग दुर्लभ है ।

"तुम्हारे वियोग में मैंने इस विचार से कि फिर तुम्हें देखूंगी किसी तरह अपने जीवन को धारण किया । अब मैं तुम्हें इस दशा में देखती हूँ । मेरे मनोरथ फलीभूत होने पर भी मेरे सन्तोष की पूर्ति नहीं करते ।"

श्लोक ७८

पुद्वीअ होदिह परै बहु पुरिप विशेषस-वञ्जला राअसिरी
कह ता मइ चिअ इम गीसामण उतिथअ वेहव्व ।

पुद्वी 'पृथ्वी' शौरसेनी पुद्वी । इअ वाले अप्रधान कारकों के रूप माहाराष्ट्री में साधारणतया पाये जाते हैं । परै=पति । होदिह 'होगा' । ता=वैदिक ताव् । गीसामण=नि सामान्य । उअतिथअ (उप+स्था) । वेहव्व 'वैघव्य' 'रक्षापा' ।

■ पृथ्वी का कोई न कोई पति बनेगा । राज्यधारी अनेकों प्रतिष्ठित पुरुषों के साथ घञ्जल है तो फिर मुझ ही पर यह असाधारण वैधव्य क्यों ढाया गया है ?" [पृथ्वी और राज्यधारी राम की दूसरी पत्निया मानी जाती हैं । ' नि सामान्य ', शब्दार्थ जिसमें कोई बात सामी न हो (उन अन्य दो के साथ)] ।

श्लोक ७८

किं पथ त्ति पलस विस-उम्मिस्सेहि लोअणेहि अ दिट्ठ,
विअलिअ लज्जाय मय फुड णाह तुड मुह ति पदण ।

पथ ति (शौरसेनी पद ति) अधिक प्रचलित है । पलत्त=प्रलत्त । विस का अर्थ है विषम, पाठ प्रत्यक्षतया विसमुम्मिल होना चाहिये । विअलिअ (वि+गल्) । फुड § ३८ । पदण (प्र+दद्) भिद्, भिन्न के सादृश्य से क्लान्त रूप, छिद्, छिन्न, इत्यादि, शौरसेनी कधिद् ।

"मैं चिन्नाई 'यह क्या है ?' और मैंने अध-पुत्ती आँखों से देखा, फिर लज्जा को तिलाञ्जलि देकर मैंने चीत्कार किया—'नाथ, नि सग्गेह यद्द तुम्हारा मुख है' ।"

श्लो० ८०

सहिओ तुज्झ विओओ रअणि अरीहि समअ सहीहि य वुत्थ,
वट्ठु तुम ति होच जह पत्ताहे वि जीविअ विअल-त्त ।

विओओ 'वियोग' §८ । वुत्थ=व्युत्प* 'सवेरा हुआ' । पिशल § ३०३, *यस्त अ > उ के साथ । दट्ठु=दृष्टु । होच=होन्त, होई का सन्नन्त रूप । पत्ताहे (टीका=इदानीम्), तुलना करो पत्तिओ 'इतना' ? *पत्ताहे *पत्ताहे *पत्ताहे, तुलना करो तारिस के लिए अपभ्रंश तैसा और दिवस के लिए माहाराष्ट्री दिवह । होच और पिलअन्त हेतहेतुमद्भूत के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, तुलना करो हिन्दी प्रयोग 'यदि होता' ।

' तुम्हारे वियोग को मैंने सहेली जैसी रजनी चरियों के साथ

सहन किया—उसका प्रभात तारों के साहचर्य में हुआ—केवल तुम्हें देखने के लिये यह होता तो मेरा जीवन पिघल कर अनन्त में मिल जाता।”

श्लोक ८१

जाप परलोअ-गए तुमम्मि यधसाअ मत्त सुद दट्ठव्वे,
हरिस-छाणे वि मह डज्झइ अदिट्ठ ददमुद-यह हिअअ ।

मत्त=मात्र, साधारणतया मैत्त § ६६ । दट्ठव्व=द्रष्टव्य । छाणे टीका=स्थान, इसे (त्) थाण होना चाहिये, या शायद हमें हरिस-छाणे पढ़ना चाहिए । छण=क्षण, किन्तु इसका अर्थ साधारणतया ‘उत्सव’ होता है, ‘क्षण’ के लिए अण शब्द आता है, (पिशल, § ३२२) ।

“अब चूँकि तुम परलोक को सिधार गये हो, और तुम मुझे केवल आयास से दिखाई दोगे, उस हर्ष के स्थान में मेरा हृदय घबक रहा है कि मैं दशमुख के बंध को नहीं देख सकी” ।

श्लोक ८२—

याह ए घरेइ मुहं आसायन्धो वि मे ण रम्मइ हिअअ,
एवरि अ चिन्तिज्जन्ते ए विणज्जइ केण जीविअ सरइ ।

रम्मइ का अर्थ है रुणादि (रुष् से रुन्धइ रूप बनता है); यह किसी *रुम् घातु से है जो किसी *लिम् घातु से बने हुए लिमइ=लिखते के सदृश है (पिशल § २६६, ५०७) । एवरि ‘इस पर’, कोई कहते हैं ‘न परे’ से इसकी उत्पत्ति है, किन्तु पिशल इस का प्रतिपाद करता है (§ १८४), तुलना करो एवर ‘केवल’ । चित्तिज्जन्ते सधन्त कर्मवाच्य । वि-एज्जइ कर्मवाच्य (वि+ङा) ।

“मेरे मुख पर कोई आँख नहीं हैं, आशाबन्ध भी मेरे हृदय को नहीं धामता, और जब विचार किया जाता है तो छात नहीं होता कि जीवन किस से रुख है” ।

श्लोक ८३

योर्लीणो मञ्जरदरो मञ्ज कण मरण वि दे पदिवरण,
 निम्बूद पाद तुमे अद्य वि धरद अकथ्यपुत्र मद् दिश्रम ।

योर्लीणो 'पार किया' । यह रूप सधन्त जैसा लगता है, तुलना
 करो मेलद (मिल्) मे मेर्लीण । मञ्जर-दर मगरमच्छों का घर ।
 पदिवरण (प्रति+पद्) । अकथ्यपुत्र तुलना करो सम्बरपु ५६६ ।

'मेरे लिए तुमों समुद्र को पार किया और इससे मर भी गया।
 माघ, तुम चल दिये दो और इसपर भी मेरा हृत्तम हृदय अपने
 आप को यामे हुए है' ।

श्लोक ८४

उग्गादिहि राम तुम गुणे गणेऊण पुरिण मइओ चि जणो,
 गलिअ मदिला-नदाय सम्मरिऊण अ मम लिअसि दिह कह ।

उग्गादिहि 'गायेंगे' । गणेऊण 'गिनते हुए', पूर्वकालिक किया।
 लिअसिदिह भविष्यत् निजन्त (नि+वृत्) । मरिऊण 'याद करते हुए'
 मरद से हृदन्त रूप । *मरद *मरद=सरति शीरसेनी मुमरेदि,
 सुमरिअ । कह 'कथा' ।

"राम, लोग तुम्हारे गुणों और पुण्यार्थों का कीर्तन करते हुए
 तुम्हारे यश को गायेंगे और मुझे ऐसी स्मरण करके कि इसने श्री
 स्वभाष को त्याग दिया वे कथा को बदल देंगे ।"

श्लोक ८५

तुह पाणुक्खअ णिहअ दच्छिमि दद वण्ड मुह णिदाअ तिकअ
 मद्दमाअधेअवलिअ विवरा हुत्ता मणोरहा पवदथा ।

उपलअ, उपलअ के लिए, 'उत्प्रात' नष्ट किया गया । णिहअ
 (नि+हर) । दच्छिमि या दच्छामि अधिक प्रमाणित है (देखो पि-
 छला श्लोक ७७) । णिदाअ=निघात । विवरा=वि+परा हुत्ता, टीका
 =मुला, इसका भी यही अर्थ है किन्तु रूप अर्धमागधी है । वुत्त
 (छत्त) जैसा कि सरयाश्रों में होता है (पिथल ५२०६) । तुलना

करो अर्धमागजी अणन्तमुत्त 'अनन्त समय, अनन्तता से', क से य और उस से ह होजाता है, तुलना करो णिहस §१६। पद-स्थ, टीका=पर्यस्त, उद्विग्न, किन्तु इस दशा में पल्लव्य होगा (र य के) अपना अङ्ग बना लेता है और स्वयं लघन जाता है मद्दथ प्रहस्त, हस्-हस् धातु से, 'कम होना, घटना'।

“मेरे वे मनोरथ कि मैं दशकण्ठ के मुखों को तुम्हारे तीर से छिदे (और) चूरमूर हुए देखूगी मेरे भाग्य के उलटफेर के कारण नष्ट होगये हैं”।

श्लोक ८६

ज तणुअग्निमि वि विरहे पेमा-यन्धेण सङ्गई जणस्स जणो,
त जाअ एवर इम पेच्चन्तीए अ तारिस मज्झ फल।

तणुअ 'छोटा', पेमा=प्रेमा, पेम्म अधिक प्रयुक्त पाया जाता है § ६८। एवर, टीका=केवल='केवल'। तुलना करो एवरि सर्ग ५ श्लोक ८२। नपर से इसकी उत्पत्ति के विषय में पिशल का पेतराज (§१८४), अर्थात् अनुस्वार गौण जैसा लगता है, प्रमाणित नहीं है।

“जिस पात की कोई व्यक्ति प्रेमबन्धन के कारण थोड़े से विरह में भी प्रेमपात्र के प्रति शङ्का करता है ऐसा ही भयकर फल मेरे लिए हुआ है जो मैं इस दृश्य को देख रही हूँ”।

सर्ग १८ श्लोक ६४

अयोध्या को शुभ प्रत्यागमा।

घेत्तूण जणअ तणअ कच्चण लट्ठि व हुअ वडम्मि विमुद्ध,
पत्तो पुरिं रघुवई काउ भरहस्स सप्फल अणु-राअ।

घेत्तूण 'ग्रहण करते हुए' तुलना करो घेत्तु § १३६। लट्ठि (लाठी), यष्टि के साथ इसकी समता अनोखी है। काउ=शौरसेनी मागधी काडु, शौरसेनी में करिडु भी होता है, सप्फल, टीका=सफल, किन्तु इस दशा में सफल होगा (§ ४५) घेत्तु=सफल।

"कञ्चन की लाठी के समान आग (दुःखद) में शुद्ध हुई जनकतनया को लेकर रघुपति भारत को उसके अनुराग का सत्कल देने को नगर में पहुँचे।"

उद्धरण नं० १५

जैनमाहाराष्ट्री

मण्डिय ।

(जेकोवि की पुत्री हुई कथाएँ, न० ६)

वेण्याइये एयरे' मण्डिओ खाम तुण्याओ' पर-वन्-हरण पससो आसी । सो य दुट्ट गण्हो मि सि जणे पगासेन्तो जाणु-देसेण णिअ पव अहावलेय सिसेण यज घण पैटो राय मग्गे तुण्याग सिप्प उव

१—वेण्यायड या वेण्यायड (बर्नातड) पश्चिमी भारतवर्ष का एक नगर। यहाँ यकार लघुप्रत्यय के द्विपु प्रयुक्त हुआ है, महाप्राण य के द्विपु नहीं (देशो पृ० ६) । यर्पर, इसीसे बहुत से आधुनिक नामों में—गर्पर,—नेर ।

जेकोवि ने अपनी हस्त-लिखित प्रति में उवजीवहि, यजमति, इत्यादि पढ़ा है। विचारियों के खाम के लिये उवजीवह, यजमह, इत्यादि अधिक निपमानुद्ध रूप समाविष्ट किये गये हैं ।

अर्धमागधी, जैन-माहाराष्ट्री, जैन-शौरसेनी में किसी शब्द के आरम्भ में अकेला न श्रीर मध्य में द्विव च रह सकता है। हस्तलिखित पुस्तकों में भिन्न ताप दृष्टिगोचर होती हैं ।

२ तुण्याओ या तुण्याओ का अर्थ 'मिलारी' मालूम होता है जिसमें वैजैन्य का भाव भी है। ठीक व्युत्पत्ति अनिश्चित है किन्तु प्रत्यक्ष उसका सम्बन्ध दूर्ण से है, जैसे तुण्या 'तेज चखने वाला' में । पगासेन्तो पगासेह 'दर्शाता है' (प्रकाश) का सप्रत्य रूप । क्>ग् के लिये तुलना करो अर्ध मागधी असोग (६ ११) ।

३ दुट्ट=दुष्ट । गण्हो के संस्कृत में कह भ्रम है जिनमें 'कपोल' 'फोड़ा'

जीवह । चक्रमन्तो वि य दण्ड-धरिण्य पापण किलिम्मन्तो कद्वचि
चक्रमहे । रत्ति च यत्त यणिकुण दब्बजाय घेत्तुण नगर सरिण्हिप
उज्जाणोग-देसे भूमि घर, मत्थ निफिण्णइ । तत्थ य से भगिणी
कणगा चिट्ठह । तस्स भूमि घरस्स मज्जे कूवो । ज च सो चोरो
दब्बेण पलोभेउ सहाय दब्ब योढार आणेइ, त सा से भगिणी
अगड समीये पुब्बनत्थासणे णिवेसिउ पाय सोय लक्खेण पाप
गेहिइऊण तमि कूयप पफिण्णव्वेइ । तओ सो विवज्जेइ । एव कासो
घर्यइ एयर मुसन्तस्स । चोर गगाहा त य सक्केन्ति गेहिइउ । तओ

‘गैदा’ सम्मिलित है, प्राकृत के लिये हेमचन्द्र ने वन (प्रचुरता ?) दिया है ।
दाण्डपाशिको मो० वि० ‘पुलिस का सिपाही’, जेकोवि ने (इस स्थल के
लिप) ‘रात का पहरेदार’, ‘भिषु’, (सम्भवत ग्राम्य अर्थ), लघुमृग (?)
और मापित ‘नाई’ दिया है । अइ ओदा’ (आइ) । अवल्लेव खेपन’, (अव+
लिप्) । लिप्त ‘लिपा हुआ’ । वण ‘घाव’ (वण) । पट ‘पट्टी’ जिससे
पट्टिका आधुनिक पट्टी बनी है । यहाँ बुद्धगण्डो बहुव्रीहि समास मालूम
होता है और उसका अर्थ है ‘बुरे कोड़े वाला’ । यह कूट पुक्ति भ्रम भी
काफी परिचित है ।

१ चक्रमह ‘चकर खगाता है’, ‘भटकता फिरता है’ । पापण ‘अपने
पैर से’ । किलिम्मन्तो किलिम्मइ थक जाता है’ (कम्) का सन्नत रूप ।

२ सत्त ‘छेद’ । जाय (जात) “तायदाइ” । सरिण्हिप ‘पक्षी में’
(सम्+निधा) एगदेश ‘अरा’ । गुजना करो ११ ।

३ पलोमेउ पलोमेइ ‘सुमाता है’ शिजन्त (प्र+क्षुम्) से शुमुचन्त रूप
भवान्त के अर्थ में प्रयुक्त ।

४ अगड प्राकृत शब्द ‘कुँआ’, ‘सोता’ । मत्थ ‘रक्ता हुआ’ (न्यस्त)
निवेसिउ शिजन्त (नि+विश्) असमापिका क्रिया । सोय ‘धोना’ (शौच) ।

५—विवज्जइ ‘नष्ट हो जाता है’ (वि+पट्) ।

६—यचइ ‘जाता है, गुजरता है’ साधारणतया इसका सम्बन्ध मज् से
वतजाया जाता है (ज के स्थान में च, होने का यह एक उदाहरण है), किन्तु

णयरे वदुरयो जाओ । तत्थ य मूलदेवो राया पुव्व भणिय विहाणेण जाओ । कदिओ य तस्स पउरेहि तकर वइयरो जहा, पत्थ णयरे पभूय कालो मुसन्तस्स वट्ठइ कस्सइ तकरस्स, ण य तीरइ केणइ गेहिइउ । ता करेउ किं पि उवाय । ताहे सो अन्न नगरादिस्सय ठवेइ, सो धि ण सकइ चोर गेहिइउ । ताहे मूलदेवो सय नीलपड पाउणिऊण रत्ति णिग्गतो । मूलदयो अणज्जतो एगाए सभाए णि धरणो अच्छइ जाउ, सो मण्डिय चोरो आगन्तु भणइ, को पत्थ अच्छइ ? मूलदेवेण भणिय, अह कप्पडिओ । तेण भणइ, पदि, भण्ण करेमि । मूलदेवो उट्ठिओ । एगभि ईसर घरे यत्त दैय । सु वहु दव्व जाय सीखेऊण मूलदेवस्स उउरि चढाविय । पयहा णयर

पिशाल के विचारानुसार सम्भवत प्राय से, अतएव= 'आवारा किरता है',
 * वृत्तसे से इसकी व्युत्पत्ति अधिक सुगम होगी, (तुलना करो पिशाल प्रामर
 § १०१) हिन्दी बचना ।

१—सक्केन्ति । शक् से या तो सकेइ या सकइ ।

२—विहाण 'विधाय' (वि+धा) ।

३—वइयरो 'कथा' (व्यतिकर) । कस्सइ (कस्य अपि) । तीरइ
 ✓ वृ से कर्मवाच्य 'सिद्ध किया जाता है' ।

४—पाउणिऊण 'धारण करना, पहिना' (धा+हृ) पाठयोमि,
 ज्ञात पाठयिअ ।

५—अणज्जतो 'अज्ञात' अणइ 'जाना जाता है' का सञ्ज्ञन्त रूप (ज्ञा) ।
 विधरणो (नि+पद्) । अच्छइ 'उद्धरता है' § ६० । पिशाल ने इसकी व्यु
 त्पत्ति अच्छति से बतलाई है (प्रामर § ४८ । उन्होंने अन्य उपपत्तियों को
 उद्धृत किया है) । आगन्तु-असमापिका किया ।

६—कप्पडिओ 'यात्री', कार्पटिक । भणइ, भणइ का कर्मवाच्य ।

७—'ईसर' 'धनी मनुष्य' ।

८—चढाविअ चढइ से ज्ञान्त यिजन्त जिसके लिये हेमचन्द्र ने धा+
 रुद् दिया है (तुलना करो हिन्दी चढना) । सुवहु=सुबहुम् ।

घाहिरिय । मूलदेवो पुरभो, चोरो आसिणा कदिदण्णं पिट्ठो
पइ । सम्पत्ता भूमिघर । चोरो त दच्च विहलियेउ आरद्धो । भणिया
य रेण भगिणी, पयस्स पाहुण्यस्मं पाय सोय देहि । ताप फूव तडं
सत्रियेद्वे आसणे शियेमिआ । ताप पाय-सोय लक्षणेण पाओ
गदिओ कूये छुदामि सि । जाव अतीथ सुकुमारा पाया,
ताप णाय, जदस कोइ अणुभूय पुण्य-रज्जो विहलियगो ।
तीप अणुकम्पा जाया । तओ ताप पाय तले सणियओ, एस्स सि
मा मारिज्जिदिसि सि । पच्छा मो पलाओ । ताप बोलो कओ, णट्ठो
एट्ठो सि । सोयसि कद्धिज्जण मग्गे ओलंगो । मूलदेवो राय-पदे
अइसन्निकिट्ठ णाऊण चच्चर सियन्तरिओ ठिओ । चोरो त सिध

१-पयहा=प्रयुक्ता । वाहिरिय=बाहिरिय ' बाहर ' ।

२-कद्धिअ ' निकाजा गया कद्ध से (इ० ४, १८७=कृष्), कृष् से
कट और उससे *कद्ध बनना चाहिये ।

३-विहलियेउ ' गाइना ' (नि+लन्) ।

४-पाहुण्य ' पाहुना ' (प्रापूर्णाङ्) ।

५-तड ' तट ' ।

६-कुद्ध या कुम्भ ' कंकटा है ' । हेमचन्द्र=विष्, बेहतर कुम्भ से जो
अंगरेजी ' Shove ' से मिलता जुलता है ।

७-विहलिय (विहलित) ' कांपता हुआ ' ।

८-सणियओ (सञ्चित) ' सकेत किया ' । मारिज्ज, मारेइ ' मारता है '
का कर्मवाच्य । पलाओ ' भाग गया ' पलायइ ' भागता है ' का क्तात् रूप ।
बोलो=बोला माहाराष्ट्री में ' कदन ' । बोलो=बोली ' तुलना करो
आधुनिक बोलना ।

९-सोयसि ' और वह ' (अपनी) ' तबवार ' (खींचकर) अथवा
य् केवल सन्धि-व्यञ्जन है । ओलंगो ' पीछा किया ' का अर्थ है अनुज्ञा,
किन्तु रूप अथ या अप+जग है ।

१०-अइसन्निकिट्ठ=अति स निकटम् । चच्चर ' चवतरा ' (चार)

लिङ्ग एस पुरिसो छि काठ ककमपण असिणा दुहा-कौठ पडिनि
 यत्तो गओ भूमिघर । तत्थ वसिऊण पहायाए खणीए तओ निगा
 न्त्तूण गओ घाहिं । अन्तराउणे तुण्णागत्त करेइ । राइणा पुरिसेहिं
 सहोविओ । तेण चित्ति य जहा, सो पुरिमो ण्ण मांरिओ,
 अवस्स च एस राया भविस्सइ चि । तेहिं पुरिसेहिं आणिओ ।
 राइणा अम्मुट्ठाणेषु पूइओ आसणे शिवेसाविओ, बहु च पिय
 आभासिओ सलत्तो, मम भगिणिं देहि चि । तेण दिएणा, विवाहिया
 राइणा । भोगा य से सपदत्ता । कईसुवि दिणेसु गएसु राइणा
 मण्डिओ भणिओ, दग्गेण कज्ज ति । तेण सु बहु दग्ग जाय दिएण ।
 राइणा सपूजिओ । अणया पुणो भगिओ, पुणो वि दिएण । तस्स
 य चोरस्स अतीथ सकार सम्माण पठज्जइ । एएण पगारेण सब्ब
 दग्ग द्वाविओ । भगिणिं से पुच्छइ, तीए भएणाति, एसिय वेव रिचि ।
 तओ पुब्बावेइय लेफणाणुसारेण सब्ब दग्ग द्वावेऊण मण्डिओ
 सुत्ताए आरोविओ ।

विग्रह ५ २६६ । अन्तरिओ ' अतर्हित, छिपा हुआ ' ।

१-ककमभ ' छिटिहरी के चोंच की आकृति का ' । दुहा काठ ' फाड़कर '
 (द्विधा हुआ) ।

२-आवण ' हाट ' । सहोविओ (सम्हालित) ।

३-शिवेसाविओ शिवेसेइ के पूरे रूप शिवेसावेइ का ज्ञान्त रूप ।

४-सपदत्ता (सम्प्रदा) । से ' उस (स्त्री) पर ' ।

५-कईसुवि (कतिपुत्र-मपि) ।

६-सकार सकार ' । पठजइ ' प्रयुक्त करता है ' (प्रयुक्त) ।

७-पगार ' प्रकार ', द्वाविओ शिजन्त ज्ञान्त (दा) ।

८-आवेइभ शिजन्त आवेणइ का ज्ञान्त रूप (आभवेइ) शेष ' छिदिस्ति ' ।

मण्डिओ ।

बेर्नातड नगर में मण्डिओ नाम का एक भिखारी रहता था जिसे दूसरों के द्रव्य को हरने की लत पड़ी हुई थी। यह दिखलाने के लिए कि मैं नासूर से पीड़ित हूँ वह अपने घुटने पर चर्बी से लियड़ी हुई पट्टिया बांध कर—जिन्हें सदा गीला रखा जाता था, राजमार्ग पर भिखारी की वृत्ति से जीविका करता था। थका मादा, अपने पैर को लाठी के सहारे टिका कर, वह इधर उधर फिरा करता था। रात को वह (दीवार में) छेद करता था और बहुत सा माल नगर के निकट एक घास के कोने पर एक तहरप्राने में ले जाकर गाड़ दिया करता था। वहाँ उसकी अधिवासित बहिन रहती थी। उस तहरप्राने के बीचोंबीच एक कुँआ था। चोर जिस किसी आदमी को लुभाकर अपने लूट के माल को ढोने के लिए अपने साथ लाता था, उसे उसकी बहिन, जो कुँए के किनारे पहले से ठीक किये हुए आसन पर बैठी रहती थी, घोने के बहाने पैर पकड़ कर कुँए के अन्दर ढकेल देती थी। और इस प्रकार वह बिनपट हो जाता था। इस प्रकार समय बीतता गया और वह शहर को लूटता रहा। चोरों को पकड़नेवाले उसे पकड़ने में असमर्थ थे और शहर में इस विषय में बड़ा हल्ला मच गया था।

इन्हीं दिनों पुर्योक्त विधान से मूलदेव यहाँ का राजा बना था। शहर के लोगों ने उसे चोर की कहानी सुनाई। उन्होंने कहा कि कुछ समय से कोई चोर शहर को लूट रहा है और उसे पकड़ने में कोई भी सफल नहीं हुआ है—इसलिए आप को कोई युक्ति निकालनी चाहिए। इस पर वह नगर की पुलिस का एक और सुपरिन्टेन्डेंट नियुक्त करता है। वह भी चोर को पकड़ने में असमर्थ है। फिर मूलदेव ने स्वयं एक काला चोगा पहना और एक रात को बाहर निकला। मूलदेव जाता है और किसी घर में

अध्यात घेय में लेट रहता है। मण्डितो घोर आता है और कहता है 'यहा कौन टिका हुआ है?' मूलदेव ने कहा, 'मैं एक यात्री हूँ।' उसने कहा, 'आओ मैं तुम्हें आदमी बनाऊंगा।' मूलदेव उठा। किसी धनी आदमी के घर संधि लगाई गई। उसने बहुत सा लूट का माल निकाल बाहर किया और उसे मूलदेव पर लाद दिया। ये नगर की सीमा से बाहर जाने को रवाना होते हैं। मूलदेव आगे आगे चलता है चोर नगी तलवार लिये पीछे पीछे आता है। ये तहखानों में पहुँचे। चोर लूट के माल को गाड़ने में लग गया, और उसने अपनी बहिन से कहा—इम मेहमान के पाँव पधारो उसने गाड़ने को कुँए के किनारे पर रखने हुए आसन पर पिठाया और उसके एक पैर को इस प्रकार पकड़ा मानो उसे धोना चाहती हो, जिससे वह उस को कुँए के अन्दर डकेल सके। चूँकि उसके पैर बहुत नाजुक थे, चोर की बहिन को मालूम हुआ कि यह कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने राज्य सुख का उपभोग किया है और जिसके अंग बड़े सक्षोभशील हैं। उसको उस पर बड़ा तरस आया और उसने ज़मीन की सतह पर उसके पैर का निशान बनाया। "भाग जाओ नहीं तो मारे जाओगे।" इस के बाद वह भाग निकला। चोर की बहिन बिल्लाई—"वह भाग गया है, वह भाग है।" और उस (चोर) ने अपनी तलवार खींची और उसका पीछा करते हुए वह मार्ग पर पहुँचा। जब मूलदेव को मालूम हुआ कि मैं राजमार्ग पर चोर के बिलकुल पास ही हूँ तो वह किसी घोपाल में एकलिंग के पीछे छिप रहा। चोर को इस शिव लिंग में अनुप्य का भ्रम हुआ, उसने उसके दो टुकड़े कर डाले और फिर अपने तहखाने को लौट चला। रात्रि का प्रकाश मन्द होने तक वह वहाँ ठहरा रहा, फिर बाहर निकला और वहाँ से चलता बना। बाजार में वह भिखारी की तरह रहता है। राजा ने उस को बुलाने के लिये आदमी भेजे। उसने अपने मन में सोचा, "तो

यह आदमी मारा नहीं गया, और सन्देश नहीं कि यह राजा ही निकल आये।”

राजा उसको प्रणाम करते को उठा, और उसने उसको आसन पर बिठाया। बहुत कुछ प्रिय भाषण के बाद राजाने उससे कहा, “मुझे अपनी यहिन दे दो।” उसने अपनी यहिन दे दी और राजा ने उसके साथ विवाह किया। उसको (घोर की यहिन को) सुयोपमोग के लिए धन-सम्पत्ति मिली।

जब कुछ दिन बीत गए, राजा ने मण्डिओ से कहा, ‘मुझे कुछ धन चाहिए।’ सो उसने उस को बहुत सा धन दिया। राजा ने उस की प्रतिष्ठा की। फिर उसने धन मागा, और फिर धन दिया गया। यह घोर का अत्यधिक सत्कार और सम्मान करता है। इस प्रकार उसने घोर से उसका सारा धन ले लिया। वह उसकी यहिन को पृच्छता है। उस ने कहा, उसके पास इतनी ही सम्पत्ति थी। फिर उसने पहिले सुनाई हुई फेदरिस्त के अनुसार यह सब धन लोगों को दिलवा दिया, और मण्डिओ को गली पर चढ़ा दिया।

उद्धरण न० १६

जैनमाहाराष्ट्री

दोमुह

सम्पद् दुम्मुहचरियम्। अतिथि इह एव भारदे थासे कपिल्लं नाम पुरम्। तत्थ हरिबुल्लवससभयो जओ नाम राया। तस्स गुणमात्ता नाम भारिया। सो य राया तीण सह रज्ज सिरि अणु हवन्तो गमेइ काल। अघया अत्थाणमण्डव द्विपणा पुच्छिओ दू ओ — किं नरिय मम, ज अघराईण अतिथि? दूण मणिय—वेव,

१—सम्पद्=संपत्ति, धन। दुम्मुह=दोमुह=द्विमुख=दो मुखवाला।

२—अत्थाण=आत्थान=सभामण्डप। ‘दूओ दूत’।

चित्तसमा तुम्ह गतिथ । तयो राइरा आणत्ता थयईणो, जदा लहु
चित्तसम करेह । आपसणाणन्तर समादत्ता । तरय धरणीय
अधमाणीय कम्मगरेहि पञ्चमदिणे सन्न रयणामओ जलणो-य्य तेय
सा जलन्तो दिट्ठो मद्दा मउडो, स हरिसेहि सिट्ठो जय-राइणो ।
तेण यि परितुट्ठ-मणेण न-दी-रय पुच्चय उत्तारिओ भूमि विधराओ
पूइया थयइम् आईणो जहारिह-यरयम् अईहि । थेव-कारेण वि
निम्माया उत्तुह-सिहरा चित्तसमा । सोएण दिणे कओ चित्त-समाप
पयेसो । आरोपिओ महल-तूर सदेयँ अप्पणो उच्चिमहे मउडो । तप्प
भायेण दो ययणो सो राया जाओ । लोपेण तस्स दोमुडो सि नाम कय ।

अइक्खन्तो कोइ कालो । तस्स य राइणो सत्त तणया जाया ।
डुहिया मे भरिथ सि गुणमाला अदिह^१ करेह । मय-
णाभिहाणस्स जक्खस्स इच्छइ उयाईय । अत्तया य पारियाय

१—आयत्ता=आजुप्ता । थयइ=त्यपति=कारीगर ।

२—समादत्ता=समा √धा+त=समाहित=प्रारम्भ किया । थ को उ हो जाता
है, गुलना करो § ७ । 'धा' धातु के स्थान में यहाँ 'रम्' धातु की कल्पना
असम्भव है ।

३—धरणीय लक्षमाणीय=धरण्यां स्थापयमानायाम् ; जब ज़मीन खोदी जा
रही थी । कम्मगर=कर्मकर=कारीगर ।

४—सिट्ठो (साइइ का व्रान्त)=शिष्ट (* शासति)=कहा गया ।

५—थवइमाइयो=अपत्यादयः=कारीगर आदि, 'व्' सन्धि व्यञ्जन है ।

६—थेव (पाकी में भी थेव)=थोड़ा । √स्तिप्=त्यक्ता ।

७—तूर=तूर्य=बाघ ।

८—ओपुणा=ओगों के द्वारा ।

९—अदिह=अपठि, विन्ता ।

१०—जक्खस्स=वधस्य, यध को । इच्छइ, प्रतिज्ञा करता है । उयाइय
(उप+धा+√रु) उपायनम् भेद ।

मञ्जरी-उचलम्म सुविण सुइया तीसे दुइया जाया । कय च वद्धावण-
य' । दिअ जफस्स उवाइय । कय च तीए नाम मयणमञ्जरी कमे
ए य जाया जोअणत्था ।

इओ य उज्जेणीए चएडपज्जोय राया । तस्स दूएण साहिय,
जइ—राया दोमुहो जाओ । पज्जोएण भणिय—कइं? दूएण भणिय
तस्स घरिसो मउडो अत्थि, तम्मि आरोविण दो मुहाणि हवन्ति ।
मउडस्स उवर्णि पज्जोयस्स लोभो जाओ । दूय दोमुह—राइणो पेसेइ—
एय मउड रयण मम पेसेहि । अह न पेसेसि जुअससज्जो होहि ।
दोमुह राइणा दूओ भणिओ पज्जोय-सन्तिओ—जइ मम ज मग्गि
य वेह, तो अह अवि मउड वेमि । दूएण भणिय—किं मग्गह ?
राइणा भणिय—

वेह नलगिरी हत्थी अग्गीभीरु तहा रहवरो य ।

जाया य सिवा देवी लेहारिय लोहजयो य ॥

एय पज्जोयस्स रज्जसार । पडिगओ दूओ उज्जेणिं । साहिय
पज्जोयस्स दोमुह सन्तिय पडिअयण । कुँदो अइए पज्जोओ, चलि
ओ चउरग बलेण—दोअि लफया मयगँलाण, दोअि सइस्सा रहाण,
एच अजुपाणि हयाण, सत्त कोडीओ पयाइ जण्ण । अणवरय-
पयाएवँहि पत्तो पचाल-जणवय सन्धि । इयरो वि दोमुहराया

१—सुइय=सुचित, (सूच्) प्रकट की, शीरसेनी सुइद । सुविण=स्वप्न । परिवाय=परिहात, कल्पवृक्ष । वद्धावणय=वधोपन, जातकर्म ।

२—पेसेइ=प्रेषयति, भेजता है ।

३—जुअससज्जो=युद्धसज्ज, युद्ध के लिये तैयार ।

४—कुँदो=कुद ।

५—मयगल=मदकल=मद्य गल, मस्त हाथी ।

६—पयाइ=पदाति, पैदल सैनिक ।

७—अणवरय=अनवरत, निरन्तर ।

चउरगवल-समग्गे नीडरिओ नयराओ । गओ पडिसमुह
पज्जोयस्स । पचाल विसय-सन्धीए रइओ गुरुह-वूहो पज्जोएण,
सागरवूहो दोमुदेण । तओ सम्पलग्ग दोएह वि बलाण जुग्ग ।
सो मउड-रयण पडोवण अजेओ दोमुदराया । भग्ग पज्जोयस्स
यल । धन्धिऊण पज्जोओ पवेमिओ नयर । दिगण चलणे कइए ।
सुदेण ततए पज्जोयराइणो वच्चइ कालो ।

अनया दिट्ठा तेण मयणमज्जरी । जाओ गाढाण्णराओ, तओ
कामागिणा डग्गमाणस्स चिन्ता-सन्ताव गयस्स बोलीया कहि
राई । पच्चूसे य गओ अथाण दिट्ठो परिमिलाण मुह-सरीरो
दोमुह राइणा, पुच्छिओ सरीर पउत्ति, न देइ पडिउयण । सास
केण य गाढयर पुट्ठो । तओ दीह नीससिऊण जपिय^१ पज्जोएण-
मयण-यसगस्स, नरवर धाहि विघट्ठस्स तह य मत्तस्स ।
हुपियस्स मरन्तस्स य लज्जा दूखग्गिया होई ॥
ता जइ इच्छसि कुसल पयच्छ तो मयणमज्जरिं पय ।
निय धूय मे नरवर, न देसि पत्तिसामि जलणम्मि ॥

१-समग्गे=समग्र ।

२-रइओ=रचित । वूह=व्यूह, मोरचाव-दी ।

३-अजेओ=अजेय ।

४-मग्ग=भग्न, नुटित ।

५-कइए=कटक, वेदी ।

६-डग्गमाण=दृढमाण, जलता हुआ । बोलीया=बीत गई, तुलना करो बोलेह ।

७-नीससिऊण=छम्पी साँव छेता हुआ । जप्पिय=जपितम् ।

८-धाहि=व्याधि । विघट्ठ=(वि+√घस्)=विघस्त, विप्रस्त, पीडित ।

९-हुविअ=हुपित, दूखिअ=दूखिगन्त, दूर परित्यक्त ।

१०-पूय=पूया=माहाराष्ट्री पूमा सौ० मा०=भूता=भूता *भूता से,
दुष्टिता ।

तमो दोमुदेण निच्छय नाऊण दिआ । सोदण दिण-मुदुत्ते कय
पाणिग्गदण । कहनय दिणेहिं धरिओ, पूरऊण विसज्जिओ, गओ
उज्जेणि पज्जोओ ।

अथया आगओ इन्दमहसयो । दोमुद-राइणा आइट्ठा नयर जणा
उग्मेह इन्दकेऊ । तओ मङ्गल-नन्दी महारवेण धवल धय-वडाहो
डोय धिखिणी जालालकिंओ अबलविय-यर-मङ्ग-दामो मणि-रयण
माला भूसिओ णाणा विह पलयमाण फल निवह विञ्चइओ उग्मिओ
इन्दकेऊ । तओ नयन्ति नट्टियाओ, गिज्जंति सुकइरइया कव्व
यन्धा, नयन्ति नर-सघाया, दीसन्ति विट्ठि मोहणाइ इन्दयालाइ,
इन्दयासिणो य दिज्जन्ति तम्योलाइ, सिप्पन्ति कप्पूर-कुकुम जल
छडा, दिज्जन्ति महा दाणाइ, वज्जन्ति मुहगाइ आओजाइ । एव
महा मोएण गया सत्त यासरा । आगया पुण्णिमा । पूरओ महा-
निच्छइेणं कुलुमयरधारिहिं दोमुद-राइणा इन्दकेऊ । महा तूर रवेण

१—धरिओ=पूत, मतीचा की ।

२—आइट्ठा=आदिष्टा, आज्ञा दिये गए ।

३—उग्मेह=($\sqrt{\text{उग्मेह}}$), उग्म (उष्ण) से जोड़ उत्पापय, स्थापित करो ।
ऊर्ध्व से उग्म (उद्ध, उद्भू भी) होजाता है । तवर्ग को पवर्ग आवेश का उदाहरण,
द्वादश=बारस । केउ=केतु ।

४—धय=ध्वज । वडाहो=पताका । डोय=दारुहस्त ? cf पञ्चावी 'डोई' ।

५—विञ्चइओ=अलङ्कृत । प्राकृत धातु ।

६—गिज्जन्ति=गीयंते, गाए जाते हैं, § १३२ ।

७—इन्दयासिणो=ऐन्द्रयासिक; जादूगर ।

८—सिप्पन्ति=सिप्पंते, पेंके जाते हैं, § १३२ । (प्रा० धा० सिप्पइ) । छडा=
छट्टा; बाहुल्य । वज्जन्ति=वाच्यंते, बजाए जाते हैं । मुहगा=मुरज, डोन् । आओजा=
आतोष, एक साथ ।

९—विश्वकु=(वि+ $\sqrt{\text{कुह}}$) दान, औदार्य ।

अन्नमि दिरो पदिओ मेइणीए । विट्ठो राइणा अमेउम मुस दुगम
 नियदिओ अणेण परिलुप्पमाणो ये । दट्टण चिन्तिय धीर
 विज्जु-रेद इय चञ्चलाण परिणाम विरमाण रिद्धीण । एय चिन्
 यतो सयुओ, पत्तेययुओ जाओ । पञ्च मुट्ठिय लोय वाऊण पय
 ओ । उक्तं चः ।

जो इन्द्रेऊ सुयलक्षिय त दट्ट पट्ट पयिलुप्पमाणम् ।
 रिद्धिं अरिद्धिं समुपेहिवाण पञ्चाल राया वि समिकलं चम्प ॥

अनुवाद

अब हिमुर का चरित्र (प्रारम्भ किया जाता है) —

भारत के इस देश में काम्पल्य नामक नगरी थी । यहाँ हरि
 कुल नाम से प्रसिद्ध पशु में जय नामक राजा था । उसके मुख
 माला नाझी पड़ी थी । वह अपनी भार्या के साथ राज्यलक्ष्मी का
 उपभोग करता हुआ (सुखपूर्वक) कालयापन करता था । एक
 दिन समामण्डप में बैठे हुए राजा ने दूत से पूछा—पेसी कौन सी
 घरतु है जो दूसरे राजाओं के (पास) है और मेरे (पास) नहीं है ।
 दूत ने कहा—राजन्, आप के (यहाँ) चित्रसभा नहीं है । तब राजा
 ने स्वपतियों को आवा दी—‘शीघ्र ही चित्रसभा बनाओ’ । आवा होते

१—अमेउम=अमेय, ‘मल’ मुख=मुख । परिलुप्पमाण=परिलुप्पमान,
 गष्ट होता हुआ ।

२—विज्जु=विज्जु ।

३—पत्तेय-युओ=प्रत्येक युद्ध, जिसको अकेले ज्ञान छात्र होता है ।

४—मुट्ठिय=मुट्ठि, लोय=लुप्यन, नोचना । पयइओ (प्र+पञ्)
 सन्यासी हो गया ।

५—समुपेहिवाण=असमापिका क्रिया (सम्+उत्+प्रेष)

ही वे कार्य में लग गये। भूमि खनने का कार्य चल रहा था कि पाचवें दिन कार्यकर्ता (कारीगरों) ने अग्नि के समान प्रकाशमान सर्वरत्न पश्चित महामुकुट देखा, और (यह समाचार) जय राजा से निवेदन किया। उसने अति हर्षित होकर मङ्गलपाठा नन्तर उसे पृथिवी के विषर से निकलवाया। (इसके पश्चात् राजा ने) कार्यकर (कारीगर) आदियों का यथोचित घस्त्रादिकों से सत्कार किया। थोड़े ही काल में ऊँचे ऊँचे शिखरोंवाली चित्रसभा तैयार हो गई। शुभ दिन में (राजा ने) चित्रसभा में प्रवेश किया। माङ्गलिक पाद्यध्वनि के साथ अपने शीर्ष पर मुकुट रखा। उस के प्रभाव से वह राजा दो मुख-वाला हो गया। लोगों ने उसका द्विमुख नाम रख दिया।

कुछ समय बीता। उस राजा के सात पुत्र उत्पन्न हुए। कन्या के अभाव से शुणमाला अधीर रहने लगी, और उसने मयण नामक यक्ष को भेंट चढ़ाने की प्रतिष्ठा की। कुछ काल के पश्चात् उसके स्वप्न में प्राप्त पारिजात मञ्जरी द्वारा सूचित कन्या उत्पन्न हुई। उसका जातकर्म किया गया। यक्ष को (प्रतिष्ठात) भेंट दी गई। (कन्या का) नाम मयणमञ्जरी रखा गया और यह क्रम से यौवन को प्राप्त हो गई।

उज्जयिनी में चण्डप्रघोत नामक राजा था। उसके दूत ने सुनाया कि ' राजा द्विमुख हो गया है।' प्रघोत ने कहा— ' कैसे ? ' दूत ने कहा— ' उसके ऐसा ही मुकुट है। उसके धारण करने पर दो मुख हो जाते हैं।' (यह सुनकर) प्रघोत का मन मुकुट पर ललचा गया। (उसने) द्विमुख राजा को दूत भेजा— ' इस श्रेष्ठ मुकुट को मुझे भेज दो। यदि नहीं भेजते तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।' राजा द्विमुख ने दूत से प्रघोत के लिये सन्देश कहा— ' यदि (मुझे) जो मैं माँगूँ वो तो मैं भी मुकुट देता हूँ।' दूत ने कहा— ' क्या माँगते हो ? ' राजा ने कहा—

‘करी सु नलगिरि वेहु, अग्रिमीर रथ घर तथा ।

शिवा देखि पटरागि, सोहजङ्ग लिपिकर सहित ॥’

यह प्रघोट के राज्य का सारभाग था । दून उज्जयिनी को लौट गया । (उसने) द्विमुख का सन्देश रूप उत्तर प्रघोट को सुनाया प्रघोट अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने चतुरङ्गिणी सेना लेकर प्रस्थान कर दिया । (उसके साथ) दो लक्ष मस्त हाथी, दो सहस्र रथ पचास सहस्र घोड़े, और सात फोटी पदाति थे । शीघ्रता से प्रयाण करता हुआ वह पञ्चाल देश की सीमा पर आ पहुँचा । उधर राजा द्विमुख भी चतुरङ्ग सैन्यसहित राजधानी से निकला और प्रघोट के सम्मुख चला । पञ्चाल प्रान्त की सीमा पर प्रघोट ने (अपनी सेना का) गरुड-व्यूह और द्विमुख ने सागर-व्यूह बनाया । तब दोनों सेनाएँ युद्ध में जुट गईं । थोड़ा मुकुट के प्रभाव से राजा द्विमुख अजेय तो था ही । प्रघोट की सेना नष्ट हो गई । प्रघोट को बाधकर राजधानी में लाया गया । उसके पैर में बेड़ी डाली गई । वहाँ राजा प्रघोट का समय आनन्द से बीतने लगा ।

एक दिन उसने मदनमञ्जरी को देखा । (यस देखना था कि) गाढ़ा अनुराग उत्पन्न हो गया । इसके अनन्तर कामाग्नि से जलते हुए, तथा चिन्ता रूप व्याधि से ग्रस्त (उस प्रघोट की वह) रात्रि यही कठिनता से बीती । प्रातः काल (वह) सभामण्डप को गया । राजा द्विमुख ने उसके मुख और देह को मुरझाया हुआ देखा । शरीर की दशा पूछने पर वह उत्तर नहीं देता था । (द्विमुख ने) डर कर अधिक बलपूर्वक पूछा । तब तम्बी सास लेकर प्रघोट ने कहा—

दोहा—मदन-वशग जो होदि, व्याधि मुक्त मद मत्त अथ ।

कुपित मृत्यु आसथ, लज्जा इनसे दूर रह ॥ १ ॥

कुशल यदी मम इष्ट, मदनमञ्जरी व्याह दो ।

निज दुहिता नर-चारु, नहि तो बहि ममाश्रय ॥ २ ॥

इस पर द्विमुख ने (उसके) निश्चय को जान, धामदान कर दिया (और) शुभ दिवस तथा मुहूर्त में उसका विवाह कर दिया । (फिर उसे) कुछ दिन (और) ठहरा कर सत्कार पूर्वक बिदा कर दिया । प्रद्योत (अब) उज्जयिनी चला गया ।

कुछ समय के पश्चात् इन्द्रमहोत्सव आ गया । राजा द्विमुख ने नगर निवासियों को आदेश किया कि इन्द्रध्वजा खड़ी करो । तब मातृलोक स्तुति पाठादि के महान् शब्द के साथ इन्द्र ध्वजा खड़ी हुई । उसकी झडिया भ्रंत थीं । घुंघरू घाली घटियों की माला से बद्ध अलंकृत थी । उस पर सुन्दर बदनवार लटक रहे थे । वह श्रेष्ठ मणियों की माला से विभूषित (और) नाना प्रकार के फलों के लटकते हुए समूहों से लदी हुई थी । उसके स्थापित होने पर नट लोग नाचने लगे, श्रेष्ठ कवियों की बनाई हुई कविताएँ गाई जाने लगीं, मनुष्यों के झुण्ड नाचने कूदने लगे, दृष्टि को मुग्ध करनेवाले जादू के खेल होने लगे, जादूगरों को ताम्बूल (पान) दिये जाने लगे, कपूर तथा कुकुम मिश्रित अलङ्घिका जाने लगा, मुक हस्त होकर दान दिया जाने लगा, मुरजभेरी आदि बजने लगे । इस प्रकार बड़े राग रग से (बहल-पहल में) सात दिन व्यतीत हुए । पूर्णिमा आ पहुची । राजा द्विमुख ने इन्द्र-केतु की पूजा भड़े औदार्य सहित कुसुम-यस्त्रादिक से की । दूसरे दिन (वह ध्वजा) घाघों के घोर शब्द के साथ पृथिवी पर गिरी । राजा ने उसे पुरीष और मूत्र से दुर्गन्धित स्थान में पड़ा हुआ और लोगों से लुटे जाते देखा । (और) देखकर सोचने लगा कि— 'विजली की चमक के समान चञ्चल और परिणाम विरस समृद्धियों को धिक्कार है ।' इस प्रकार विचारते हुए उसे ज्ञान प्राप्त हो गया और वह स्वयं प्रत्येकबुद्ध बन गया । पञ्च मुष्टि केश-लुञ्चन करके वह सन्यासी हो गया । कहा भी है—

शोमन भूषित इन्द्रध्वज, गिरत तुटत तिहि देख ।
श्रद्धि असार विचारि मो, पञ्चाल नृप विवेक ॥

उद्धरण नं० १७

जैनमाहाराष्ट्री

यह उद्धरण जोधपुर से लगभग २० मील उत्तर को बसे हुए घटपाल गांव के निकट उपलब्ध शिलालेख से लिया गया है। मूल और उसका अनुवाद १८६५ में रायल एशियाटिक सोसाइटी के पत्र, वॉल्यूम २७, पृष्ठ ४१३, में प्रकाशित हुआ था। शिलालेख का समय सवत् ६१८ दिया गया है। उसमें लिखा है कि किसी कक्कुक नाम के सामन्त ने एक जैन मन्दिर की स्थापना की, एक बाज़ार बसाया और दो स्तम्भ खड़े किए।

ओं सग्गापवग्गमग्ग पढम सयत्ताण कारण देव ।

णीसेस दुरिअ-दलण परम-शुक्क एमह जिण खाह ॥ १ ॥

रहु तिलओ पडिहारो आसी सिरि लन्खणो चि रामस्स ।

तेण पडिहार बसेो समुण्णस्स पत्थ सम्पत्तो ॥ २ ॥

धिण्णो हरिअन्धो मज्जा आसि चि अत्तिभा महा ।

ताण सुओ उप्पणो वीरो सिरि रज्जिलो पत्थ ॥ ३ ॥

अस्स वि एरहड्ढ एमो जाओ सिरि एाहड्डो चि एअस्स ।

अस्स वि तणओ ताओ, वस्स वि जस वद्धणो जाओ ॥ ४ ॥

श्लोक १—अपवग्ग ‘अपवर्ग’ (अप+वृज्), मोक्ष। णीसेस ‘सब’ (निरोप) § ६१। दुरिअ ‘पाप’ (दुर्नित)।

श्लोक २—पडिहारो ‘प्रतिहार’, द्वारपात्र, अथवा एक जाति का नाम। वन्सो बेइतर पत्तो।

श्लोक ३—मज्जा ‘मायो’ § १०।

अस्स वि चन्दुअ णामो उप्पण्यो सिल्लुओ वि पअस्स ।
 मोटो चि तस्स तणुओ अस्स वि सिरि भित्तुओ चाई ॥ ५ ॥
 सिरि भिल्लुअस्स तणुओ सिरि कको गुरु गुणेहि गारविओ ।
 अस्स वि कफकुअ णामो दुल्लदेवधीप उप्पण्यो ॥ ६ ॥
 ईसिविआस हसिअ, महुअं भणिअ, पलोइअ सोम्म ।
 णमय जस्स ण दीण रो (सो) थेओ धिरा मेत्ती ॥ ७ ॥
 णो जम्पिअ, ण हसिअ, ण कय, ण पलोइअ, ण सभरिअ ।
 ण धिअ, ण परिम्ममिअ, जेण जेण कज्ज परिहीण ॥ ८ ॥
 सुत्था दुत्था वि पया अहमा तह उत्तिमा वि सोक्केण ।
 जणणि व्य जेण धारिआ शिख णिय मण्डेले सव्वा ॥ ९ ॥
 उअरोह राअ मच्छुर लोहेहि इ थाय यज्जिअ जेण ।
 ण कओ दोएह विसेसो घवहारे कवि मण्य पि ॥ १० ॥
 विअवर दिण्णाणुज्ज जेण जण रज्जिऊण सयस पि ।
 णिमच्छुरेण जणिअ दुट्ठाण वि दण्ड णिट्ठवण ॥ ११ ॥

श्लोक ५—शिलालेख में नामा शब्द है किन्तु यह नामो का, जैसा कि दूसरे श्लोक में है, गलत रूप है। चाई 'उदार' (=स्वागी), गुलना करो अर्थ मागधी चत=व्यक्त। § ४४। § ११६। गारविओ का अर्थ है गौरवित, 'बहुत प्रतिष्ठित', गुलना करो माहाराष्ट्री अर्थमागधी जैन माहाराष्ट्री गारव, माहा राष्ट्री शौरसेनी गौरव (=गौरव), पालि गरु, संस्कृत गरीयस्।

श्लोक ७—णमय, शायद इसको सही करके यमिय 'नमता' कर दिया गया है। थेओ=थेको 'थोड़ा'।

श्लोक ९—पया=प्रजा, णिय=निज।

श्लोक १०—उअरोह 'अनुग्रह' अथवा 'द्वेष, अवरोध' (उप+रुध्)। मच्छुर 'मासर', गुलना करो वच्छ § ३६। इ=इति। अर्थमागधी में दीर्घ स्वर के बाद 'ति' इ हो जाती है (पिशख § ६३)। जैन माहाराष्ट्री में मणिय वि अधिक प्रयोजित है।

श्लोक ११—दिअ 'दिज' § ४२। णिट्ठवण 'नियन्त्रण' (नि + स्थापय)

घण रिद्ध समिद्धाण वि पउराण शिअकरस्स अम्भदिअ ।
 लय्य सय च सरिसन्तण च तद् जेण दिट्ठाइ ॥ १२ ॥
 एव जोव्वण रुअ पसाहिपण सिंगार गुण गरुक्खेण ।
 जणवय शिज्जमलज्ज जेण जेण येय सचरिअं ॥ १३ ॥
 यालाण गुरु तरुणाण तद् सदी गयययाण तणओ व्व ।
 इय-सुचरियहि शिअ जेण जणो पालिओ सव्वो ॥ १४ ॥
 जेण एमन्तेण सया सम्माण गुणयुद्द कुणन्तेण ।
 जप तेण य सलिअ दिण्ण पणइण घण शिवद् ॥ १५ ॥
 मरमाड-यल्ल-तमणी परिअका अज गुज्जरत्तासु ।
 जाणिओ जेण जणाण सचरिअ-गुणेहि अणुराओ ॥ १६ ॥
 गहि ऊण गोदणाइ गिरिअि आलाउ (सा) ओ पल्लीओ ।

इत्थ स्वर के लिपि तुलना करो ठवेइ=स्थापयति § १७ ।

श्लोक १२—पठर=शौरसेमी पोर (=पौर) § ११ । अम्भदिअ=अम्भधिक । कीलहीन ने सरिसत्तणअ=सदशरवनम् च को प्रस्तुत किया,—तय्य=वैदिक त्वन-त्वं के स्थान में अधिक प्रकाशित है । (उनका इस श्लोक का अनुवाद विचारणीय है और उन्होंने ने लिखा है कि सम्भवतः मूल का शब्द विम्यास अशुद्ध है) ।

श्लोक १३—गरुअ 'भारी' 'भरा हुआ'=गरवय, तुलना करो पाणि गद; सत्तुत गुदक (पिशङ्ग § २११) । जणवय=जनपद । शिज्ज=नेत्र 'निम्न' । येय=नैष ।

श्लोक १४—गय वय 'बड़ा' (=गत वयस्), इय, जैन महाराष्ट्री अर्थ मागधी=इति ।

श्लोक १५—सवा=सदा । पयइ=प्रययिन् ।

श्लोक १६—मरमाड, सम्भवतः=मारवाड । गुज्जर=गुर्जर 'गूजर' । यहाँ हमें आधुनिक 'गुजरात' का वह एक अधिक प्राचीन रूप उपलब्ध होता है । परिअका अज की कोई व्याख्या नहीं दी गई है ।

जणिआओ जेण विसमे बढणावण मण्डले पयड ॥ १७ ॥
 गीलुप्पल दल-गन्धा रम्मा मायन्द महुअ विन्देहिं ।
 घर-इच्छु पण-च्छरणा एता भूमी कया जेण ॥ १८ ॥
 घरिस सपसु अ णवसु अट्टारसमंगलेसु चेतमि ।
 णवसुते विहु दत्ते सुदवारे घवल बीआप ॥ १९ ॥
 सिरिकक्कुपण दट्ट महाजण विप्प पयइ वणि यहुल ।
 रोहिन्सकूअ गांमे णियेसिअ कित्ति विस्सीए ॥ २० ॥
 मङ्गोअरमि एको, बीओ रोहिन्सकूअ-गाममि ।
 जेण जसस्स प पुजा एप त्थम्मा समुत्थविआ ॥ २१ ॥
 तेण सिरिकक्कुपण जिणस्स देवस्स दुरिअ णिदलण ।
 कारविअ अचलमिम भवण भत्तीए सुद-जणय ॥ २२ ॥
 अप्पिअमेअ भवण सिद्धस्स घणेरस्स गच्छमि ।
 तह सन्त जस्य अम्बय वणि भाउड पमुह गोट्ठीए ॥ २३ ॥

श्लोक १७-गोहण ' गायों का समुदाय ' (गो घन) । पङ्क्ति ' मीपक्षियों का समुदाय ' । आलाउल=ज्वालाकुल, पयड=प्रकटम्, माहाराष्ट्री पञ्चद अर्ध मागधी पगड ।

श्लोक १८-मायन्द ' आम का वेद ' (माकन्द) ।

श्लोक १९-अगल (=अगल) पारिभाषिक ढगसे तिथियों में प्रयुक्त किया जाता है देखो इडियन ऐंटीक्वेरी, वील्यूम १२, पृष्ठ २१, नोट २२ । विहु ' विष्णु ' चन्द्रमा । इत्थ=इत्थ-नक्षत्र । बीअ ' दूसरा ', अर्धमागधी जैन माहाराष्ट्री बीय, विह्य ।

श्लोक २०-महाजण विशेषण के तौर पर ' सौदागरों के लिये ' । पयइ ' पैदल सैनिक ', पयाइ ' पदाति ' भी होता है ।

श्लोक २१-अपिअ (अपित) । गच्छ ' परम्परा ', ' वंश ', अर्थात् ' शाखा ' । गोट्ठी ' गोष्ठी ', समाज ।

अनुवाद

१—ओम् ! स्वर्ग और अपर्ग के मार्ग, सकल वस्तुओं के प्रथम कारण, नि शेष दुरितों को दहन करेवाले परम शुद्ध, जितनाथ को नमस्कार करो ।

२—धी सत्पण रघुबलतिलक राम के द्वारपाल थे। इससे प्रतिहार-वश यहाँ उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है ।

३—हरिचन्द्र नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी भद्रा नाम की क्षत्रियाणी थी । उनके रज्जिल नाम का एक पौर पुत्र उत्पन्न हुआ ।

४—उसके भी नरमट्ट नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसके नाहट्ट (=नागमट्ट) ; उसका पुत्र ताट, और उसका पुत्र यशोधर्मेय था ।

५—उसके चन्दुक उत्पन्न हुआ, और उसके शिल्पुक। उसका पुत्र मोटो, और उसका त्यागशील भिल्लुक हुआ ।

६—धी भिल्लुक के कणो नाम का अत्यन्त गौरवाम्बित और उदात्त गुणों से युक्त तनय हुआ, और उस के पुंसंभवेधी से कपटुक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ।

७—उसका दास अधधिली (कलि के समान) है, उस का मापण मधुर, धितयन सौम्य, नम्रता अर्दीन, शेष शणिक और मैत्री स्थिर है ।

८—उसने कभी कोई ऐसी बात नहीं कही, कोई ऐसी हसी न हसी, कोई ऐसा काम न किया, कोई ऐसी दृष्टि नहीं डाली, कोई ऐसी बात याद नहीं की जिससे मनुष्य जाति का उपकार न हुआ हो ।

९—उसने जानी की भाँति अपने राष्ट्र के अन्दर अपनी प्रजा के निर्धन और धनी, अधम और उत्तम सभी लोगों को सुख से रक्षित है ।

१०—अनुग्रह, राग, द्वेष या क्रोध के कारण कर्तव्यपथ से

विचलित होकर उसने कमी भी व्यवहार में प्रतिपक्षियों के प्रति कोई भेद भाव नहीं दिखलाया है ।

११—द्विजवरों की दी हुई शिक्षा का अनुसरण करते हुए उस ने सारी प्रजा को प्रसन्न रक्खा है, और मत्सर रहित होकर दुष्टों को दण्ड दिलाया है ।

१२—धन से समृद्ध नागरिकों पर उसने अपने राजस्व से भी अधिक कर लगाया है (?), एक लाख और एक सौ और इसी तरह (?) ।

१३—यद्यपि वह यौवन और सौन्दर्य के लावण्य से अलंकृत था और शृङ्गार के गुणों से गौरवान्वित था, उसने प्रजा के साथ कमी ऐसा आचरण नहीं किया जिससे उस को लोगों का निन्दा-भाजन बनना पड़ा हो अथवा लज्जा को तिलाञ्जलि देनी पड़ी हो ।

१४—वह यशों का गुरु था, इसी प्रकार तरुणों का सखा और बुढ़ों का पुत्र जैसा था, इस प्रकार के सदाचरण से उसने निरन्तर सभका पालन किया है ।

१५—सदा विनीतता से सम्मान प्रदर्शित करते हुए, गुणों की प्रशंसा और मधुर मापण करते हुए उसने अपने प्रणयियों को प्रचुर धन दिया है ।

१६—अपने सधरित्र और गुणों से उसने मरुमाड, बल्ल, तमणी और गुजरात में लोगों के हृदय को (अनुराग) जीत लिया है ।

१७—विषम घटनानक मण्डल के पहाड पर के गावों को उस ने पुल्लमपुल्ला अग्निसात् (ज्वालाकुल) कर दिया है और गोधन को वहाँ से ले लिया है ।

१८—इस भूमि को उसने नीलोत्पल के पत्तों से सुगन्धित और माकन्द (आम) और मधुक के पेड़ों के पुजों से रमणीक बना दिया है और उसे बढ़िया ईश (इष्ट) के पत्तों से आच्छन्न कर दिया है ।

१६-२०—और चैत्र में जब नौ सौ वर्षों में अठारह वर्षों की वृद्धि हो चुकी थी (६१८ में), जब चन्द्रमा का नक्षत्र द्वस्त था, शुक्र पक्ष की द्वितीया, बुधवार को श्रीकृष्ण ने अपने यश की वृद्धि के लिये रोहिन्सकूप गाय में एक दाट की स्थापना की जो महाजनों (सौदागरों) के लिये उपयुक्त और ब्राह्मणों, पदातियों और सौदागरों से आर्कीर्ण था ।

२१—उसने अपने यश के पुत्रों की भाति इन दो स्तम्भों को, एक को मङ्गेश्वर और दूसरे को रोहिन्सकूप गाय में, खड़ा किया है ।

२२—इस श्रीकृष्ण ने भक्ति भाव से देव 'जिन' के इस दुरितों के दलन करने वाले सुख प्रद अचल भवन को बनवाया है ।

२३— और इस भवन को उसने सिद्ध घनेश्वर के गच्छ में जम्ब और अम्यय (?) स-तों और भाकुट (?) बनिये से अधिष्ठित गोष्ठी को समर्पित कर दिया है ।

उद्धरण न० १८

जैनमहाराष्ट्री

कालकाचार्य की कथा से । Jacobi Z D

M G Vol 34 (1880), Page 262

उज्जैन के बुद्ध राजा गर्दभिल्ल को प्रभावान्वित करने में असफल होकर, जो सन्यासिनी सगस्थती को अपने अन्त पुर में लिखा जाया था और जिसने फिर उसको छोड़ने से नाहीं कर दी थी, सन्यासिनी का महात्मा भाई कालकाचार्य गर्दभिल्ल को पद-रुपुत करने के उद्देश्य से परदेश गया ।

त च कुञ्जो वि नाऊण निग्गञ्जो नयरीञ्जो सूरी, अणवरय च गच्छतो पत्तो सग कूल णाम कूल । तत्थ, जे सामन्ता, ते साहिणो

१—कुञ्जो वि=बुद्धोऽपि । नाऊण √ज्ञा, जैन महाराष्ट्री में साधारणतया

भरणन्ति, जो सामन्तादियहं सयल नरिन्द वद-चूडामणी सो सा
 दाणुसाही भरणहं । तओ कालग सूरि ठियो पगस्स साहियो
 समवे, आयजिओ य सो मन्त-तन्तारिहं । इओ य अणुया कयहं
 तस्स साहियो सूरि समन्धियस्स हरिस भर निम्भरस्स नाणाविह-
 यियोएहिं चेदुमाणस्सं समागओ पडिहारो, यिअत्त च तेण, जहा-
 "सामि ! सादाणुसाहि दूओ दुआरे चिदुह" । साहिया भणिय-
 "लहु पवेसेहि" । पवेसिओ य वयणेण अन्तर पय निसन्नो य
 दिएणासणे । तओ दूएण समन्धिय उवायणं स च इदहण नव पारुस-
 काल-नहयल व अन्धारिय वयण साहियो । तओ विन्तिय, 'इत्ति,
 काम अपुव्व-करण उवलफिअज्जहं, जओ सामि पसाय आगयं दद-
 हण जलय-दसणेण व सिहियो हरिस भर निम्भरा जायन्ति सेवया
 सा साम वयणो दीसह । ता पुच्छामि कारण", ति । पयन्तरम्मि
 साहि पुरिस दसिय विडहरे गओ दूओ । तओ पुच्छिय सूरिणा,

आरम्भ का न मूर्धन्य नहीं होता । सगमूत्र 'शकों का तट (देश)', इस
 रूप के लिये तुलना करो 'असोग' ।

१—अहियह (अधिपति) । साहि=साहि, अर्थात् चरसी शाह या शाही ।
 वह शब्द, और चाहानुपाहि भी=चरसी शाह-शाह 'सत्ताद्', इत्याहावाद
 प्रशस्ति में मिलते हैं (Fleet Gupta Inscriptions No 1,
 Samudra) इस प्रशस्ति में इन दो शब्दों का प्रयोग मातृ के पश्चिम में
 शकों के सम्बन्ध में उचित किया गया है ।

२—आयजिओ (आयजन्) ।

३—इतअ-अयश कयधिय ।

४—' चेष्टा करते दूए ' (कय) ।

५—' दान ' ।

६—पाठस ' यो अणु ' (अणु) ।

७—इत्ति=इत्ति । इत्ति=इत्ति इत्ति (अणु) का कर्मक
 ८—विदह प्रशस्ति " इत्ति, अणु " (इत्ति) का कर्मक

“इन्त, सामि पसाप समागए किं उच्चिगो विध लफणीयसि ?” तेण भणिय, “मयध, १ पसाओ, किं तु कोवो समागओ, जओ अम्ह पद्द जस्स रुसइ, तस्स नामाद्विय मुदिय हुरिय पट्टयेइ । तओ केणइ कारणेण अम्होपरिं कैसिऊण पेसिया पसा हुरिया । मईए य अप्पा अम्हेहिं घाहययेओ, उग यएओ सि फाऊण न तम्भयणे पियारणा कायट्ठा ।” सूरिया भणिय—“किं तुउम्ह खेय यट्ठो, उयाहुं अपस्स पि कस्स पि ?” सादिया भणिय—“मम पञ्चियाए अण्णे सि पि पञ्चाणउइ राइए, जओ दीसइ छुप्रउइमी इमीए मरिधयाए अको सि ।” सूरिया जम्भिय—“जइ पय, ता मा अप्पाण पियासेहि” । तेण भणिय—“न पट्टणा रुट्ठेण कुलफणय अन्तेरेण मुद्विज्जइ । मय पुण मयए सेसकुलस्स येम मयइ” । सूरिया भणिय—“जइ पि पय तद्दा पि बाहरेसुं निय दूय पेसणेण पञ्चाणउइ पि रायाणो, अए दिग्गुग देस पँचामो ।” तओ तेण मुच्चिओ दूओ जद्दा—“मद्दा । के ते अणे पञ्चाणउइ रायाणो, असि कुचिओ देयो ?” तेण पि मग्गे निये

१—पट्टयेइ ‘ भेदता है ’ विभक्त (प्र+स्था) ।

२—उपरिं=उपरि ।

३—एएण तृतीया क्लीबिद्द ‘ इससे ’ । घाहयय इन् के विभक्त रूप से भविष्यत् सन्त ।

४—उयाहुं ‘ अथवा ’ (उताहो) ।

५—एण नउइमी धुयानवेवा ।

सभिष्सा ‘ हभिषार ’ (शशिका), ‘ क्योंकि उसके शस्त्र का नम्बर १९ था प्रतीत होता है ।’

६—मुद्विज्जइ कर्म धाप्य √ छुट् ‘ काट बाचना, छोट देना ’ । छुटना करो दि-दी छुटना, छुटी ।

७—बाहरेसुं ‘ ब्रह्माओ ’ (वि+ह) ।

८—दिग्गुग=चारसी दि कुक । पँचामो ‘ हम जा रहे हैं ।’

हया । तत्रो दूयं विसज्जिऊण सन्नेसिं पि पेसिया पत्तेय' निय-दूया जहा—“समागच्छद्द मम समीये, मा निय जीवियाइ परिश्रयद्द, अहं सव्यत्थं भलिस्सोमि” । तत्रो ते दुपरिश्चयणीयत्तणात्रो पाणाण सन्व-सामग्गिं फाऊण आगया ऋड्त्तिं तस्स समीय, ते य समा गप द्दट्ठण तेषावि पुच्छिया सूरिणो—“भयं किं अग्गेहिं सम्पय कायव्व ?” सूरिहिं भणिय—“सवल यादणा उत्तरिऊण सिन्धु पण्ह हिन्दुग-वेस । तत्रो समासदिऊण जाणवत्तेसुं समागया सुरद्द वि-सप । पत्थन्तरम्मि य समागत्रो पाउस समत्रो, तत्रो दुग्गमा मग्ग ति काउ सुरद्द विसत्रो छण्णउइ विभागेहिं विभज्जिऊण ठिया तत्तेय ।

[फिर शब्द श्रुतु आई, जिसका सविस्तर वर्णन किया गया है]

एषविद् च सरय-काल सिरिमवलोइऊण निय समीहिय सिद्धि-कामेण भणिया ते कालय सूरिणा, जहा—“भो, किं पय निदज्जमा चिट्ठद्द ?” तेहिं भणिय,—“आइसद्द किं पुणो करेमो ।” सूरिणा भणिय, “गियद्द उज्जेणि, जत्रो तीप पडियद्धो पभूत्रो मालव-वेसो, तत्थ पज्जत्तीप तुम्हाण निव्वाहो भविस्सद्द ।” तेहिं भणिय—“एव करेमो, पर मरिय सम्मलय जम्हो पयम्मि वेसे अग्गाण भोयण मेत्तं वेव जाय ’ । तत्रो सूरिणा जोग-चुरण चहुण्डिया मेत्त-

१—पत्तेय ‘पृथक् पृथक्’ प्रत्येकम् ।

२—भलिरसोमि भल्लह=भरह का भविष्य का रूप, या तो=भृ ‘भरण करना’ से या भरह के द्वारा स्मृ से ।

३—=दु परित्यजनीयत्वात् ।

४—ऋट् इति ।

५—जाणवत्तज्जहाज (धानपात्र), § ६२ ।

६—सरय ‘शब्द’ ।

७—निव्वाहो ‘प्रचुरता, जीविका’ (निर्वाह) । पज्जति ‘पयोसि’ ।

८—सम्मलय ‘शोदाम, सामान’ (सम्बल) । जम्हा पञ्चमी एकवचन (यस्मात्) क्रियाविशेषण नैसा प्रयुक्त किया गया है, ‘चूकि, क्योंकि’ ।

पक्षेपेव सुवर्णी-काऊप सध्य कुम्भकारावपु मणियाँ—“परं मन्वस
गिरद्व” । तस्यो त त विमनिकुपु सस्य-सामग्रीय पट्टिवा उञ्जिपि पदे ।
अन्तरे य जे बे वि साडय विमय-रायापो, ते सादेसा पत्ता उञ्जिपि
वितयमग्नि । तस्यो गहमिज्ञो परयल आगपुनन्त सोऊप महापल-
सामग्रीय निगमा पत्ता य विमय-मग्नि । तस्यो दोषद वि दप्पु
अर-नपाप लग्न आभोदरम् ।

अनुवाद

जब सूरि को कहीं ने इसका पता लगा तो वह नगर में विशा
हुआ, और अनवरत चलता हुआ सब मूल नाम के देश में पहुँचा ।
यहाँ जो सामन्त हैं उन्हें पाही कहते हैं और जो सबल गेरु
पुन्द् का वृक्षमणि और सामन्ताधिपति होता है उस पादानुपाही
कहते हैं । तब कालज सूरि एक पाही के पास ठिका, और उसको
उसने मन्त्र तन्त्र से आवर्जित किया (अपनी ओर आकर्षित
किया) । इसके उपरान्त एक समय जब वह पाही सूरि के साथ
था और हृदय निर्मल हृदय से नानाविध विनोदों से काल यापन
कर रहा था, द्वारपाल आकर आया और उसने वह नियेदन
किया—“स्वामिन् । पादानुपाही का दूत द्वार पर खड़ा है ।”
पाही ने कहा—“शीघ्र आन्दर ले आओ ।” इस बात के अनन्तर
ही दूत ने प्रवेश किया और वह निर्विष्ट आसन पर बैठ गया ।

१—सुवर्ण ‘वर्ण’ हिन्दी वृत्त । कुम्भितया सुवर्णी, मास, पुष्पमा वनो
हिन्दी च्यौटी, पञ्चाशी वृत्ती ।

२—पह=प्रति ।

३—सादेसा सादेह=साहू (शालि) ‘कहा’, बुझाना’ का पूर्वकाविक कृदन्त रूप ।

४ छाडय, अर्थात् छाट=वर्जित गुजरात । उरुर=उरुर । आभोदय
‘जवाई’ (आ+मुच्) ।

तब दूत ने उपहार (उपायन) को समर्पित किया । इसको देखकर पाही का मुख (वदन) नये प्रावृष-काल के आरम्भ के आकाश की भांति अधरा हो गया । तब सूरि ने सोचा—“अहो, अवश्य ही यह कोई अपूर्व कर्म प्रतीत होता है; क्योंकि स्वामी के प्रसाद को आया हुआ देखकर सेवक इसी प्रकार हर्षनिर्भर हो जाते हैं जैसे मेघों के दर्शन से मोर (शिपी)-किन्तु यह श्याम वदन दिखाई देता है, अतएव मैं इसका कारण पूछूँगा ।” इसी बीच दूत पाही के कर्म-चारियों से बताये हुए भवन (?) में खला गया । तब सूरि ने पूछा—“क्यों, स्वामी के प्रसाद के आने पर आप उद्विग्न जैसे क्यों दिखाई देते हैं ?” उसने कहा—“मगधन्, यह प्रसाद नहीं किन्तु कोप का समागम है, क्योंकि जिस किसी से हमारा प्रभु रसता है उसके पास यह उसके नाम की मुहर की छुरी भेजता है । अतएव किसी कारण से हमारे ऊपर रसकर उसने यह छुरी भेजी है । इसी से हमें आत्मघात करना होगा, उस के उग्र दण्ड के भय से उस की बात पर कोई विचारणा नहीं की जा सकती ।” सूरि ने कहा—“क्या तुम्हीं पर रूठा है या अन्य किसी पर भी ?” पाही ने कहा—“मुझे छोड़कर अन्य पचानवे राजाओं पर भी, क्योंकि इस शस्त्र पर छयानवेष्टा अह्न लगा हुआ दिखाई देता है ।” सूरि ने कहा—“यदि ऐसा है तो अपना विनाश न करो ।” उस ने कहा—“रुष्ट हुआ प्रभु कुल क्षय किये बिना सास नहीं लेता; किन्तु मेरे मरने से शेष कुल का क्षेम होता है ।” सूरि ने कहा—“यदि ऐसा है तो अपना दूत भेजकर सारे पचानवे राजाओं को यह सन्देश भेजो कि हम हिन्दुक देश को जा रहे हैं ।” तब उसने दूत को इस प्रकार पूछा—“भद्र ये अन्य पचानवे राजा कौन हैं, जिनपर महाराज कुपित हुए हैं ?” उसने उन सबके नाम बताये । तब दूत को विसर्जित करके सबके पास अलग अलग इस प्रकार सन्देश पहुँचाने के लिये उसने अपना दूत

भेना—“ मेरे पास आओ, अपने जीवन का परित्याग न करो मैं सारी बातों को ठीक कर लूँगा ।” तब वे सब अपना सारा साज सामान लेकर सीधे उस के पास आये, क्योंकि प्राणों को त्यागन मनुष्य के लिये कठिन है, और उनको आया हुआ देखकर उसने सूरि से पूछा—“ भगवन्, अब हमें क्या करना चाहिये ?” सूरि ने कहा—“ बलयाहन सदित सिन्धु नद को पार करके हिन्दुक देश को जाओ ” । तब जहाजों में चढ़कर वे सुरत देश में पहुँचे । इसी बीच वर्षाकाल भी आ गया, तब भागों को दुर्गम देख कर वे सुरत देश को ६६ भागों में विभक्त कर के वहाँ रहने लगे । शरद् भी को देख कर जैसा कि उसे ऊपर वर्णन किया गया है कालकसूरि ने स्वयं अपनी लालसा को पूरा करने की इच्छा से उनसे कहा—‘क्यों जी, क्यों इस प्रकार निरुधमी हो कर समय बिता रहे हो ?’ उन्होंने कहा—‘तो फिर आदेश कीजिये कि हम क्या करें ?’ सूरि ने कहा—‘उज्जैन पर अधिकार करो, क्यों कि यही मालव देश की कुजी है, वहाँ तुम्हारा यथेष्ट निर्बाह होगा’ । उन्होंने कहा—‘ऐसा ही करते हैं, किन्तु हमारे पास कोई सामान नहीं है, क्योंकि इस देश में हमें भोजन मात्र के लिए जौ मिले हैं ।’ तब सूरि ने योगधूर्ण की एक छुटकी मात्र के प्रक्षेपण (फेंकने) से सारे कुम्हारों की उपादान सामग्री को सुवर्ण बना दिया और कहा—‘यह लो, सामान है ।’ तब उन्होंने उसको धाट कर और अपने सारे साज सामान को ले कर उज्जैन के प्रति प्रस्थान किया । इसी बीच लाट देश के जितने भी राजा थे उनको उन्होंने बुला भेजा और वे उज्जैन की सीमा पर पहुँचे । तब गर्दभिह्न शत्रुसेना का आना सुन कर अपनी विशाल सेना को लेकर बाहर निकला और सीमान्त पर पहुँचा । तदनन्तर वर्ष से फूली हुई दोनों सेनाओं के बीच युद्ध आरम्भ हुआ ।

उद्धरण नं० १६

अर्धमागधी

उदायण

(Jacobi No III Portions)

तेण कालेण तेण समण सिन्धुसोयीरेसु जणयपसु धीय
 भए नाम नयरे होत्या; उदायणे नाम राया, पभावई देवी । तसि
 जेहे पुत्ते अभिई नाम जुम्भ राया होत्या; नियप भाईणेजे केसी
 नाम होत्या । से न उदायणे राया सिन्धु सोधीर-पामोफळाण सोल्ल-
 सणह जणययाण धीयमय पामोफळाण तिरह तेवट्टीण नयर-सयॉन
 महसेण पामोफळाण वसणह रायाण धम्मउड्डाण धिरण-सेय-चा-
 मर वाय धीयणाण अजिसिं च राईसर तलवर पभिईण आदेवण
 कुणमाणे धिहैरइ । पय न ताय पय ।

इसके बाद कथा जैनमाहाराष्ट्री में परिवर्तित हो जाती है ।

१ धीयमए=धीतभयो, प्रथमा एकवचन का एकारान्त होना इस प्राकृत की
 विशेषता है । 'होत्या' हो=भव का जुह् एकवचन प्रथम पुरुष आत्मनेपद ।
 अन्य पुरुषों और वचनों में भी इसका प्रयोग मिलता है ।

२ 'भाइणेज्' आनजा, आगिनेय । नियप=निय, अपभा (सस्कृत निज) ।

३ पामोफळ (प्रमुल) ।

४ तेवट्टि 'तिरसठ', तेसठि भी होता है । सय, सौ (यत्) § ११२ । प्रत्यक्षतः
 इसका अर्थ है '१६३ नगरों का' ।

५ 'विहयण' दिया (वि+तृ) । सेय 'सफेद' (थेत) । धीयण 'यला मलना'
 (धीज्) । अजोसिं, पट्टी बहुवचन 'दूसरों का' (महाराष्ट्री में भयणाण्य) ।
 राईसर 'राजेश्वर' । तलवर 'प्रधान' । तल्लारो, देशी नाममात्रा में=नगर-रचक ।
 आदेवण, आधिपत्य (आधिपत्यम्) । कुणमाणे, आत्मनेपद 'कुणह का'
 वर्तमान धानच् रूप ।

भेदा—“ मेरे पास आओ, अपने जीवन का परित्याग न करो, मैं सारी बातों को ठीक कर लूँगा ।” तब वे सब अपना सारा साज सामान लेकर सीधे उस के पास आये, क्योंकि प्राणों को त्यागना मनुष्य के लिये कठिन है, और उनको आया हुआ देखकर उसने सूरि से पूछा—‘ भगवन्, अब हमें क्या करना चाहिये ?’ सूरि ने कहा—“ बलयादन सहित सिन्धु नदी को पार करके हिन्दुक देश को जाओ ” । तब जहाजों में चढ़कर वे सुरत देश में पहुँचे । इसी बीच वर्षाकाल भी आ गया, तब मार्गों को दुर्गम देख कर वे सुरत देश को ६६ भागों में विभक्त कर के वहाँ रहने लगे । शरद्वर्षा को देख कर जैसा कि उसे ऊपर वर्णन किया गया है कालकसूरि ने स्वयं अपनी तालसा को पूरा करने की इच्छा से उनसे कहा—‘क्यों जी, क्यों इस प्रकार निरुद्यमी हो कर समय बिता रहे हो ?’ उन्होंने कहा—‘तो फिर आदेश कीजिये कि हम क्या करें ?’ सूरि ने कहा—‘उज्जैन पर अधिकार करो, क्योंकि यही मालव देश की कुञ्जी है, यहाँ तुम्हारा विशेष निर्वाह होगा’ । उन्होंने कहा—‘पेसा ही करते हैं, किन्तु हमारे पास कोई सामान नहीं है, क्योंकि इस देश में हमें भोजन मात्र के लिए जी मिले हैं ।’ तब सूरि ने योगधूर्य की एक खुटकी मात्र के प्रक्षेपण (कैंकने) से सारे कुम्हारों की उपादान सा ममी को सुवर्ण बना दिया और कहा—‘यह लो, सामान है ।’ तब उन्होंने उसको घाट कर और अपने सारे साज सामान को ले कर उज्जैन के प्रति प्रस्थान किया । इसी बीच लाट देश के जितने भी राजा थे उनको उन्होंने घुला भेजा और वे उज्जैन की सीमा पर पहुँचे । तब गर्दभिल शत्रुसेना का आना सुन कर अपनी विशाल सेना को लेकर बाहर निकरा और सीमान्त पर पहुँचा । तदनन्तर वर्ष से फूली हुई दोनों सेनाओं के बीच युद्ध आरम्भ हुआ ।

माणे इहेव धीयभए आगच्छेज्जा, तां ख अहम् अणि भगवओ
अन्तिए मुण्डे भविता जाव पव्वपज्जा । तए ण भगव उदायणस्स
एयारूय अज्झत्थिय जाणित्ता चम्पाओ पडिनिक्खमित्ता, जेणे
धीयभए तयेरे, जेणे मियवणे उज्जाये, तेणे विहरइ । तओ परिसा
निग्गया उदायणे य । तए ण उदायणे महाधीरस्स अन्तिए धम्म सोष्ठा
द्वट्ठ तुट्ठे एव घयासी—ज नयर जेट्ठपुत्त रज्जे अहिसिञ्चामि, तओ
ए तुम्भ अन्तिए पव्वयामि । सामी भणइ—अहातुह, मा पद्विक्क
करेहि । तओ ण उदायणे आभिओगिय हत्थि रयण दुक्खित्ता सए
गिहे आगए । तओ उदायणस्स एयारूये अज्झयिए जाए—जइ ण अभिइ
कुमारं रज्जे ठयित्ता पव्वयामि, तो अभिई रज्जे य रट्ठे य जाव जणयए य
माणस्सएसु य काममोगेसु मुच्चिय अणाय अणवयग्ग ससार-
कन्तार अणपरियट्ठिस्सई । त सेय अलु मे नियग भाइणेज्ज केसि
कुमार रज्जे ठयित्ता पव्विस्सए । एव सपेहेत्ता सोभणे तिहि-करण-

१ पुग्वाणपुर्वि 'आनुपूर्व्ये से' । दूहन्तमाण, भटकता हुआ (दु) ।
आगच्छेज्जा, विधिक्षिप् ।

२ परिसा 'परिपद्' ।

३ सोष्ठा 'सुग कर' (भूत्वा) । तुलना करो चत्तर=चत्वर । जैन महा
राष्ट्री हट्ट=हट्ट । घयासी 'कहा' (यद्) लुङ् ।

४ आभिओगिय (आभियोगिक), देवताविशेष । यहाँ जेकोवि के उद्धोष
नानुसार राजसी हाथी । दुक्खित्ता 'चढ़कर' (उद्+रह् के लिपि + उदुस्) ।

५ मुच्चिय 'लाजवी' (मूर्च्छे) । अणाय 'अनादि' । अणवयग्ग 'अनन्त',
शब्दार्थ जिसका सिरा मुक्ता हुआ न हो, (अनमदप्र=पाणि अनमतम, पिण्ड १२१) ।
अणपरियट्ठिस्सइ 'अटन करेगा' (अनु+परि+वृत्) ।

६ सेय 'बेहतर'—(श्रेयस्) । पव्वइत्तए, तुमुचत्त ।

७ सपेहेत्ता, विचार कर (सम्+प्र+ईप्) । ईप् धातु में 'च' का मिश्रता
बहुधा अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में देखा जाता है । अणुणेइन्ति=अनुपेचन्ते ।
दादिय=दक्षिण, महाराष्ट्री और औरसेनी में भी पाया जाता है ।

और पत्नीपरायण (स्त्रीण) सुनार कुमारनन्दी की चर्चा चलाती है, जिसने पांच पांच सौ मुहरें देकर ५०० पत्निया इकट्ठी की थीं और जिसको पञ्च शिला द्वीप की देवियों ने अपना घर चुना था। अन्त में कथा उदायण का प्रसङ्ग छेड़ती है, और अर्धमागधी (धर्म प्रार्थों की भाषा) में हमें उस के नया धर्म प्रदण करने की बात बतलाई जाती है ।

तप न से उदायणे राया अन्नया कयाइ पोसइ सा लाप पोसहिप एगे अर्थाए पक्खिय पोसइ सम्म पडिजागरमाणे पिहरइ । तच्चो तस्स पुण्यरत्तावरत्त काल समयसि जागरिय करेमाणस्स एयाकूवे अज्झतिथिप समुप्पज्जितथा । धम्मा ए ते गाम नगरा, जत्थ ए समणे धीरे विहरइ, धम्म कहेइ, धम्मा ए ते राईसर-पभिईओ, जे समणस्स महावीरस्स अतिप केवलि पन्नत्त धम्म निसामेन्ति, एव पञ्चाणुब्बय सत्तसिक्खावइय सावगधम्म दुघाल स विह^१ पडियज्जित, एव मुरइ मविस्सा आगाराओ अणगारिय पण्ययति^२ । त जइ ण समणे भगव महावीरे पुण्णाणुपुब्बि दूइज्ज

१ कयाइ=कदाचिह् । पोसइ 'मत' (उपवसथ) § ७४ । अ-धीप (अकेले ही) । पक्खिय 'प्रत्येक एक को' । सम्म, सम्यक् । पडिजागरमाण 'जागरण करता हुआ' ।

२ पुण्यरत्त 'रात्रि का पहिला भाग', 'अवरत्त 'रात्रि का उत्तरार्ध' । करे माण, आत्मनेपद करेह का वतमान शानच् रूप । एयाकूव 'इस रूप का' । अज्झतिथि 'विचार' (आध्यात्मिक) । समुप्पज्जितथा, लुह (सम्+उद्+पह्) तुलना करो होया—'मा' ।

३ केवलि 'पराविद्या से युक्त । पञ्चत्त (प्रज्जप्तम्) । निमामेवि 'सुनते हैं' (नि+शम्) ।

४ अणुब्बय 'आज्ञा विधान' अनुमत—गृहस्थों के लिए पांच आशयें, जैन साम्प्रदायिकता । सिक्खावइय शिषा (* शिषापदिक) । दुवाजत्त 'द्वादश' ।

५ भविस्सा, कृदन्त § ११२ । आगार, 'घर' ।

माणे इहेय चीयभए आगच्छेज्जा, तो ए अहम् अणि भगवओ
अन्तिए मुण्डे भविता जाय पडएज्जा । तए ए भगव उदायणस्स
एयारूय अज्झथिय जाणित्ता चम्पाओ पडिनिक्खमिप्ता, जेण्व
चीयभए नयरे, जेण्व मियवणे उज्जाणे, तेण्व विहरइ । तओ परिसो
निग्गया उदायणे य । तए ए उदायणे मद्दावीरस्स अन्तिए धम्म खोधा
दट्ठ तुट्ठे एव ययासी—अ नयर जेट्ठपुत्त रज्जे अदिसिञ्चामि, तओ
ए तुम्भ अन्तिए पव्वयामि । सामी मणइ—अदासुद, मा पदियन्ध
करेहि ! तओ ए उदायणे आभिओगिय हत्थि रयण दुरुहिप्ता सए
गिहे आगए । तओ उदायणस्स एयारूय अज्झथिय आप—जइ ए अभिइ
कुमार रज्जे ठविता पव्वयामि, तो अभिइ रज्जे य रट्ठे य जाय जणवए य
माणस्सएसु य काममोगेसु मुच्चिय अण्णाइय अणवयग्ग ससार-
कन्तार अणुपरियट्ठिस्सइ । त सेय अलु मे नियग भाइणेज्ज केसिं
कुमार रज्जे ठविता पविइत्तए । एव सम्पेहेत्ता सोमणे तिहि करण-

१ पुत्तपुत्तिव 'मानुष्ये से' । दूहजमाण, भटकता हुआ (पु) ।

आगच्छेजा, विधिबिह ।

२ परिसा 'परिप' ।

३ सोचा 'सुन कर' (अरुवा) । सुनना करो चर=चार । जैन महा

राष्ट्री इह=इह । ययासी 'कहा' (बह) एव ।

४ आभिओगिय (अभियोगिक), देवताविशेष । वहाँ जेकोवि के उद्घोष
नामुसार राजसी हाथी । दुरुहितता 'चइकर' (उद+रुह के लिए = उदुरह) ।

५ मुच्चिय 'छाजधी' (मूर्ध) । अण्णाइय 'अनादि' । अणवयग्ग 'अनन्त',
शब्दार्थ जिसका सिरा मुका हुआ न हो, (अनमदम=पाणि अनमत्तम, पियज १२१) ।
अणुपरियट्ठिस्सइ 'अटन करेगा' (अनु+परि+वृत्) ।

६ सेय 'बेहतर'—(श्रेयस्) । पव्वइत्तए, तुमुअन्त ।

७ सम्पेहेत्ता, विचार कर (सम्+प्र+ईप्) । ईप् पाठ में 'व' का मिलना
बहुधा अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में देखा जाता है । अणुपेइन्ति=अनुपेवन्ते ।
वादिण्य='वपिण्य', महाराष्ट्री और गौरसेनी में भी पाया जाता है ।

-मुहुत्ते कोडम्बियपुरिसे य सदावेत्ता एवं ययासि-
धिप्पाम् एव केसिस्स पुमारस्स रायाभिसेय उयट्टुपेह !
तम्मो मदद्दीपे अभिसिसे केसी पुमारे राया जाय जाय प
सासेमाणे विहरइ । तम्मो उदायणे राया केसि राय थापुच्चर-
अहण्ण, वेवाणुप्पिया ससारमउम्बियगो पव्वयामि । तम्मो के
सी राया कोडम्बियपुरिसे सदावेत्ता एव ययासी—धिप्पाम् एव
उदायणस्स रन्तो मदरथ मदरिद निक्कमणामिसेय उयट्टु
पेह ! तम्मो मद्या विमूर्ख अभिसिसे सिधियाकूटे मगघम्मो समी
ये गत्तुण पञ्चए जाय वट्ठपि चउरथ छट्ठट्ठम-दसम दुयावस
मासहमासाईणि तथोकम्माणि कुव्वमाणे विहरइ ।

तम्मो से उदायणे अणगारे वट्ठणि यासाणि सामण-परियाग
पाउयिष्ठा सङ्गि भत्ताइ अणसणाए छेयत्ता जस्सट्ठापे कीरइ नग

१ कोडुम्बिय कोडुम्बिक । सदावेत्ता, नाम धातु सह (वट्) से बने हुए
संदेह के—संदेह विगत—रूप का इन्द्र ।

२ धिप्पाम् एव (धिप्पम् एव), अर्थमागधी में एव से पहिले अन्तिम अम् का अ
नियम से दीर्घ हो जाता है । उक्तम् एव मुक्तमेव (विरल ६ २८) । उवट्ठ-
वेह, विजिता (वट्+इत्ता) ।

३ इह्वि=अदि ।

४ वेवाणुप्पिया, सम्बोधन एकवचन वेव+अणुप्पिय ।

५ सिधिया 'पाखी' (शिविका) ।

६ पुव्वमाणे, मुखना करो उपर्युक्त करमाणस्स और पुव्वमाणे के साथ ।

७ सामण, समण (अमण) का भाववाचक । परियाग, फिरता, पर्याप्त, वृत्ता
रूप परियाग । पर्याप्त से इस रूप की उत्पत्ति में विरल को संदेह है । वे कहते
हैं कि 'व' की जगह 'ग' 'परियाव' के साथ होना चाहिये । (मुखना करो अर्थ
मागधी शुवळ=मुगळ), इसी तरह अर्थमागधी जैन माहाराष्ट्री पञ्चव=पर्याप्त,
जैन शौरसेनी पञ्चव । पाउयिष्ठा 'पूरा कर के' (प्र+आप्) । अणसण 'अनशन' ।
छेयत्ता 'काट कर' मुखना करो छेयम् माहाराष्ट्री जैनमाहाराष्ट्री छेय्य

माघे सुएउमाघे, त अह पचे जाव दुफळ पहीणे सि ।

तएण अभिई-कुमारस्स पुण्वरत्तावरत्त कालसमयासि एव अज्झ तिथए जाए—अह उदायणस्स जेट्ठपुत्ते एमावरए अत्तए, म रज्जे अट्ठायेत्ता केसि रज्जे टायेत्ता पव्वइए । इमेण माणुसेण दुक्खेण अभि भूए समोणे घीयमयाओ निग्गाच्छिन्ना चम्पाए कोणिय उवसपज्जित्ताण विउल-भोग-समघागए यावि होत्था । सेण अभिई कुमारे समणो वासरए अभिगय जीवाजीवे उदायणेण रत्ता समणुयद्ध-वेरे यावि होत्था । तओ अभिई कुमारे बह्व पासाइ समणोयासग परियाग पाउणिन्ना अद्धमासियाए सत्तेहणाए तीस भेत्ताइ छेएत्ता तस्स ठाण स्स अणालोइय-पडिक्कन्ते काल किन्त्वा असुरकुमारत्ताए उववन्तो । एग पलिओपेम ठिई तस्स, महा विदेहे सिज्जिभेहि सि

अनुवाद

उस समय सिन्धुस्रोतीर देश में वीतमय नाम का नगर था ।

(* जेतैत्ता जेतैत्ता) ।

८ अट्ठाए ' के कारण ' ।

१ अत्तए ' पुत्र ' (आत्मन), टायेत्ता क्वान्त विजन्त (स्था) ।

२ समाए ' होना ' ।

३ उवसपज्जित्ताण कूदन्त (उप+सम्+पद्) । सम-नागय, सयुद्ध, (सम्+अनु+आ+गम्) । यावि (य+अपि) ।

४ समणोयासय, गृहस्थ उपासक ।

५ सत्तेहया (सत्थु से पहिले) अन्तिम वस्त्रया (सत्तेसना), तीस ' तीस ' ।

६ अनालोइय पडिक्कन्त ' जिसका पश्चात्ताप और अङ्गीकार न किया गया हो '

(अनालोचित प्रतिष्ठान्त) । किष्वा, कूदन्त (कू) ।

• पलिओपेम=पल्योपेम, बहुत बड़ी सख्या । ठिई ' अवधि ' ३ १२ ।

८ सिज्जिही, पूरा होगा, सिज्ज्हा का भविष्यत् रूप, ' सिद्ध होगा ' ।

उदायण वहाँ का राजा था और प्रभावती उसकी रानी थी। उस के बड़े लड़के का नाम अभिजित् था। वही युवराज था। और उसका केसी नाम का एक भतीजा था। वह उदायण सोलह प्रान्तों का, जिनमें सिन्धसोवीर प्रधान थे, तीन सौ तिरसठ नगरों का, जिनमें धीतमय प्रधान था, दस अभिषिक्त राजाओं का जिनका मुखिया महासेन था जिसको कि खँवर कुलाने का स्वत्व मिला हुआ था, प्रभु था। इसके अतिरिक्त और भी युवराज और प्रधानादि थे। और इसी तरह था।

अब एक समय उस उदायण राजा ने यथाविधि नित्यकर्म करके उपवासशाला में अकेले चतुर्दश रात्र मत रक्खा। अब जब कि वह आधी रात को जागरण कर रहा था, उसको इस प्रकार विचार आया—वे गाँव और वे देश सबमुच धनाढ्य हैं जिनमें वह भ्रमण 'धीर' विहार करता है और धर्म को कहता है और वे राजा और अन्य लोग भी भ्रम्य हैं जो उस भ्रमण महावीर के निकट महाज्ञान से जाने गये (केवल प्रवृत्त) धर्मों पवेश को सुनते हैं और जो उसके पांच विधानों (पञ्चानुमत) और सात शास्त्रों से युक्त द्वादशविध शिष्य धर्म को स्वीकार करते हैं और सर्वस्व त्याग कर घर से सन्यास ले लेते हैं और घर बार छोड़ कर 'सघ' में प्रविष्ट हो जाते हैं। यदि अब वह भ्रमण भगवान् महावीर स्थान स्थान में धूमता हुआ यहाँ इस धीतमय नगर में आ जायें तो मैं भी भगवान् के सामने सर्वस्व त्याग कर 'सघ' में प्रविष्ट हो जाऊँगा। इसके अनन्तर भगवान् महावीर उदायण के इस विचार को जानते हुए चपा से चले और उसी धीतमय नगर के निकट, जहाँ मृगधन उद्यान था, रहने लगे। तब परिपद् आई और उदायण भी। इसके अनन्तर उदायण महावीर के निकट धर्म सुन कर हर्षगद्गद (हृष्ट-तुष्ट) होकर इस प्रकार बोला—

मैं अभी अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक किये देता हूँ और आपके सामने ही 'सघ' में प्रवेश किये देता हूँ। प्रभु ने कहा—“तो कृपया देर न करो।” तदात्तर उदायण एक मन्त्र राजसी द्वाधी पर चढ़ा और अपने घर में गया। फिर उदायण को यह विचार आया—“यदि अब मैं युवराज अभिजित् को सिंहासन पर बिठलाता हूँ तो इस राजधानी में और इस देश में तो यह विषय वासनाओं में आसक्त होता हुआ, फिर जन्ममरण के जङ्गल में, जिसका कोई अन्त या आरम्भ नहीं, फिरता रहेगा। इसलिए यह अच्छा होगा कि सघ में प्रवेश करने से पूर्व भतीजे राजकुमार केसी को राजसिंहासन पर बिठलाया जाय। शुभ तिथि युक्त मुहूर्त में आधे दिन और क्षण इस बात पर विचार करने के बाद उसने अपने कुटुम्ब के लोग बुलाए—और उनको इस प्रकार कहा—“शीघ्र राजकुमार केसी के अभिषेक की तैयारी करो।” तब बड़े समारोह के साथ राजकुमार केसी राजा बना और राज्य करने लगा। फिर राजा उदायण राजा केसी से विदा हुआ—“देवप्रिय! अब मैं ससार भय से उद्दिग्ध हो कर सन्यास लेता हूँ।” फिर राजा केसी ने अपने कुटुम्ब के लोग बुलाए और कहा—“राजा उदायण की महती महार्घ दीक्षा विधि की आयोजना करो।”

तब राजा उदायण पालकी में बैठ कर बड़े समारोह से भ्रमण (महाघीर) के सामने गया और सघ में प्रविष्ट हो गया और यह धीरे छूटे, आठों, दसवें और बारहवें दिन के और अर्धमास और मास के और इसी तरह के अन्य अनशन मत करता रहा। इस के अनन्तर उस उदायण ने गृह-सन्यास को कई घरों में पूरा करके और अपने अनशन मत में साठ भोजनों का परित्याग करके यह सिद्धि प्राप्त की जिसके लिए पुरुष नगा रह कर और सर्वस्व त्याग कर, (अन्ततः) दुःखों से छूट जाता है।

अब आधी रात को अभिजित् को यह विचार आया कि—“मैं उदायण का बड़ा लडका हूँ, प्रमादती का पुत्र हूँ, मुझ को अलग कर, इसने केसी को राजसिंहासन पर बिठ लाया है और फिर पीछे सघ में प्रविष्ट हो गया है। इस दुःख से अत्यन्त दुःखित होता हुआ वह बीतमय से निकला और उसने सम्पा में कोणिय का रास्ता लिया, जहाँ उसको विपुल सुखोपभोग उपलब्ध हुए। अब वह युधराज अभिजित् जीवन और मृत्यु विषयक ज्ञान में विश्वास करने वाला भ्रमणोपासक था और उसने राजा उदायण के साथ शत्रुता बनाये रखी। इसके अनन्तर राजकुमार अभिजित्, कई वर्षों तक भ्रमणोपासक की भाँति फिरता रहा और आर्धमासिक अन्तिम तपस्या में तीस मोजनों का परित्याग कर उसने अपने कमों का पश्चात्ताप किया और अपने अष्टसे राजसराज बन गया। उसकी अवधि दस हजार है। वह महाविदेह में सिद्धि प्राप्त करेगा।

उद्धरण नं० २०।

अर्धमागधी

उवासगदसाओ के सातवें अध्याय से

(१८०) पोलासपुरे नाम नयरे, सदस्सम्यवणे उज्जाणे जिय सत् राया ।

(१८१) तत्थ थ पोलासपुरे नयरे सद्दाल पुत्ते नाम बुद्धमकारे आजीविओवासणं परिघसइ । अजीविय-समयसि लसहे

१—आजीविओवासणं, ‘आजीविका का अनुयायी (उपासक)’ । आजीविक संन्यास की स्थापना मल्लिक के पुत्र, महावीर के समकाक्षीन, गोसाळ ने की थी। गोसाळ का सिद्धान्त या ‘प्रवचन’ या परिधम या शास्त्रि या ऊर्ध्वस्वित्ता या पुरुषार्थ आदि कुछ भी नहीं है, किन्तु सारे पदार्थ अपरिवर्तनीय रूप से नियत हैं। उवासगद, ६, १६६ । (देखो हार्नेले का नोट, १२३) ।

२—‘सिद्धान्त में’, सप्तमी पृष्ठवचन § ३१ v

गहियट्टे पुच्छियट्टे विणिच्छियट्टे अमिगयट्टे अट्टि मिज पेमाणुराग
रत्ते य "अयम् आउंसो, आजीविअ समण अट्टे अय परमट्टे,
सेसे अणट्टे"ति आजीविय-समण अण्ण भावेमाणे विहरइ ।

(१८२) तस्स ण सदासपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एका
हिरदण कोटी निहाण पउत्ता, एका चह्दि पउत्ता, एका पविधर-
पउत्ता, एके धप दस गो साहस्सिएण चरएण ।

(१८३) तस्स ण सदासपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अमि-
मित्ता नाम भारिया होत्था ।

(१८४) तस्स ण सदासपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलास
पुरस्स नयरस्स धहिया पञ्च कुम्भकारावणसया होत्था । तथ ण
बह्वे पुरिसा विएण भइ भत्त चेरेंथा कल्लाकल्लि बह्वे करए य चारए

१ मिज, 'मजा', पञ्जाबी मिम्भ, मिग्ग, सिंधी मिनु, गुजराती मीज, हिन्दी मींजी (संस्कृत मजा) । हीनजे ने इसका अनुवाद किया है "उनके प्रति उत्कट प्रेम से निर्भर हो कर ऐसा कोई सर्वोत्कृष्ट पशु के लिये होता है" अर्थात् जैसा कि उनकी टिप्पणी में है "जैसा कोई हड्डियों की मजा के लिये होता है ।" किन्तु मजा चासना का भौतिक आधार है, उसका विषय नहीं ।

२ आउंसो 'दीर्घजीवी' सम्बोधन (संस्कृत प्रातिपादिक भ्रातृभ्यम्) जिसका प्रयोग भादुर के लिये किया गया है । हीनजे ने एक और स्थल की टीका का अनुसरण करके भवमाउंसो को एक साथ ही लिया है, जिससे अशुभापक अपने शिष्य को सम्बोधन करने में प्रयुक्त करता है ।

३ धप 'समूह' (मजः) ।

४ भइ 'भाड़ा' (श्रुतिः), चेरएण 'मज्झरी, तनज्झाह' (चेतन) । हीनजे ने इसका अर्थ किया है "मज्झरी के बद्धे भोजन पाते थे ।" किन्तु श्रुत्यन्तम् 'भोजन और मज्झरी' के साथ इस की तुलना करो । मालूम होता है उन्हें भोजन और मज्झरी के रूप में चेतन मिश्रता था ।
'कदवाकडिम् (संस्कृत कथ्य कथम्) हर 'मुण्ड' । विमज्झि के लिये

य पिदहण य घटण य अस्स घटण य कलसण य अलिज्जरण
जम्बूलण य उट्टियाओ य करेन्ति, अणे य से वहेवे पुरि
दिएण भइ भत्त वेयणा कज्जाकल्लि तेदि बह्मदिं करणदिं य जाव उ
यादि य रायमग्गसि वित्ति कप्पेमाणा विहरन्ति ।

(१८४) तपण से सहालपुत्ते आजीविओवासण अन्नया कयाइ पुग्वा
रणहकाल समयसि जेणव असोग वणिया तेणव उवागच्छइ-
गोसालस्स महुलिपुत्तस्स अन्तिय धम्म पण्णत्ति उवसपज्जित्तो
विहरइ ।

(१८५) तप य तस्स सहालपुत्तस्स आजीविओवागस
एगे देवे अन्तिय पाउम्मवित्थो ।

(१८७) तप ण से देवे अन्तलिफल-पडियणणे सञ्चिणिणिय
इ जाव परिहिण सहालपुत्त आजीविओवासय एव ययासी
“एदिइ ण, देवाणुप्पिया, कल्ल इह महा माहणे उप्पन्न णाण-वसण
घरे तीय पच्चुपन्न भू अणागय जाणंण अरहा जिणे केवली सव्यए
सव्य वरिसी ते लोक वदिय महिय पूइण, स देव मणुयासुरस्स
लोगस्स अच्चणिजे वन्दणिजे सकारणिजे सम्माणणिजे कज्जा

पुल्लगा करो पुग्गिम् (= पूर्वम्) ।

१ करक “गङ्गवा” खास करके विद्यार्थी और तपस्वी जिसका प्रयोग करते
थे”, मोनियर विजियम्स । शरक ‘एक किसम का वर्तन’, पिठरक ‘बटखोई
घटक हिन्दी घड़ा, कल्ल ‘पड़ा’ । अलिज्जर (“पानी रखने का एक छोटा
झागर” मोनियर विजियम्स), जम्बूलय और उट्टिया ‘घरों की तीन बहुत बड़ी
किलों’ । होनेले ।

२ या जब किसी क्रियापद के बाद आता है तो क्तान्त का अर्थ देता है
गणमइ, या=गणमइ, गण्णिच्चा “बह जाता है, और जाकर ।”

३ उवसपमाइ (उप+सम्+पर) से कृदन्त रूप ।

४ पाउम्मवइ (प्रादुर+म्) का आत्मने पद सुछ ।

५ वीथ-‘असीत’, पच्चुपन्न ‘वर्तमान’ (प्रति+उद्+पर),-म्-सन्धिपञ्जन

मद्गल देय्य चेद्देय जाव पज्जुवासरिण्णे, तच्च-कम्म सम्पय सम्पउत्ते
त थ तुम यन्देज्जादि जाव पज्जुवासेज्जादि, पाडिहारिण्ण पाँद-फल-
सिज्जा सधारणण उवनिमन्तेज्जादि” । दोष पि तथ पि एव ययइ,
त्ता जामेव दिस पाउम्भूए तामेव दिस पदिगए ।

महावीर का आगमन सुनकर—

(११०) तए ण से सहालपुत्ते आजीविओयासए ईमांसे
कहाए लखट्टे समाणे ‘एव खलु समणे भगव महावीरे जाव विह-
रइ, त गच्छामि थ समण भगव महावीर यन्दामि जाव पज्जुवासा
मि’, एव सपेहेइ,—त्ता एहाए जाव पायच्छिंत्ते सुखम्पायेसांइ जाव

अप्यागय ‘अनागत’ । पदुपपन्न के लिये पदुपन्न पाठ है, अर्थात् पडि+उपपन्न ।

१ चेद्देय ‘पवित्र’ शब्दार्थ=चैत्य ‘पवित्र मन्दिर’ । वदिय ‘आनन्दनिर्भर
हृदय से देखा गया’ (देशी) ।

२ ‘आराध्य’ (परि+उप+आप्) ।

३ तथ ‘पुण्यावह ।’ टीका में इस का अर्थ तथ्य दिया है और हेमचन्द्र ने
भी तथ्य ही दिया है १, २१; किन्तु पाणि में तथ्य होता है । अन्वयात् तथ्य से ।
विशेष (§ १८१) का कथन है कि * तथ्य से * तथ्य बना है । तुलना करो
रोमानी तथो=तथ्य ।

४ प्रातिहारिक “पारिभाषिक जैनशब्द जिसका अभिप्राय वेसी वस्तु है जो
किसी के उपयोग के लिये हमेशा तैयार रखी जाय ।” हीनेजे ।

५ इमीसे=माहाराष्ट्री इमीए, इमीअ जैनमाहाराष्ट्री इमीए, इमाए खीरसेनी
इमाए ।

६ सपेहेइ ‘प्रतिविम्बित करता है (सम्+प्र+ईप्) । वच>अ>इ । यह
परिवर्तन अर्धमागधी और जैन माहाराष्ट्री दोनों ही में होता है ।

७ टीका=प्रापविश । दूसरी व्याख्या है ‘पैर से छुआ गया’, किंच धियइ
(धिप्) से बनता है जिसका अर्थ ‘छूना’ है ।

८ टीका—शुद्धारमा-वैषिकारि पवित्र शरीर को सजाने योग्य (वस्त्र),
अथवा शुद्ध-प्राचेरपानि ‘स्वच्छ और राजदरबार में प्रवेश करने योग्य’ ।

अथ महाम्नाभरणालङ्कित्य सरीरे मण्डुस्स घग्गुरा परिगण्य सांभो
गिहाओ पडि णिक्खमइ, ता पोलासपुर नयर मज्झ मज्जेण नि
ग्गच्छइ, -सा जेण्व सहस्सम्यवणे उज्जाणे जेण्व समणे भगव
महावीरे तेण्व उवागच्छइ, -सा तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण
करेइ ता वन्दइ नमसइ ता जाव पज्जुवासइ ।

महारी ने सब को सम्बोधित किया और सहालपुत्र का
आतिथ्य स्वीकार किया—

(१६४) तए ण से सहालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ
पायाइयय कोलाल भण्ड अन्तो सालाहिंतो बहिया णिणेइ, -सा
आयवसि दलयइ ।

(१६५) तए ण समणे भगव महारीरे सहालपुत्त आजीवि
ओवासए यय बयासी । “सहालपुत्त, एस ण कोलाल-भण्डे
कर्मा ।”

(१६७) तए ण से सहालपुत्ते आजीविओवासए समण भगव
महावीर पव बयासी । “एस ण भन्ते पुत्थि मट्ठिया आसी, तओ
पच्छा उदपण निमिज्जइ, ता छारेण य करीसेण य एगयओ मीसि
जइ, -सा चक्के आरोहिज्जइ, तओ यहवे करण य जाव उट्ठियाओ
य कज्जन्ति” ।

१ बागुरा 'भीक' (बागुरा “आवास”) ।

२ सांभो 'स्वयं अपने से' (स्व), गिह 'गृह' (इसी प्रकार जैन महा-
राष्ट्री अधिक प्रचलित गेह) ।

३ तिक्खुत्तो 'तिगुना (* त्रिभूतव अथवा त्रि कृतव) । तुलना करो अर्ध
भागधी दुक्खुत्तो, दुक्खुत्तो 'दुगुना ।

४ आयाहिण पयाहिण=आदधिण्य प्रदधिण्यम् ।

५ आयवसि 'सूरज की गरमी में (आतपे) । दलयइ टीका=दलाति, और
दवइ (दलामि) 'देता है' का साधारण अर्थभागधी रूप ।

६ कर्मा 'किससे' (कुत, अथात् * क-सः), औरसेनी कदो ।

(११८) तप ए समणे मगव महावीरे सद्दालपुत्त आजीविओ धम्मय एवं धयासी । "सद्दालपुत्ता, एस ए कोलालमयेडे किं उट्ठा येण जाव पुरिसकारपरक्कमेण कज्जन्ति, उदाहु अणुट्ठाणेण जाव अपुरिसकारे परक्कमेण कज्जन्ति ?"

सद्दालपुत्त प्रतिपादन करता है कि ये बिना प्रयत्न के बनाये गये हैं, क्योंकि प्रयत्न का कोई अस्तित्व नहीं है, किन्तु उसके कथन का व्यवहन किया जाता है और उसको प्रतीति दिलाई जाती है।

अनुवाद

(११८) पोलासपुर नामक एक नगर था । उसके निकट सह हसम्भयण नाम का उद्यान था । जियससू राजा था ।

(११९) वहाँ पोलासपुर नगर में आजीवियों का उपासक सद्दालपुत्त नाम का एक कुम्हार रहता था । आजीविकों के धर्म शास्त्रों की खर्चा सुनकर और उनका ज्ञान प्राप्त करके और उनके अर्थ को पूछ कर उसका निधाय करके और उसमें पारङ्गत होकर वह उन पर ऐसे उत्कट प्रेम से अनुत्क हो गया जो स्वयं उसके अस्थि मज्जा के अन्दर ओत पोत भरा हुआ था और वह आजीवियों के सिद्धान्त के अनुसार आचरण करता था । वह इसी को सत्य, परम सत्य, समझता था और अन्य सब कुछ असत्य ।

(१२०) आजीवियों के उपासक उस सद्दालपुत्त ने एक करोड़ द्विरण्य जमा कर रक्खा था, एक करोड़ व्याज पर और एक करोड़ जागीर में लगा रक्खा था और उसके पास दश सदस्य गायों का यज्ञ था ।

(१२१) आजीवियों के उपासक उस सद्दालपुत्त की अग्नि मित्रा नाम की भार्या थी ।

१ पुरिसकार पुरुषाकार 'पुरुषार्थ' । उट्ठना करो बलत्कार=बलात्कार ।
आधारण संस्कृत शब्द पुरुषकार, पात्रि पुरिसकार ।

(१८४) आजीवियों के उपासक उस सहासपुत्र के पास पोलासपुर के यादर पाँच सौ पुम्हार की दुकानें थीं यहाँ बहुत से पुण्य अन्न वस्त्रादि के रूप में भृति और घेतन ग्रहण करके रोज़ अनेकों कूजे (करक), मज्जर (घारक), पिठरक (बटलोइया), घड़े, कलश, मटाकिया (अलिजर), जम्बूलय और उट्टिया (माट) बनाते थे, अन्य बहुत से लोग अन्न वस्त्रादिक के रूप में भृति और घेतन ग्रहण करके राजमार्ग पर उन अनेकों कूजों, माटों आदि का वनज करते थे।

(१८५) तब आजीवियों का उपासक वह सहासपुत्र मध्याह्न के किसी न किसी समय उस स्थान को जाया करता था जहाँ एक छोटा सा अशोक वन था, वह इस काम को करता था और उस धर्म के अनुसार आचरण करता था जिसको उसने सहासपुत्र गोसाल के पास से प्राप्त किया था।

(१८६) फिर आजीवियों के उपासक सहासपुत्र के निकट एक देव आविर्भूत हुआ।

(१८७) फिर (जैसा कि ऊपर कहा गया है,—“बुद्धघटिकाओं से” यद्वा तक) अन्तरिक्ष में स्थित और आभरणों से अलङ्कृत उस देव ने आजीवियों के उपासक सहासपुत्र से इस प्रकार कहा—‘दे देवानुप्रिय, कल यहाँ महा माहण आयेगा, जो पूर्णज्ञान और अन्तर्दर्शन से युक्त है, जो अतीत, वर्तमान और अनागत को जानता है—जो अर्हत्, जिन और केवली है, जो सब कुछ जानता है और सर्वदर्शी है, जिसको लोग आनन्दनिर्भर हृदय से गद्गद होकर देखते हैं, त्रिलोकपासी जिसकी आराधना और उपासना करते हैं, जो देवताओं, मनुष्यों और असुरों के लिए पूजा स्तुति, आदर, सन्मान और सेवा का भाजन है जैसा कि कोई उत्कृष्ट मंगलमय दिव्य और पवित्र व्यक्ति होता है, जो पुण्यकर्मों की प्रचुरता से सम्पन्न है। तुम्हें उसकी स्तुति करनी चाहिये (और जैसा कि ऊपर

कहा गया है, “सेवा करना” तक) और उसको आवमगत से नियत पीढ़ा, फलक और शय्या देकर निमन्त्रित करना चाहिये।” दूसरी बार और तीसरी बार उसने यह बात कही और ऐसा कह कर यह उसी दिशा को लौट चला जहाँ से यह प्रादुर्भूत हुआ था।

(११०) तब आजीवियों का उपासक वह सद्गुरु इस समाचार को पाकर अपने मन में सोचता है—“अच्छा तो भ्रमण भगवान् महावीर यहाँ पधारने वाले हैं, मैं चल कर भ्रमण भगवान् महावीर की स्तुति करता हूँ और उनकी सेवा में उपस्थित होता हूँ”। यह सोच कर उसने खान किया और प्रायश्चित्त कर्म करके शुद्ध धातु पहिने, और कतिपय महार्थ आमरणों से शरीर को अलङ्कृत कर के और परिवारकों की भीड़ से परिवारित होकर वह अपने घर से बाहर निकला। बाहर निकल कर वह पोलास पुर नगर के ठीक बीचोंबीच होकर गुज़रा। यहाँ से हो कर वह उस स्थान के निकट आया जहाँ सहस्त्रम्ब-वृक्ष उद्यान था, जहाँ भगवान् महार्थ थे, और निकट आकर उसने बाईं ओर से बाईं ओर को तीन बार उनकी प्रदक्षिणा की। ऐसा करने के बाद वह भगवान् की आराधना करता है और उनकी सेवा में उपस्थित होता है।

(११५) फिर आजीवियों का उपासक वह सद्गुरु किसी समय अपने हवा में सुझाये हुए मिट्टी के बर्तनों को अपने कारखानों से बाहर लाया और इसके बाद उसने उनको धूप में रफका।

(११६) तब भ्रमण भगवान् महावीर ने सद्गुरु से इस प्रकार कहा—“सद्गुरु, ये कुसालमाण्ड किस चीज़ के बने हैं?”

(११७) तब आजीवियों के उपासक सद्गुरु ने भ्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा—“ये माण्डे पहिले मिट्टी थे, और बाद को यह मिट्टी पानी से गूँदी जाती है, और यह भस्मी भाति पोटाश

और गोबर के साथ मिलाई जाती है और फिर उस को चक्र पर रक्खा जाता है और उस से अनेक कूजे आदि बनाये जाते हैं ।”

(१६८) फिर भगवन् भगवान् महावीर ने आजीवियों के उपासक सहायपुत्र से इस प्रकार कहा—“सहायपुत्र, क्या ये पुत्तल भाण्ड प्रयत्न और पुरुषार्थ से बने हैं अथवा प्रयत्न और पुरुषार्थ के बिना?”

उद्धरण नं० २१ ।

अर्धमागधी

जिनचरित्र

(५६) तदे ण सिद्धत्थे जत्तिप पच्चूस काल समयसि कोहमिष यपुरिसे सहायेइ। सा पव वयासी—

(५७) “क्षिप्वा पव, भो देवाणुप्पया। अज्ज सविसेस पाहिरिय उवहाण-साल ग-धोदय सिध सुइय समज्जिचोचलित सुगन्धधर पञ्च-धन्नपुष्पोद्ययारे कलिय कालागुरु पवर कुन्दुरुक तुलसि उज्जत धूव मधमघन्तगन्धुद्धुयाभिर्ताम सुगन्धधरगन्धय गन्ध

१ यहाँ और कुछ दूसरे स्थानों पर जेकोवि का पाठ मिले है । अन्य इस स्थिति में मिले हैं ।

२ देखो पृ० ६३ ।

३ 'समागमन, मण्डप ।

४ 'साक किया गया' (दृष्ट) 'प्रदाता गया' (सम्+सृज्) और 'लेपा गया' (उप+क्षिप्) ।

५ उचयाह 'सजायें, गहल हार' (उप+हृ) ।

६ अणुव 'अगर । कुन्दुरुक 'खोजन' । तुलसि सुगन्धित मध, धूप' ।

पंदि भूय करेह कारवेह, करित्ता य कारविता य सीहासण रयावेह, चाम
पयम् आणत्ति य पिप्पाम् एव पण्णपिण्ह^१

(५८) तप ए ते कोडुम्बिय पुरिसा सिद्धत्थेण रन्ना एव वुत्ता
समाया, दट्ठुत्तु जाय हय हियया, करयल जाय कट्ठु^२ "एव सामि"^३।
त्ति आयाप पिणपण ययण पडिसुणन्ति, चा सिद्धत्थस्स पत्तियस्स
अत्तियाओ पडिनिफ्फमन्ति, चा जेणेष बाहिरिया उयट्ठाण साला
तेणेष उवागच्छन्ति, चा पिप्पाम् एव सविसेस बाहिरिय उयट्ठाणसाल
गन्धोदय सित्त सुइअ जाय सीहासण रयायिन्ति, चा जेणेष सिद्धत्थे
पत्ति ए तेणेष उवागच्छन्ति, चा करयल परिग्गहिय दस-नह सिरसा
पत्त अञ्जलि कट्ठु सिद्धत्थस्स पत्तियस्स त आणत्ति य पण्णपिणन्ति।

(५९) तप ए सिद्धत्थे पत्ति कल्ल पाउ-प्पमायाए रयणीए
फुल्लुप्पल कमल कोमलुम्मिसियम्मि अहपरुदे पमाए, रत्तासोग-
प्पगास किंसुय सुय मुह गुज्जद राग सरिसे (बन्धुजीवग पारावण
चलण नयण परहुय सुरस लोयण जामुयण कुसुम रासि हिंसुल य नि
यराइरेय रेह-त सरिसे) कमलायर सण्ह योहवै उट्ठियम्मि खेरे, सह

मध्यमघत तुलना करो पञ्चाक्षरी मयया 'जलना', हिन्दी मधन 'देदीप्पमान'।
उदुपुप=उदुपू। पूव='पूव'।

१ पदि (पति)।

२ रयावेह 'तयार कर दिया है' थिजन्त (रच्)।

३ मध्यम पुरुष बहुवचन पण्णपिण्ह 'छोटता है' का छोटे रूप, प्रत्यय
से नामधातु।

४ कट्ठु (कर्तुं^१ मूलतः तुमुजन्त, क्त्वा^२त के अर्थ में प्रयुक्त, कृया)।

५ प्पगास (प्रकाश)। किंसुय (किंसुक)। सुय 'तोता' (शुक)।
गुज्जद। अ-वय है सिद्धत्थे सययिग्गमाओ अ-मुहेह। सति सत्तमी के साथ
रयणीए, पमाए, सुरे, दिणयरे, अयमारो, जीवल्लोए।

६ बन्धुजीवक 'दुपहरिया'। पारावण 'कनूतर' (पारावत)। परहुय
'कोपल' (परभूत)। जामुयण 'पीनी गुलाब'। हिंसुल य 'जाब पारा'।

रस रस्मिन्मि विणपरे सेथसा जलते, (अदृष्टमेण उहण दिवायदे, तस्स
य वर पहरापरस्मिन्मि अधयादे, चालायय कुकुमेण अविण् इय जी
य-लोपे) सयपिजाओ अभुद्धे ।

(६०) चा पाय पीढाओ पओरुद्ध, चा सेथेय अट्टण साला, सेथेय
उथागण्डुह, चा अट्टणसाल अणुपयिसह, चा अथेग थायाम जोग
वगण-यामहण मन्नजुय करणेहिं, मन्ते परिस्सग्गे सय पाग-सहस्स
पोगेहिं सुगग्घ तिल्ल माहणहिं पीगुणिजेहिं वीवणिजेहिं मयणिजेहिं
विहणिजेहिं दप्पणिजेहिं सग्गियदिय-गाय-परहापणिजेहिं अम्म
गिण्, तिल्ल चम्मसि णिउणेहिं पडिपुन्ना पाणि पाय तुप्पुमाला कोमरा
तलेहिं पुरिमेहिं अम्महण परिमहणुग्गलण करणुण निम्मापेहिं
छेपहिं वणजेहिं पेट्टेहिं कुसलेहिं मेढावोहिं जिय परिस्समेहिं अट्ठि

निकर 'पुञ्ज' । अतिरेक 'आधियय' । रोहम्त 'चमकता हुआ' ।

• बोहण 'जगनेवाला' (बोधकः) ।

१ अह ममेय 'उचित समय पर (वधाक्रमेण)' । पहर 'धूमे' (प्रहार) ।

अपरह 'जदेवा गया' (अप+राध्) । चालायय 'बाज रवि' । रविण्, मूत्र में
आधिय है ।

२ उतरता है (प्रति+अव+रह्) ।

३ अहण साला 'व्यापामसाला', अर्थ प्रसंग से प्रगट होता है । कादम्बरी में
व्यापाम-साला है ।

४ वगण 'कूटना काटना' । थामहण (वि+भा+मर्दन) । मन्नजुह,
'मन्नयुद्ध' ।

५ सय पाग—'सौ बार सोधा हुआ' (शत पाक) ।

६ अम्मगिण् 'अभ्यक्त', मागधी अम्मगिदे । जैमाहारपट्टी अम्मगिओ में
पुराण ग र्यों का र्यों विद्यमान है । (स० अभ्यक्त / अम्न्) । प्रीयणीय
स्कृति खानेवाला' । वुहणीय 'पुष्टिकारक' । प्रहादनीय 'तरावट खानेवाला' ।

• निमात्त अनुमयी' । उद्धखन 'तानना' ।

८ देह 'चतुर' प्रह 'अप्रयी' । मेघाविन् 'गुह्यमान' ।

सुहाय मंससुहाय तथा सुहाय रोम सुहाय चउन्विहाय सुह-परिकम्म
याय सवाद्धणाय सवाहिय समोण अवगय परिस्समे अट्टण सालाओ
पडिणिप्पम्मइ ।

(६१) चा जेणेव मज्जण घरे, तेणेव उवागच्छइ, चा मज्जण घर
अशुपविसइ, चा स मुत्त जालाकुलाभिरामे विचिच्च मणि रयण कोट्टिम-
तैले रमणिजे न्हाण मण्डवसि, नाणा मणि रयण भसि चित्तसि
न्हाण पीढसि सुह निससे पुण्णोदपहि य गन्धोदपहि य उसिणो-
दपहि य सुद्धोदपहि य कल्लाण करण पयर मज्जण विहीय मज्जिय,
तस्य कोउय-सर्पेहि बहु विदेहि कल्लाण पयर मज्जणावसाणे पग्गल
सुक्कुमाल गन्ध कामाहय लूहियऽहे अहय-सुमहग्य दूत-रयण सुस-
वुंढे सरस सुरभि गोसीस-चन्दणाणुलित्त गेत्ते सुह माला वन्नग वि
लेवणे आधिअ मोण सुयणे कप्पिय हारअ हारं तिसरय पालव-
पल्लवमाणे कडि सुत्तय-कय-सोमे पिणिअ नेविजे अइगुलिअगल-

१ तथा 'चमे' (* खच्चा=खक्) ।

२ जाळ, 'पथर की जाळीदार लिक्कियाँ' ।

३ कोट्टिम 'गच्च का करो' (कुट्टिम) ।

४ भसि (भवित) 'चित्र विचित्र सजावटें' ।

५ कोउय 'आन-द' (कौतुक) ।

६ पग्गल 'लग्ने वालों वाला' (पचमल) । कामाहय 'झाड़ रंगा हुआ' ।

लूहिय 'सुझाया हुआ' (लूहित ?) ।

७ अहय 'नया' (अहत) । दूत 'पौधाक' (गुल्लना करो दूत, 'तबू,
कपास') ।

८ गोसीस 'गाय का सिर—बहुमूल्य सद्म' ।

९ वन्नग 'सद्म' (वर्यक) ।

१० हार 'अठारह खूबों की माला' । तिसरय 'तिब्ब' ।

११ कडि (फटि) । सुत्तय 'कटिमेखला' (सूत्रक) ।

१२ पिणिअ 'पहना हुआ' (पिनअ) । प्रैवेव 'काजर' ।

लिय-कयाभरणेय धर कडग तुडिय थभिय मुंए अदिय कय सदिस
रीय खुडल उज्जोचियाणणे मउड दित्त सिरय हारोत्थय-सुकय
रइय घेन्ने मुदिया पिहलंगुलीय पालव पलवमाण सुकय पड उत्तरि
जेनाया मणि कण्ण रयण विमल महारिह निउयोविय मिसिमिसित
विरइय सुसिलिट्ट विसिट्ट-नद्धाविद्ध धीर यल्लेय; किं बहुया—कप्प
कप्पय चेय अलङ्किय विभूसिय तरिन्ने स-कोरिट मल्ल दामेय छेत्तेण
धरिज्जमाणेण सेय धर चामराहि उद्धुग्गमाणीहिं महल जय सइ
कयालोय अण्ण-गणनायग दण्डनायग राईसर तलवर माडविय
कोडुग्गिय मति महामति गण्ण-दोधारिय अमय-चेड पीडमइ नगरानि
गम सेट्टि सेणापइ सत्थवाह दूय-सन्धिवाँल-सद्धि सपरिबुडे धवल
महामेह निगाय इध गइ-गण दिप्पन्त रिफल तारा गणाण मज्जे

१ कय 'केश' (कच) ।

२ कडग 'कान (कटक) । तुडिय 'चूरी' ? (तुटिक) तुलना करो पञ्चाषी तोड़ा ।

३ उज्जोविय 'प्रकाशित' (उद्+घृ, किन्तु पिशब् ने § २४३ इसकी व्युत्पत्ति √ घृ से बतलाई है) ।

४ ओत्थय 'ढका हुआ' (अघ+स्थ), तुलना करो माहाराष्ट्री ओत्थइम (अघ+स्थम्) ।

५ ओविय 'सत्राया हुआ' । मिसिमिसित 'जागृत्यमान', अनुकरणार्थक नामधातु, संस्कृत में मिपमिथायते के रूप में लिया गया है । पिशब् § २५८ ।

६ उद्धुग्गमाय 'हिला हुआ' (उद्+घृ), ध्रुवह § १३२ ।

७ व्यक्रियाँ की इस त्रिहस्तिकी भिन्न भिन्न प्रकार से व्याख्या की जा सकती है । राईसर (राजेरवर) टीका=युवराज, जेकोवि E B E 'राजा महाराजा' । दण्डनायक 'न्यायाधीश', जेकोवि 'धरप' । तलवर 'अद्वारक', जे० 'सुभट' । माडविय 'झिले का अफसर जिसकी कतिपय शासनाधिकार होते हैं' । पीडमई 'सम्भूमन, सहचर', जे० 'नृत्ताचार्य' ।

ससि इय पिय-यसणे नर घई नरिन्दे नर यसदे नर-सीदे अम्भदिय
राय-तेय लच्छण दिप्पमाणे मज्झण घराओ पडिणिक्खमइ ।

(६२) चा जेण्य बाहिरिया उघट्ठाण-साला, तेण्य उवागच्छइ
चा सीहासणासे पुररथाभिमुदे निसीयइ ।

(६३) चा अप्पणो उत्तर पुररिथमे विसी भाए अट्ट महासणाइ
सेय-यस्य पच्छुत्थुंयाइ सिद्धत्थय कय मगलोवयाराइ रयावेइ, -चा
अप्पणो अदूर-सामन्ते नाणा मणि रयण मण्डय अहिय पेच्छणिज्ज
महग्ग घर पट्ठण्णय सणइ पट भत्ति-सय चित्त तौण ईहामिय-उत्तम
तुरय-नर मगर विहग घालग किन्नर रुह सरभ-धमर-कुञ्जर-वणल्लय-
पडम-लय भत्ति चित्त अभिन्तरिय जयणिय अट्ठावेइ, -चा नाणा मणि
रयण भत्ति चित्त अत्थरय मिउ मसूरगोर्त्थय सेय यस्य पच्छुत्थुय
सुमउय अग सुइ फरिसंग धासेट्ट तिसलाए अत्तियाणीए महासणं
रयावेइ, -चा कोडम्भिय पुरिसे सहावेइ, चा एय वयासी ।

(६४) “धिप्पाम् एय, भो देवाणुप्पिया । अट्ठह्म महानिमित्त
सुत्तरथ धारय धियिइ सरथ कुत्तेल सुधिय लक्खण पाढए सहावेइ” ।

अनुवाद

(५६) तब पौ फटने के समय सिद्धार्थ क्षत्रिय ने अपने कुटुम्ब
के नौकर चाकर बुलाये और इस प्रकार भाषण किया—

१ पुररथ ‘पूर्व’ (पुरस्तात्) ।

२ पच्छुत्थुय-पच्छुत्थुय ‘बका हुआ’ (प्रति+अव+स्तृ) ।

३ सणइ (श्रवण) । ताण ‘तागा’ (तान) ।

४ ईहामिय ‘भेजिया’ । ध्यात्त (क) ‘साव’ । जय, जया=जला ।

५ अट्ठावेइ ‘खींच लिया है’ ।

६ अत्थरय ‘बकना’ (आ+स्तृ) । मसूर (क) ‘तकिया’ ।

७ मठय ‘कोमल’ (मृदुक) । फरिसग (स्पर्शक) ।

(२७) 'ये देवताओं के सागुलो, अब आज शीघ्र बाद्य समा भवन को विशेष प्रकार से सजा कर तय्यार कर दो, (स्नान रक्खो कि उस पर) गंधोदक छिड़का जाय, उमे साफ किया, पुदारा, और पोता जाय, नारे पाच रंगों के सुगन्धित और सर्वोत्कृष्ट फूलों से सजाया जाय और फाले अगर, बड़िया से बड़िया कुन्दुरक और तुलसी की सुगन्धित वर्तुलाकार लटाओं से और बड़िया सुगन्धियों से तर-बतर बसों हुई जलती धूप से अत्यधिक मनोहर और सुगन्ध-वासिका जैसा बनाया जाय, और यह सब कुछ कर लेने पर मेरे सिंहासन को तय्यार करो, और यह करके मुझे शीघ्र इन आज्ञाओं के पूरा किये जाने की खबर दो ।'

(२८) तब राजा सिद्धार्थ से इस प्रकार सम्बोधित किये जाने पर परिवार के सेवकों ने हर्ष निर्भर हृदय से प्रणाम किया और यह कहते हुए नम्रता से राजाका शिरोधार्य की—“यद्गत अञ्जा स्वामिन् ।” तब ये सिद्धार्थ क्षत्रिय के पास से बिदा हुए, और समा के बाद्य भवन में गये और शीघ्र उन्होंने बाद्य समा भवन को सुगन्धित जल छिड़क कर और मार्जन आदि से सब तरह सजा दिया और सिंहासन को तय्यार किया । यह करके वे उस स्थान को लौटे जहाँ क्षत्रिय सिद्धार्थ था, और फिर इस प्रकार हाथ जोड़ कर कि जिससे दसों नाचून परस्पर मिल जाय उन्होंने अञ्जलि की सिर से लगाया और सिद्धार्थ क्षत्रिय को उस आज्ञा के पूरा होने की खबर दी ।

(२९) फिर प्रभात समय जब रात्रि का अधकार मर हो रहा था, जब पाण्डुर उषा ने प्रफुल्ल कमलों के कोमल पुष्पों को प्रकट किया, और सूर्य उदित हुआ, रक्ताशोक, सुसुमित किशुक, तोते की चौंच अथवा गुजार्थ जैसी अरुणिमा में जो यधुजीवक की भाँति, पारावत के नेत्रों और चरणों, कोयल के लोहित नेत्रों, चीनी गुलाब में पुञ्ज या दिग्गुल के डले, कमलाकर की जगनेपाछे

(अशुमाली) की भाँति देखीप्यमान थी, और सहस्ररश्मि दीकर अपने तेज से जल रहा था। जब काल क्रम से दियाकर उदित हो चुका था और उसने अपने कर प्रहार से अथकार को मगा दिया था, और अब जीय लोक मामो बाल रवि से कुकुम निमग्न हो रहा था, —सिद्धार्थ क्षत्रिय अपनी सेज से उठा।

(६०) और (सेज से) उठ कर वह पीढ़े से नीचे उतरा और व्यायामशाला को गया और उसने उसके अन्दर प्रवेश किया। और फूटने फाटने, मर्वन और मल्लयुद्ध जैसे अनेक कष्टसाध्य व्यायामों से वह नितान्त परिभ्रात हो गया, और उस (के शरीर) पर सौ या सहस्र बार सोधे हुए भाँति भाँति के सुगन्धित तेलों का उबटन किया गया, जिससे सारी इन्द्रियाँ और अथयय परिपुष्ट, कमनीय, ऊर्जस्वल, आह्लादित, प्रबल और परियर्क्षित हो गये। अभ्यञ्जन, परिमर्दन और वस्त्रस्नान के उत्तम गुणों से भली भाँति परिधित सुशिक्षित, कुशल, श्रेष्ठ, दत्त, चतुर और अपरिभ्रात पुरुषों ने अपनी मुकुमार और कोमल दृष्टिलियाँ और पैर के तलवों से तैलमय चर्म पर उसका उबटन किया। शरीर के इस चतुर्विध सुपकर सयाहन से राजा के अस्थि, चर्म, मांस और केयों के उपरुत हो धुकने और धकाधट मिट जाने पर वह समाभयन से व्यायाम करने निकला।

(६१) और छानागार की ओर चल कर उसने उसके अन्दर प्रवेश किया। अनेकों मुक्ता जालों से मनोभिराम, विचित्र मणि रत्नों से राचित कर्णवाले, रमणीय छानागार में वह आराम से नहाने के पीढ़े पर बैठा जिसकी चित्रकारी में नाना प्रकार के मणि और रत्न जड़े हुए थे, और फिर उसने कल्याणकारी उत्तम मज्जा विधि से पुष्पोदक, गन्धोदक, उष्णोदक और शुद्धोदक से स्नान किया। सैकड़ों कौतुकों से युक्त इस बहुविध, कल्याणकारी, उत्तम स्नान के समाप्त हो जाने पर उसका शरीर लम्बे रोओं वाले

फोमल, सुरभित और रंगीन तौलिये से पोंछा गया, उसको नई और बढ़िया महार्घ पोशाक पहनाई गई, उसके अर्गों पर सरस और सुरभित गोशीर्ष और चन्दन का अजुलेपन किया गया और उन्हें बढ़िया मालाओं और घर्णक से अलंकृत किया गया। उसने मणि और सुवर्ण धारण किये अठारह लड़ी, नौ लड़ी, तिलड़ी मालाएँ पहिनीं और एक ऐसी माला पहनी जिस पर प्रसम्भ मणि लटक रहा था और अपने आपको कटि सूत्रक से सुसज्जित किया। उसने एक कण्ठ पहिना और अंगूठियाँ और कमनीय कचाभरण धारण किये, और अपनी बाँहों को बढ़िया कबों और कगनों से भाराक्रान्त किया। उसकी रूपध्री लोकोत्तर थी। उसका मुख कुण्डलों से और सिर मुकुट से जाज्वल्यमान था। उसका वक्ष स्थल मालाओं से आच्छन्न, सुसज्जित और अलंकृत था, उसकी उँगलियों मुद्रियों से स्वर्णमय हो रही थीं। उसका बढ़िया उत्तरीय (चोगा) मुक्ता प्रलम्बों से झूल रहा था। अपनी अपराजित सुभटता के उपलक्ष में उसने जगमगाते हुए, सुश्लिष्ट, मञ्जवृत, बढ़िया, सुन्दर बाजूरन्द (बलय) पहने हुए थे, जिन्हें निपुण कलाविदों ने विमल और महार्घ मणियों, सुवर्ण और नाना प्रकार के रत्नों से बना कर तय्यार किया था। अधिक फ्या कहें, राजा अलंकृत और विभूषित कल्प वृक्ष था। उसके ऊपर एक छत्र रक्षपा हुआ था जिस पर कोरिंट के फूलों की मालाएँ और द्वार लटक रहे थे। उसके (सिरके) ऊपर बढ़िया चबुर भले जा रहे थे, उसके दर्शन होने पर मंगल जय ध्वनि होती थी। अनेक गणनायकों, दण्डनायकों, राजा महाराजाओं, अगस्त्यों, जिलों के विशेष अधिकारियों कुटुम्बों के प्रमुख पुरुषों, मंत्रियों, महामंत्रियों ज्योतिषियों द्वारपालों, अमात्यों, चाकरों, धौठमवों, नागरिकों, महाजगों, सार्यवाहों, सेनापतियों, गोष्ठाप्रणियों, उष्ट्रवाहों, सन्देश दूतों और सीमान्त रक्षकों से परिवृत होकर जय नरर्पम, नरसिंह,

नरपति, नरेन्द्र स्नानागार से निकला तो वह पेसा सुहावना लगता था जैसे ग्रहों और देवीप्यमान नक्षत्रों और तारों की भीड़ में किसी घबल महामेघ के भीतर स चन्द्रमा निकल आया हो ।

(६२) (फिर उसने) बाह्य समा भवन में प्रवेश किया और पूर्व की ओर मुह करके वह अपने सिंहासन पर बैठा ।

(६३) उसने उत्तर पूर्व की ओर आठ भद्रासन बिछाने की आज्ञा दी, जो कपड़े से ढके हुए और मङ्गलमय सरसों से सजे हुए थे । अपने आपसे न बहुत दूर और न बहुत निकट महल के भीतरी भाग की ओर उसने एक यवनिका डलवाई । यह यवनिका नाना प्रकार के रत्नों और मणियों से अलङ्कृत, अत्यन्त दर्शनीय और महार्घ थी और एक विधुत नगर में बन कर तय्यार हुई थी; उसका विग्रह पट एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र सैकड़ों विभ्र शिन्ध्याओं से आच्छन्न और भेड़ियों, बैलों, घोड़ों, मनुष्यों, मगरमच्छों, पक्षियों, सर्पों, किन्नरों, मृगों, शरभों, क्षमरियों, हाथियों, शताशुर्मों और पौधों के चित्रों से अलङ्कृत था । उसके पीछे उसने क्षत्रियाणी मिशला के लिए उत्तम भद्रासन बिछाने की आज्ञा दी, जिस पर तरह तरह के मणि और रत्न जड़े हुए थे और जो एक आवरण और कोमल तकिये से सजा हुआ और बहुत मृदु और हृद्य स्पर्श वाले सफेद घस्र से आच्छन्न था । फिर उसने परिवार के नौकरों को बुलाया और इस प्रकार भाषण किया—

(६४) "ये देवताओं के लाबलो, शीघ्र स्वप्न-व्याखाताओं को बुलाओ, जो अष्टाङ्ग महानिमित्त शास्त्र को भली भाँति जानते हों और साथ ही विविध शास्त्रों में कुशल हों ।"

उद्धरण नं० २२

मागधी

शकुन्तला

छठे अदक का प्रवेशक

(तत प्रविशति नागरिक श्याल पञ्चाद्वय पुरुषमादाय
रक्षिणौ च)रक्षिणौ-इएहे कुम्भिलआ ! कधेहि, कहिं, तप परे महालङ्ग
भाशुले उक्खिएणामकखले लाअकीए अगुलीअए शमाशादिदे ?^१पुरुष -(भीतिनाटितकेन) परीदन्तु मावमिश्या ! ज हगे
इंदिशइश अकअयइश कालके ।^२प्रथम -किं ए कए शोइये बरइये शि त्ति कदुअ लअआ दे पति-
गइये दियणे ?^३पुरुष -शुणुध दाव । हगे कए शकावदाल पाशी धीपेले ।^४द्वितीय -इएहे पाइअला । किं तुम अरहेहिं पादि बरहिं च
पुअिदे ?^५

१ इएहे, तुझना करो हन्त, हट परे; केवल छोटे के लिये प्रयुक्त होता है ।
कुम्भिलअ 'बोर', आरम्भ में इसका अर्थ 'नाका' था । अद्वय=शौरसेनी रक्ष
(माहाराष्ट्री रक्ष) ५ ३६ । भाशुल=भासुर । उक्खिएण=उत्कीर्ण । अकखल=
अक्षर, वैयाकरणों के अनुसार इसे अरकल अथवा हेमचन्द्र के अनुसार अरकल
होना चाहिये (अ=त्रिह्रस्वमृजीय) । लाअकीए 'राजकीय' । पिशल ने सोचा
था कि यहाँ पर हमें लाअ-केलके पढ़ना चाहिये । शमाशादिदे (सम्+आ+सद्) ।

२ अकअय (अकार्य) 'अपराध' । पिशल के पाठ में अकअस्त है, उनकी
अधिकार्य हस्त लिखित प्रतियों में अकअस्त है जो शौरसेनी है । काअके=कारक ।

३ अम्ना 'राजा से' ।

४ शकावतार, धीवर ।

५ पाइअर अथवा पदअर 'बोर' । यदि हस्तलिखित प्रतियों की भांति

श्याल -सूअअ ! कघेदु सअव कमेण । मा ऐ पडिवन्धेध ।^१

उमौ-य लाउत्ते आणवेदि । लवेदि, ले लवेदि^२ ।

पुरुष -शे हगे थालवडिश प्पहुदीहिं मअ-यन्धणो वाएहिं
कुहम्य भलण कलेमि^३ ।

श्याल -(विहस्य) विसुखो दाणिं दे आजीवो ।

पुरुष -भट्टके मा एव भण !

शहये किल ये वि णिन्दिदे न हु शे कम्म विवज्जणीअके
पशुमालि कलेदि कालणा छक्कमा विदुले वि शोत्तिपं ।

श्याल -तवो, तवो !

पुरुष -अध एकदिअश मप लोहिद मअके खण्डयो कप्पि
दे^४ । याय तशश उवलभन्तले एव महा लदण भाशुलं अगुलीअअ
पेस्कामि । पअा इध विकअत्थ ण दशअन्ते एव गहिदे भाव

पाठ में आदि है । पिछल प्रामर § २१६ से प्रगट होता है कि हर हासत में प
पका जाना चाहिये । पुदिअदे=शौरसेनी पुदिअो ।

१ कोतवाज की बोखवाज मागची नहीं है । सूअअ 'जासू' (सू) ।

२ लाउत्ते, लाअवत्ते का सचित रूप=शौरसेनी राजवत्तो (राजपुत्र),
अथवा अपभ्रंश राजवत्तु, बिहारी राजत (राजवत्त) देखो ग्रीयर्सन्, कोनोखीजी ।

३ पाल 'जाज' । बडिअ 'दांअ' । मअ 'मछली' । कलेमि=शौरसेनी
करेमि ।

४ शहय (सहज) । विवज्जेनीय—भाजि='मारयम्' । काजणा=कारणात्—
कम्मा—एव के लिये दीर्घ, विदुले (पट्कर्मों में) 'कुशल' । शोत्तिप=श्रोत्रिय ।

५ लोहिद—'रोह' शौरसेनी रोहिदो, माहाराष्ट्री रोहिओ (?), अपभ्रंश
रोहिड, हिन्दी रोह । खट्टो कप्पिदे (कट्) 'काटकर टुकड़े टुकड़े किया' ।
पेस्कामि' हेमचन्द्र और अन्य चैयाकर्यों के अनुसार यह शब्द रूप है । (पिछल
प्रामर § २२४ ।) एक और प्रमाण और खलितविम्वहराज नाटकम् के अनुसार
इसे पेस्कामि होना चाहिये । पाठ में पेस्कामि है ।

मिश्रेहि । एत्तिके दाव पदश्च आगमे । अधुना मालेध कुट्टेध यां ।

श्याल - (अगुलीयकमाधाय) जाणुअ, मच्छोदर सठिइ ति यत्थि
सदेहो । तथा अअ से विस्सगन्धो । आगमो दाणि पदस्स वि
मरिसिद्धवो । ता एध राउअल जेव गच्छग्दे ।

रक्षिणी - (पुरुष प्रति) गअ से गरिठछेदअ गअं ।

श्याल - सूअअ ! इध गो-उर दुआरे अप्पमत्ता पडिवालेध म
जाय राअउल पयिसिअ णिअमामि ।

उभौ - पयिशदु लाउत्ते यामि प्पशादत्थ ।

श्याल - तथा । (निष्क्रान्त)

सूचक - जाणुअ । चित्ताअदि लाउत्ते ।

जानुक - अ अवशलोवशप्पणीआ रु लाआये होमि ।

सूचक - जाणुअ ! स्फुलन्ति मे अगइस्ता । (पुरुष निर्दिशति)

इम गरिठछेदअ वावादेदुम् ।

पुरुष - णालिहिइ भाये अकालए मालके भोदुं ।

जानुक - (विलोप्य) एसे अग्धाय ईशेले पत्ते मेरिहअ लाअ शा

१ विस्कमथ 'विक्री के लिये' । मालेध, मालेदि=मारयति का लोट रूप ।
कुट्टेध, कुट्टेदि (कुट्टयति) का लोट रूप ।

२ जाणुअ (जानुक) पुत्रिस के सिपाही का नाम । विस्स=विघ्न 'आम
गधि', टीका आमिप 'कच्चा मांस' । विमरिसिद्धवो=विमर्श-य नियम किया
जाना चाहिये ।

३ गठि छेदअ गठकय' ।

४ चित्ताअदि 'बड़ा समय हो गया है (चिन्तायते) ।

५ 'राजाओं के पास अवसर देख कर जाना होता है (उप+एप्) ।

६ स्फुलन्ति स्फुरित हो रहे हैं' । पाठ में फुलति है किंतु देखो पिशल
§ ३११ । इसी प्रकार हस्ता (पाठ हत्था) के लिये § ३१० । वावादेदु तुमुधत्त
थिजत्त (वि+आ+पद्) ।

• य+अलिहिइ (आईति) ।

शण (पुरुषे प्रति) शउलाण मुह पेस्कशि, अधवा गिद्धशिआलाणं बली मविशशि^१ ।

श्याल —(प्रविश्य) सिग्ध सिग्ध पद ।

पुरुष —हे हृदे गिह (सविपादम्) ।

श्याल —मुञ्चेध रे मुञ्चेध जालोवजिवण, उववणो से किल अगुलीअअस्स आगमो, अम्ह सामिणा जेय मे कधिद ।

सूचक —यथा आणवेदि लाउत्ते । यम-वशदि गदुअ पडिणिउत्ते एउ पशे (पुरुष मुक्तपन्धनं करोति) ।

पुरुष —(श्याल प्रणम्य) भट्टके तव केलके मम धीविदे । (पादयो पतति)^२ ।

श्याल —उत्थेहि, उत्थेहि ! एसो भट्टिणा अगुलीअअ मुल्ल सामिमदो पारिदोसिओ दे पसादीकिदो । ता गेवह पद (पुरुष केयूर प्रयच्छति) ।

पुरुष —(सहर्षे प्रतिगृह्य) अणुगहिदे गिह ।

जानुक —एशे खु लब्भा तथा णामे अणुगहिदे य शलादो ओ दालिअ हस्तिस्कन्ध शमालोयिदे ।^३

सूचक —लाउत्ते । पालिदोशिय कधेदि महालिह लदणेण तेण अगुलीअएण सामियो बहुमदेण होदग्घ ति ।^४

१ शउल एक प्रकार की मछली (शकुल) यहाँ भिन्न भिन्न पाठ हैं । पिशज के कथनानुसार=स्वतुलानाम् ।

२ केलके=केरको, -केरो, केर, पूर जैसी सम्बन्ध कारक की विभक्तियों का पूर्वरूप । धीविदे 'जीवन' ।

३ ओदाबिअ (गुलना करो ओदार § ७२)=अवतार । शमालोविदे शिजन्त शान्त (सम्+आ+इह) । 'हस्ति-स्कन्धास्ठ' से उच गौरवमय पद का बोध होता है (मो० वि०) । पाठ में-हत्ति-वध्ध है ।

४ महालिह=महार्ह ।

श्याल—ए तारिंस भट्टियो महारिद रदण ति ण परिदोसो ।
पत्तिक उण—

उभौ—किं णाम ?

श्याल—तस्मैमि तस्स दसणेण को वि द्विअअ तिथदो जणो
भट्टिणा सुमरिदो ति, जदो त पेक्खिअ मुहुत्तअ पइदि-गम्भीरो
वि पज्जुस्सुअ मणो आसि ।

स्वक—तोशिदे दाणि भट्टा लाउत्तेण ।

जानुक—ए भणामि इमश्श मच्चली शत्तुणो किदे^१ ति । (पुरुष
मस्यया पश्यति)^२ ।

पुरुष—महका इदो अउ तुम्हाण पि शुला मुञ्ज भोडु ।

जानुक—धीधल ! महत्तले शम्पद मे पिअयअश्शके शत्तुत्ते
अशि कादम्बली शदिके^३ कल्लु पदम अम्हाण शोहिदे इधीअदि ।
ता शुण्डिकागाल येव गच्चम्है । (निष्काता सर्वे) ।

अनुवाद

(नगर का कोतवाल दो सिपाही और एक धीघर)

सिपाही—घतारे तस्कर ! तू ने यह नाम खुदी हुई महारजों से
वेदीप्यमान अगूठी कहाँ पाई है ?

धीघर—(भय दिखलाता हुआ) दया करो, साक्षि । मैं ऐसा
अपराधी नहीं हूँ ।

१ पइदि प्रकृति । पज्जुस्सुअ (पर्युत्तुक) तुलना करो § ४१ ।

२ मयली 'मछली', तुलना करो द्वि-दी मछली, सि-धी मछरी, सराठी
मासली जिसकी व्युत्पत्ति म-ज्ज=मत्स्य, § १६, से है ।

३ महत्तले महत् का तरप् प्रत्ययान्त रूप । कादम्बली, कदम्ब 'मय' ।
शदिके 'ज्योत्नार सुलोपभोग' (सन्धि) । शोहिदे=सौहृदम् । शुण्डिकागाल
'कल्लाल की दूकान' ।

पहिला सिपाही—तो क्या तू कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है यह सोचकर राजा ने तुझे (यह अगूठी) दान में दी है ?

धीवर—पहिले मेरी बात सुन लो । मैं शकावतार तीर्थ का धीवर हूँ ।

दूसरा सिपाही—अरे चरकट्टे ! क्या हम तेरी जात पाँत पूछते हैं ?

कोतवाल—सूचक ! इसे सारा ब्योरा इच्छापूर्वक कहने दो । बीच में न रोको ।

दोनों सिपाही—जैसा कोतवाल जी आज्ञा करते हैं । कह रे, कह ।

धीवर—मैं जाल और बहिश से मछली पकड़ कर अपने कुटुम्ब का भरण करता हूँ ।

कोतवाल—(इस कर) अजीबिका तो तुम्हारी अत्यन्त शुद्ध है ।

धीवर—महाराज ! ऐसा न कहें । जो अपना स्वाभाविक कर्म है वह चाहे निन्दित ही क्यों न हो, उसे नहीं छोड़ना चाहिये । ओभिय लोगों को दयार्द्र होते हुए भी पशुओं के मारने के काम में निष्ठुर होमा पड़ता है ।

कोतवाल—अच्छा, फिर ?

धीवर—फिर एक दिन मैंने रोहू मछली को काट कर टुकड़े टुकड़े किया । इसी बीच मैंने उसके पेट में यह महारत्नों से वेदीप्यमान अगूठी देखी । इसके बाद जब मैं इसे बेचने को दिख ला रहा था, आप लोगों ने मुझे पकड़ लिया । यही इसके मिलने का ब्योरा है । इस समय (जैसा तुम्हारे धर्म में आवे) चाहे मुझे मारो चाहे छोड़दो, (कूटो) ।

कोतवाल—(अगूठी को सूँघ कर) जालुक ! इसमें सन्वेद नहीं कि यह मछली के उदर में थी । इसलिए इसमें मास की गन्ध है । अब इसकी प्राप्ति के वृत्तान्त पर विचार करना चाहिये । तो चलो

राजदरबार में चले ।

दोनों सिपाही—(धीवर से) चल रे ! गठकटे, चल ।

कोतवाल—सूचक ! जब तक मैं राजदरबार से न लौटू तब तक तुम सावधान हो कर यहाँ गोपुर द्वार पर प्रतीक्षा करो ।

दोनों—महाराज को प्रसन्न करने के लिये राजपुत्र जाय ।

कोतवाल—अच्छा । (जाता है)

सूचक—जानुक ! राजपुत्र ने (कोतवाल जी ने) देर लगा दी है ।

जानुक—उचित अग्रसर को देख कर ही राजाओं के पास जाना होता है ।

सूचक—जानुक ! मेरे हाथ लुजा रहे हैं । (धीवर के प्रति इशारा करता हुआ) इस गठकटे के काम तमाम करने के लिए ।

धीवर—आप लोगों को मुझे अकारण ही तो नहीं मारना चाहिये ।

जानुक—(धारों ओर देख कर) ये हमारे स्वामी राज आकाश का पत्र लेकर आते हैं । (धीवर से) अब तू या तो कुत्तों का मुँह देखेगा या गिर्र और सिपारों का शिकार बनेगा ।

कोतवाल—(प्रवेश करके) जल्दी जल्दी इसको (आवाज़ घीमी कर लेता है) ।

धीवर—(विषाद से) हाय ! मरा ।

कोतवाल—इस धीवर को छोड़ दो जी, छोड़ दो । स्वयं महा राज ने मुझ से कहा है कि यह अगूठी के मिलने का घृत्तान्त ठीक है ।

सूचक—राजपुत्र की जैसी आशा । यम के घर पहुँच कर यह फिर (जीयलोक को) लौट आया है (धीवर को छोड़ देता है) ।

धीवर—(कोतवाल को प्रणाम करता है) महाराज ! यह जीवन आप ही का है । (उसके चरणों पर गिरता है) ।

कोतवाल—उठो जी उठो ! महाराज ने तुम्हें यह अगूठी के मूल्य के बराबर पारितोषिक देने की कृपा की है, इसे लो । (धीवर को एक कगन देता है) ।

धीवर—(हर्ष से लेकर) मैं अनुगृहीत हूँ ।

जानुक—इस पर तो राजा का इतना अनुग्रह हुआ है कि इसे खूली से उतार कर हाथी की पाँठ पर चढ़ा दिया है ।

सूचक—कोतवाल जी ! इस पारितोषिक से जान पड़ता है कि वह बहुमूल्य रत्नों से जड़ी हुई अगूठी राजा को अत्यन्त अमीष्ट होगी ।

कोतवाल—बहुमूल्य रत्नों से जड़ी हुई होने के कारण वह राजा को इतनी आनन्ददायक नहीं । किन्तु बात यह है—

दोनों—क्या बात है ?

कोतवाल—मेरे विचार में उसके दर्शन से राजा को अपने किसी हृदय स्थित जन की मुग्ध आई है जिससे उसको देखकर प्रकृति गम्भीर होने पर भी स्वामी का हृदय क्षणभर के लिये पर्युत्सुकता से भर आया ।

सूचक—तब तो आपने महाराज को खुश कर दिया है ।

जानुक—मैं तो यूँ कहूँगा कि इस मत्स्यशत्रु (धीवर) के लिए ही यह सब किया है (ईर्ष्या से धीवर को देखता है) ।

धीवर—महाराज ! यह लो, यह आधा आपके जलपान के लिए है ।

जानुक—धीवर ! अब तो तू हमारा बड़ा प्यारा मित्र हुआ, अतएव मदिरा पीकर हमारा यह प्रथम सौहार्द मनाया जाना चाहिये । तो फलाल की द्वाट पर चलो ।

उद्धरण नं० २३

भागधी

स्वाधरक (मृच्छं० अङ्क १०)

(ततः प्रविशति मामादस्यो बन्धुः स्वाधरकः)

(स्वाधरको घोषणमाकर्ण्यं मयेकत्रयम्) कथं अपाये चानुदत्ते
 बाबादीमदि ! इमे शिञ्जलेऽयं शामिणा बन्धिदे । भोदु । अक-
 'दामि । शुदाध, अस्या शुदाध । अस्ति दाणिं मय पावेऽयं पचदय
 पडिबत्तेण पुस्स कलएडमयिणएव्याणं वसन्तेशया जीदा । तदो
 मम शामिणा 'म ए कामेशि सि कदुम, पाडु पाय बलजालेऽयं मासि-
 दा, ए उण यदिता अय्येण । कथं ? विदूतदाय ए को यि शुदादि ।
 ता किं बलेमि ? अत्ताणम पाडेमि । (विचिन्त्य) यइ एव्व बलेमि,
 तदा अय्य-चानुदत्ते ए बाबादीमदि । भोदु । इमादो पाशाद-या
 लग्ग पदोलिकादो यदिता यिणं गवक्खेऽयं अत्ताणम णिपिययामि ।
 बल इमे उवलदे, ए उण एते कुल पुत्त पिदगाणं घाशपाद्वे अय्य
 चानुदत्ते । एव्व यइ विवय्यामि लदे मय पललोप । (इत्यात्मानं
 पातयित्वा) ह्री ह्री ! ए उवलदे' म्दि । भग्गे मे दएड शिञ्जले । ता
 चएडाल घोश शमयणेशामि ।

अपाये 'अपाय' निर्दोषः । बाबादीमदि, कर्मवाच्य णिजन्त
 (वि+आ+पद्) । शिञ्जलेऽयं 'बेडी से' (निगड) । मासिदा=शौरसेनी
 मासिदा । —बाललग्ग 'कथूनरखाना' (?) (बालाग्र) । पदोलिका
 (प्रतोली+का) 'फाटकमार्ग' (देखो प्रोगल J R A S जुलाई १९०६)
 गवपल 'गवाक्ष, गोल छिडकी' या रत्न । उवलदे 'मर गया' (उप-
 रत) । पाद्वे 'पादप', वृक्ष । विवय्यामि (मूल विवज्यामि) (वि+
 पद्) । पल लोप परलोक' ।

अनुवाद ।

निर्दोष चारुदत्त को क्यों मारते हो ? मुझे स्वामी ने बेड़ी से जकड़ दिया है । अस्तु, मैं चिन्ताता हूँ । सुनो, महानुभावो, सुनो । घस्तुत मैं पापी गाड़ियों की अदला बदली से वसन्तसेना को पुराने पुष्पकरण्डक बाग में ले गया । इसके बाद मेरे स्वामी ने यह सोच कर कि यह मुझे नहीं चाहती बलात्कार से उसको मार डाला, इस आर्य चारुदत्त ने नहीं । क्यों ? दूर होने से कोई भी नहीं सुनता । तो क्या करूँ ? अपने आप को गिराता हूँ । (सोच कर) यदि ऐसा करूँ तो आर्य चारुदत्त नहीं मारा जायगा । अस्तु इस महल के कवचरत्नाने की प्रतली से इस पुराने झरोखे से अपने आप को गिराता हूँ । मेरा मरना बेहतर है, कुलपुत्र विहङ्गमों के आश्रय वृत्त इन चारुदत्त का नहीं । इस प्रकार यदि मर गया तो मुझे परलोक प्राप्त है । (अपने आप को नीचे गिराता है) अहह ! मैं मरा नहीं हूँ । मेरी बेड़िया टूट गई हैं । तो अब जिघर से चाण्डालों का शब्द सुनाई देता है उधर ही चलता हूँ ।

उद्धरण नं० २४

मागधी

(मृच्छकटिक अङ्क १०)

शकार

(प्रविश्य सहर्षम्)

मंशेण तिष्णामिलिकेण भत्ते

शाकेण शूषेण श मन्थकेण ।

भुत्त मए अत्तणअश्श मेहे

शालिश्श कुलेण गुल्लोदणेषे ।

१ भुत्त मए 'मैंने खा लिया है' (भुज्) । तिष्ण 'तीखा=तीक्ष्ण' । (रायद तिरस्त्र अथवा तिरस्त्र बेहतर मागधी होगी) । ग्रामिलिक 'खट्टा' 'हमची' (अम्लिका, गुल्लना करो हिन्दी हमची) । भत्ते भोजन 'भात', मन्थ, गुल्लना करो हिन्दी भात । शूष, नियमानुसार शूष होना चाहिये था, गुल्लना करो स्व ।

(फर्ण दत्ता) मिण-कश चयणाप चण्डालघात्राप शलशयोपे ।
 यथा अ एशे उपखालिदे वज्जु दिण्डिमशहे पट्टहाण अ शुणीअदि,
 तथा तप्केमि, दलिह-चालुदत्ताके वज्जु ट्ठाण खीअदि सि^१ ।' तर
 पेस्किरशम् । श्चुविणाशे शाम मम महन्ते हल्लफकश पलीदोशे होदि^२ ।
 शुद अ मप, ये वि किल श्चु वायादअत पेस्कदि, तश्च अणार्शिश
 जम्म^३ तले अ^४खि लोणे ण होदि । मप खु विश-गरिठ गम्म पविस्टेण
 विअ कीटण किं पि अतल मग्गमाणेण उप्पादिदे ताह दलिह
 चालुदत्ताह विणेशे । शपद अत्तणकेलिकाप पाशाद बालग पदो
 लिकाप अहिलुदिअ अत्तणो पलफकम पेस्कामि^५ । (तथा कृत्वा
 द्वा च) ही, ही, यदाह दलिह-चालुदत्ताह वज्जु खीअमाणाह एव
 ह्दं यणशमहे, य वेल अम्हालिशे एवले वल मणुशे वज्जु णीअदि
 त वेल केलिशे भये^६ ? (निरीक्ष्य) कध ! एशे शे एवदल्लहके विअ

अत्तणय्यरश, अत्तयो का उत्तरकाजीम रूप, § १६ । वृज 'मोजन उवाले
 हुण पावल ।' शुद्धोदय 'मीम भात' (हिन्दी गुह) ।

१ शलसपोअ 'स्वर सयोग' 'उच्चारण का आरोह अवरोह' ।
 वाचा 'वाक्', कश 'प्यावा, कटोरा' (कांस्य, कांसा) ।

२ उपखालिदे 'चढ़ाया, उठाया' । खल्ल हरकत करना या हिलना । वज्जु
 'वध का', (वध) । मागधी का ठीक रूप वज्जुह कहा जाता है । यह इस
 संयुक्त रूप से मालूम होता है कि मागधी के व का उच्चारण साधारण व से
 भीर अ से भिन्न था । हेमचन्द्र के अनुसार ट्ठाण, स्ताण
 होना चाहिये ।

३ हल्ल साधारण रूप है, हल्लअ, हल्लक (पद्य में) भी होता है, *हल्लक ।
 ४ मूल पाठ अन्धि (पिण्ड § २३) । कीटम 'कीटा' (कीटक) । विणगठि !
 एक पोथा ।

५ अहिलुदिअ (अधि+रुह) । बालग (देखो उद्धरण नं० २३) ।

६ एवह्दं 'इतना बढ़ा' (जैन माहाराष्ट्री एवहु एवहुग) ए एव से नहीं,
 किन्तु * अय से (पिण्ड § १३६, सुखना करो अयत्त-स्य * अयत्तिअ प्तिअ)

मण्डेदो दक्षिण दिश सींअदि । अध किणिमिस्त मम केलिकाप
पाशाद-यालभ पदोलिकाप शमीवे घोशणा शिवादिदा, निवालिदा
अं ? (विलोप्य) कध ! स्तावलके चेदे वि श्तिथ ईध । मा खाम
तेण इदो गदुअ मन्तभेदे कडे भविशदि । ता याव ण अणेशामि ।
(इत्यतीर्य उपसर्पति) ।

चेट —(दृष्ट्वा) मट्टालका, पशे शे आगदे ।

खाण्डालौ—ओशलध, देध मगा, दाल दळेध, होध तुणहीआ,
अधियअ तिक्क विशाणे दुएवइसे इदो एदि ।

इस पात्र की बोली शकारी मानी गई है (देखो अगला उद्धरण) ।
किन्तु यह स्थल बहुत कुछ उसी प्रकार की भागधी में प्रतीत होता
है जैसी अन्य पात्रों से बोली जाती है ।

अनुवाद

शकार—(द्वय से) मैंने अपने घर में भात खाया है, जिस में

बहु=बहु । पण्यमइ 'जनसमइ', लोगों की भीड़ । पवसे=शौरसेनी पवरो ।
केलियो=कीलरा ।

१ धरके 'बैल' (तुलना करो बलीवर्द्ध) । १ दक्षिण ।

२ शिवादिदा (नि+पण्) । शिवादिदा (नि+पु विजन्त) ।

३ स्तावलके (मूल पाठ ठावलके) (स्थावरक) ।

४ मन्तभेदे 'मन्त्रभेद', 'विश्वासघात ।' कडे=कृत ।

५ ओशलध (अप् अथवा अण्+सु) । दाल 'दाल' शौरसेनी दुधार । दळेध
'ढक दो' दळेदि 'ढकता है' से, तुलना करो पाकि सकेति जो * स्पक् जैसे किसी
भार्यभानु से बना है, तुलना करो हिंदी ढांकना, ढकना । विशाण 'सांग' ।
बइसे 'बैल', । अपमग बहु, भाषुनिक 'बैल' । चारदावी कभी कभी
पृथक् बोली मानी जाती है और उसे अपमग की भेदी में रक्ता जाता है ।

मास था, खटार्ई चटनी, साग शोरवा, मछली, उबले हुए चावल और मीठा मात सब कुछ था ।

(कान देकर) यह जो टूटे हुए कास्य पात्र को बनखन ध्वनि नेनी चाण्डालों की वाणी का स्वरसंयोग और वध्यस्थान के ढिण्डियों और पटकों का शब्द सुनाई देता है, इस से मालूम होता है कि दरिद्र चारुदत्त वध्य स्थान को ले जाया जाता है । तो (बल कर) देख । शत्रु के विनाश से मेरे हृदय को महान् सन्तोष होता है । मैंने सुना है कि जो शत्रु को मारे जाते देखता है उसे अगले जन्म में आँख का रोग नहीं होता । कमल प्रविष्ट के अन्दर प्रविष्ट कीड़े की भाँति अघकाश दूढ़ते हुए मैंने इस दरिद्र चारुदत्त के विनाश की आयोजना की है । अब अपने महल की प्रतीतिका पर चढ़कर अपने पराक्रम को देखता हूँ । (चढ़कर देखता है) अहह ! इस दरिद्र चारुदत्त को वध्यस्थान में ले जाते हुए इतनी मीढ़ हो रही है, जिस समय हम जैसे भेष्ट मनुष्य वध्यस्थान को ले जाये जायेंगे उस समय कितनी मीढ़ होगी ? (देख कर) हैं ! यह ठण्ठ बैल जैसा सजाया हुआ दक्षिण दिशा को ले जाया जाता है । यह क्या ? मेरे महल की प्रतीतिका के निकट जा कर घोषणा बन्द क्यों हो गयी है ? (चारों ओर देखकर) हैं ! मेरा दास स्थावरक भी यहाँ नहीं है । कहीं उसने जाकर भेद न खोल दिया हो । तो अब उसे दूढ़ता हूँ । (नीचे उतर कर आगे बढ़ता है) ।

स्थावरक—(देख कर) स्वामी, यह मेरा स्वामी आ पहुँचा है ।

चाण्डाल—हटो जी हटो, रास्ता छोड़ो, द्वार बन्द कर लो, चुप हो जाओ, अविनय धारी पैंने सींगों वाला यह दुष्ट बैल इधर आ रहा है ।

उद्धरण नं० २५

मागधी

शकारी बोली

मृच्छकटिकम्

(अ) अङ्क १, ५ १८

चियष्ठ, वयतशेणिये, चियष्ठ,

किं याशि, घाघशि, पलाअशि पस्वलन्ती

घाशू पशुदि ए मलिशशि, चियष्ठ दाब ।

कामेण वज्झदि हु मे हडके तवशु

अगाललाशि पडिदे विअ मशखडे ॥

चियष्ठ=तिष्ठ, पिशल ग्रामर §२४ और §२१७ में चियष्ठ रूप के और साधारणतया च से पहले अल्पप्राण य के लिए पृथ्वीधर टीकाकार को प्रमाण बतलाते हैं, उन्होंने मागधी और बाघड अपभ्रंश में च और ज से पहले अल्पप्राण य के समर्थन में मार्कण्डेय को भी उद्धृत किया है—मागधी चिल=चिरम्, जाआ=जाया। चियष्ठ रूप के समाधान में यह कहा जा सकता है कि अनोखे च के स्थान को प्रचलित च ने ग्रहण करलिया है। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि कोई इस बात को नहीं जानता कि चियष्ठ का उच्चारण कैसा होना चाहिये। हम निम्नपूर्वक नहीं कह सकते कि प्राचीन मगध में च का उच्चारण कैसे होता था, किन्तु यदि घट किसी भी आधुनिक उच्चारण से मिलता जुलता रहा हो अथवा किसी भी ओष्ठ्य स्पर्श-वर्ण से उसका कोई सादृश्य रहा हो तो उसके बाद अल्पप्राण य का सुना जाना अधिक बोधगम्य हो सकता है। संभवतः य को च में कोई विशेष उच्चारण लाने के

१ इसी प्रकार पृष्ठ ० के •चटर्जी, 'Origin and development of Bengali Language', पृ० १४८ ग्रियसन के प्रतिज्ञ 'The Pro

लिए प्रयुक्त किया जाता था, जो स्वयं च से पादिते या पीछे कोई स्पष्ट उच्चारण नहीं था। (इसी प्रकार इङ्गलिश wh में h w के बाद अथवा उस से पूर्व, जैसा कि पुरानी अंगरेज़ी में hw लिखा जाता था, किसी पृथक् ध्वनि का सूचक नहीं किन्तु घोष w का अघोष पर्याय है)। वरदानि के नियम ११—५ (कौबेल, पृ० १७६) का पाठ सदिग्ध है, किन्तु प्रत्यक्षत यह नियम उच्चारण के ढंग से सम्बन्ध रखता है, उसके साथ किसी पृथक् ध्वनि के संयोजन से नहीं।

पस्वलती (प्र+स्पल्)। वैयाकरणों के अनुसार स्पृ रहता आक्षिप। मूल पाठ पस्वलती। मलिशशशि=शौरसेनी मरिस्ससि। हिन्दी और प० मूल में चिट्ट है, जो शौरसेनी है। दज्मदि 'जलता है', (? दज्मदि)। हड्के, गघ रूप हड्के है (# हडक) पिशल् ५ १६४। तपशयी=तपस्वी। क्षाशि=राशि। मश=मास।

श्लोक २१ मग भक्षणम् अणम घम्मह थददअन्ती
निशि अ शअणके मे लिहअ अस्कियन्ती।
पशलशि मग भीदा पस्वलती स्पलन्ती
मम घशम् अणुयादा लायणशेध कुन्ती ॥

घम्मह इसी प्रकार माहाराष्ट्री और मागधी श्लोकों में। शौरसेनी मम्मध, (मूल पाठ मम्मह)। लिहअ 'निद्रा' अस्कियन्ती=आक्षिपती। ए के स्थान में स्क् हो जाता है। (मूलपाठ आक्षिपयन्ति, आ असम्भव है)। पशलशि=असरसि। स्पृ रहता ही है। (मूल पाठ में शौरसेनी रूप अणुजादा है)। लायणश 'राघणका'। मागधी और उसकी बोलियों को पढ़ने में र का ल् में परिवर्तित हो जाना विद्यार्थियों को शायद सबसे अधिक पर्याकुल करनेवाली विशेषता मालूम होगी।

श्लोक २३ पशा शाणकमूशि काम कशिका मध्याशिका लाशिका
 शिण्णाशा कुल-शाशिका अचशिका कामश्श मञ्जूशिका ।
 पशा वेश-गद्ग शुवेश शिलआ वेशगला वेशिआ
 पशे शे दश शाभके मइ कले अम्यावि म शेषदि ॥

णाणक 'सिका' । मूशि=मोषि-चुरानेवाली' । कशिका 'कोड़ा' ।
 मध्व+अशिका 'मछली खानेवाली' । (मूल पाठ मच्छा) । लाशिका
 'नाचने वाली' । शिण्णाशा 'चपटी नाक वाली' (निर्+नास), अर्थात्
 छुद्रजाति की (कामस्स=शौरसेनी ।) पेशे प्रथमा बहुवचन पुल्लिङ्ग
 'ये' । शे=शौरसेनी से 'उसका' (स्त्री०) । मइ 'मुझ से' । कल
 मागधी में कड़ और (शौरसेनी की भोंति) कड़ भी प्रयुक्त होते हैं ।
 (मूलपाठ, उत्तर भारतीय हस्तलिखित पुस्तकों जैसा फले) ।
 (मूलपाठ में अज-शौरसेनी है) । शेषदि (न+श्छति) मूलपाठ
 में शेषदि है ।

अनुवाद

१८-खड़ी रह वसन्तसेना, खड़ी रह,

तू गिरती-पड़ती क्यों जा रही है, क्यों दौड़ी और भागी जा रही
 है ? ये वाला प्रसन्न हो जा । तू न मरेगी, ज़रा खड़ी रह । मेरा
 दयनीय हृदय अगारों के डेर में पड़े हुए मांस के टुकड़े की भोंति
 सचमुच काम से जलाया जा रहा है ।

२१—मेरी कामाग्नि को बढ़ाती हुई और रात को मुझे
 निष्ठुरता से शय्या पर पटकती हुई तू गिरती पड़ती भीतचकित
 हुई चली जा रही है । कुन्ती जिस प्रकार रावण की वशवर्तिनी हुई
 थी वैसे ही तू मेरी वशवर्तिनी हुई चाहती है ।

२३—यह धन को हरने वाली, काम की कशा (चापुक),
 मछली खाने वाली, नृत्य करने वाली, नकटी, कुलशाशिनी, अयश-
 वर्तिनी, काम की पिटारी, यह वेश-वधू, सुवेश-निलया, वेशाङ्गना,

लिए प्रयुक्त किया जाता था, जो म्यय च से पड़िते या पोंछे कोई स्पष्ट उच्चारण नहीं था। (इसी प्रकार इङ्गलिश *ch* में *h* *w* के बाद अथवा उस से पूर्व, जैसा कि पुरानी अंगरेज़ी में *hw* लिखा जाता था, किसी पृथक् ध्वनि का सूचक नहीं किन्तु घोष *w* का अघोष पर्याय है)। धरुचि के नियम ११—५ (कौषेल, पृ० १७६) का पाठ सम्दिग्ध है, किन्तु प्रत्यक्षतः यह नियम उच्चारण के दृग से सम्बन्ध रखता है, उसके साथ किसी पृथक् ध्वनि के संयोजन से नहीं।

पस्वलती (प्र+स्वल)। वैयाकरणों के अनुसार स्पर्श रक्षना आदिप। मूल पाठ पस्वलती। मल्लिशयि=शौरसेनी मरिस्सति। हिन्दी और प० मूल में चिट्ट है, जो शौरसेनी है। दृक्कदि 'जलता है', (? दृक्कदि)। दृक्के, गघ रूप दृक्के है (# दृक्क) पिशन् ६ १६४। तवशी=तपस्वी। क्षाशि=राशि। मश=मास।

श्लोक २१ मम मशणम् अणम घम्मह यद्धमती

निशि अशणके मे णिदम अस्किवती।

पशलशि मम मीदा पस्वलती स्वलती

मम यशम् अणुपादा लायणशेव पुन्ती ॥

घम्मह इसी प्रकार माहाराष्ट्री और मागधी श्लोकों में। शौरसेनी मम्मध, (मूल पाठ मम्मह)। णिदमा 'निद्रा' अस्किवन्ती=आस्तिपती। ए के स्थान में स्क् हो जाता है। (मूलपाठ आस्किवन्ति, आ अस्मभ्य है)। पशलशि=प्रसरति। स्पर्श रक्षता ही है। (मूल पाठ में शौरसेनी रूप अणुजादा है)। लायणश 'रायणका'। मागधी और उसकी बोलियों को पढ़ने में रू का लू में परिवर्तित हो जाना विद्यार्थियों को शायद सबसे अधिक पर्याकुल करनेवाली विशेषता मालूम होगी।

श्लोक २३ पशा शाखश्मूशि काम कशिका मध्याशिका लाशिका
 गिरणाशा कुल-शाशिका अवशिका कामश्च मञ्जूशिका ।
 पशा वेशघट्ट शुवेश गिलद्या वेशगणा वेशिआ
 पशे शे दश गामके मइ फले थय्यावि म शेषदि ॥

शाखक 'सिफा'। मूशि=मोपि-चुरानेवाली'। कशिका 'कोड़ा'।
 मध्य+अशिका 'मछली खानेवाली'। (मूल पाठ मच्छा)। लाशिका
 'नाचने वाली'। गिरणाशा 'चपटी नाक वाली' (निर्+नास), अर्थात्
 छुद्रजाति की (कामस्स=शौरसेनी)। पेशे प्रथमा बहुवचन पुंलिङ्ग
 'ये'। शे=शौरसेनी से उसका' (स्त्री०)। मइ 'मुझ से'। फल
 मागधी में कइ और (शौरसेनी की भाँति) कइ भी प्रयुक्त होते हैं।
 (मूलपाठ, उत्तर भारतीय हस्तलिखित पुस्तकों जैसा फले)।
 (मूलपाठ में अज्ज शौरसेनी है)। शेषदि (न+इच्छति) मूलपाठ
 में शेषदि है।

अनुवाद

१८-खड़ी रह वसन्तसेना, खड़ी रह,

तू गिरती पड़ती क्यों जा रही है, क्यों बीबी और भागी जा रही
 है? ये वाला प्रसन्न हो जा। तू न मरेगी, ज़रा खड़ी रह। मेरा
 दयनीय हृदय अगारों के डेर में पड़े हुए मास के टुकड़े की भाँति
 सचमुच काम से जलाया जा रहा है।

२१-मेरी कामाग्नि को बढ़ाती हुई और रात को मुझे
 निष्पुरुता से शय्या पर पटकती हुई तू गिरती पड़ती भीतचकित
 हुई चली जा रही है। कुन्ती जिस प्रकार रावण की वशवर्तिनी हुई
 थी वैसे ही तू मेरी वशवर्तिनी हुई चाहती है।

२३-यह घन को हरने वाली, काम की कशा (चायुक),
 मछली खाने वाली, नृत्य करने वाली, नकटी, कुलनाशिनी, अचश-
 वर्तिनी, काम की पिटारी, यह वेश घट्ट, सुवेश-निलया, वेशाहना,

घश्या (हे); ये दस नाम मैंने इसको दिये हैं, अब भी यह मुझे नहीं चाहती ।

उद्धरण नं० २६

मागधी]

ललित विग्रह राज-नाटक

(इण्डिया ऐंटिकेरी, वोल्यूम XX, १६६१ में फीलहौर्न से संपादित)
(अङ्क ४) दो तुल्यक कैदी अपने देशवासी गुप्तचर को मिलते हैं ।

चम्दिनौ—पशे मे शायम्भलीशल शिविल शिवेशे । पदशिश अल
शिक्यमाण पयन्दे कध (ला) उल याणिदव्य, (पुरतोऽवलोक्य)
ययश पशे के वि केले व्व दीशदि ? ता इमादो पदश शिविलश
शल्लख लाउल च याणिशम्ह ।

चर —अश्चलिय अश्चलिय । अहो विग्गहलाअ णलेशल शि
लीण अधयन्ददा । (पुरोऽवलोक्य) अम्ह-देशीय व्व केवि पुलिशा
पेशिकय्यदि, याणे चम्दीहि पदेहि हुविदव्व ।

चम्दिनौ—भह, अम्हाण तुलुशकाण देशीयेव्व तुम पेशिकय्यशि ।
ता कधेहि चाहमाण शिविल शल्लख लाउल च ।

चर —शुणाध ले चम्दिनौ शुणाध । हगे तुलुशकलापण शाअम्भ
लीशलश शिविल पेशिकदु पेशिदे । त च दूशचल, यदो तरधस्तेहि
इदले पुअ-दे वि णि(निश्रु)न्दे वि अ पलकीये सि याणिय्यदि,

१ शाकम्भरीश्वर—शिविल=शिविर ।

२ अधय्यमाणपयन्ते । याणिद-व=शौरसेनी जाणिदव्व ।

३ चले 'जासूस' (चर) ।

४ शिवालोत्त में शल्लख (स्वरूपम्) है ।

५ 'असीमता' (अपयन्तता) । शिलीण 'यशों का' ।

६ इदले=शिवरो, पुअ-दे=पुच्छ-तो । याणिय्यदि याणीअदि होना चाहिए ।

णिलिरक-दे=शौरसेनी विरिक्खन्तो (निरु+ईष्) ।

तथापि मय किंपि किंपि पञ्चदलीकद^१ ।

चन्दिनौ—अमलिअं अमलिअं । कथं भद्रं, तत्तथ उवस्तिद
चदुलिदे अणुअ पि तप लरिकद^२ ।

चर —शुणाघ ले चन्दिणो यथा मय त शिविल णिलुधिद । हं
खु शिलि शोमेशलदेव पेशिकदु यञ्जन्दश्श शश्तश्श मिलिदे, मिलि
अ एत्थ पविशिऊण भिश्क पशितदु लगे^३ । तदो य य थाणिद त
तुम्हाण यदस्त^४ कधीयदु । मअयालि णिउमल कलाल कडस्त
लाण कलिदाण दाव शदश्श^५ । तुलभाण उण लश्क । एलाणा उ
युज्ज-श्कमाण दह लश्काइ ति^६ । किं बहुणा यम्पिदेण^७ ? तश्श क
अश्श पाश स्तिदे शाअले वि शुश्के भोदि^८ । (बाहुम् उत्तिप्प) एद
त लाउल^९ (इति दर्शयति) ।

चन्दिनौ—शाहु ले चला शाहु !

चरः—अले ले चन्दिणो चिल खु मे णिअ स्ताणादो निश्शलिद
श्श । ता हगे वञ्जामि^{१०} ।

१ प्रत्यचीकृतम् किं-उ गुलना करो नीचे भिरक सरिकद ।

२ चदुलिदे (?) = 'चतुरिते चतुर से, 'अपनी चतुराई में' । सरिकद=शौर
क्षेत्री सखिद ।

३ सोमेश्वरदेव शायद किसी राजकुमार का नाम है । पविशिऊण माहाराष्ट्री,
जैन-माहाराष्ट्री या अभमागधी प्रत्यय । परितदु=प्रार्थयितुम् ।

४ यथार्थम् । नियमानुसार यथस्त होना चाहिये ।

५ मद करि निर्भर । थिदकर माहाराष्ट्री है जो मागधी में थिद्वहल
होना चाहिये ।

६ युज्ज=युद्ध इस बोली के प्रतिकूल है । दश के लिए दह पिराल के
अनुसार अशुद्ध है ।

७ कडय 'दल' (कटक) । शाअले 'सागर' ।

८ थिश्शलिद थिश्शलिदि (लि +स) का ज्ञान्त रूप ।

९ 'भटकना' । १० वञ्जामि, कयादिगण ।

चन्द्रिनौ—गच्छ ले चला गच्छ ।

[इति चरो निष्कात]

चन्द्रिनौ—[पुरतो गत्यावलोक्य] त एषि लाउल-दुयाल, ता
इष स्तिदा पय शिअ-लाअ प्पहाअ पयायेम्ह । (पुनरवलोक्य सान-
न्दम्) पये शे शाअम्मलीशले अस्ताण स्तिदे पुलदेो दीसदि ।

इस शिलालेख की मागधी इस कारण रोचक है कि इस में
अन्य किसी भी हस्तलिखित पुस्तक की अपेक्षा हेमचन्द्र के नियमों
का अनुसरण अधिक धनियता से किया गया है । चूँकि इस का
रचयिता सोमदेव हेमचन्द्र का समकालीन था, अतएव कहा गया
है कि यह इस ध्याकरण अथवा कम से कम उसके व्याकरण से
परिचित रहा होगा । स्वयं शिलालेख में कुछ अशुद्धियाँ ठीक की
गई हैं, फिर भी कुछ ऐसे रूप रह गये हैं जो हेमचन्द्र के अनुसार
शुद्ध नहीं हैं, उदाहरण के लिए—णिज्झल, युज्झ, यद्दस्त, पयिणि
ऊण । यह मानने का कोई कारण नहीं है कि रङ्गमञ्च पर मारहरी
शताब्दी तक मागधी को उसके शुद्ध रूप में सुरक्षित रखा गया था
और सम्भवतः ध्याकरणों के मागधी विषयक परम्परागत नियमों
को निभाने का यह असाधारण प्रयास तुर्की क्रादियों और गुप्तचरों
की भाषा पर बहुत कुछ विदेशीयता का रंग बढ़ाने के लिए किया
गया है । यह एक अनोखी घटना है कि मागधी का सबसे अधिक
अर्वाचीन लिपिबद्ध अशु रूप में अन्य उपलब्ध नमूनों की अपेक्षा
मन से अधिक प्राचीन है ।

उद्धरण नं० २७ ।

‘आवन्ती’

और दाक्षिणात्या

धीरक और चन्दनक (मृच्छकटिक अङ्क ६)

धीरक — अरे रे अरे जय जयमाण-चन्दणअ मङ्गल-फुल्लभद

प्पमुहा—

किं अच्छध घीसद्धा जो सो गोवाल दारओ यद्धो,

भेत्तुण सम यच्चइ णरवइ द्विअअ अ बन्धण वावि ॥

अले, पुरत्थिमे पदोली दुआरे चिट्ठ तुम । तुम पि पच्छिमे,
तुम पि दक्खिणे, तुम पि उत्तरे । जो वि एसो पाआर खण्डो,
एव अहिरुद्धिअ चन्दणएण सम गनुअ अवलोएमि । एहि चन्दणअ,
एहि । इवो दाय ।^१

चन्दनक — अरे रे धीरअ विमल्ल भीमअ दण्डकालअ दण्ड
सुर-प्पमुहा,

आअच्छध घीसद्धा तुरिअ जचेह लइ करेआह

लच्छी जेण ए रणो पहवइ गोसन्तर गन्तु ॥^२

अधि अ,

उज्जाणेषु सहासु अ मग्गे णअरीअ आयणे घोसे ।

तं त जोहइ तुरिअ सका धा आअए अत्थ ॥^३

१ शौरसेनी अक्षय । माहाराष्ट्री भेत्तुण, वचइ । किन्तु ये विप्लवे शब्द
श्लोक में मिलते हैं, नीचे गद्य शौरसेनी प्रकार का है । अले मागधी का अय
प्रतीत होता है जो यहाँ असम्प्रत्य है ।

२ विसल्ल=वि शल्य ।

३ तुरिअ शौरसेनी तुरिद । जचेह=शौरसेनी जचेव (यत्पवम्) । करेआह
आरी०, पहवइ, सब रूप में मागधी हैं । णअरीअ सप्तमी एकव० ईय जिसके
अन्त में हो ऐसा कृमिज कीलिङ्ग एकवचन माहाराष्ट्री श्लोकों में साधारण है ।

रे रे धीरञ्ज किं किं दारिद्र्येति मणादि दाय धीरञ्ज
 भेत्तुञ्च अ पन्थञ्च को सो गोपाल-दारञ्ज हरर ॥
 कस्तद्वृत्तो दिणञ्चरो, कस्त चउत्थो अ पदप चन्दो,
 छट्टो अ भगव गहो, भूमिसुभो पञ्चमो कस्त ?
 भण कस्त जम्भ छट्टो जीवो जयमो तदेव सूरसुभो
 जीभन्ते चन्दण को सो गोपाल-दारञ्ज हरर !

धीरञ्ज — मय चन्दणञ्ज ।

अयहरर कोयि तुरिञ्ज, चन्दणञ्ज, सयामि तुज्ज द्विभपण
 जह अद्भुद्द दिणञ्चरे गोपालञ्ज-दारञ्जो सुदिदो ॥

[चेटा—याध गोणा, याध ।]

चन्दाक — अरे रे, पेदर पेदर ।

ओहारिञ्जो पयहणो पयह मज्जेण राञ्ज मगगस्त

जोहद (जोयवत, अ-वेयवत) ? (अ०) जोएदि 'देवता है' का भविष्यत् ।

(घ) या √युष् 'शुद्धा' । जाअए=जैन शौरसेनी जायदे । जय आभ=अन
 का सम्बन्ध होता है । अन्य बोलियों में साधारणतया 'जदि' प्रयुक्त होता है ।

१ दारिद्र्येति "तु देवता है" ।

२ चउत्थो 'चौथा', शौरसेनी चउत्थो । छट्टो 'छटा' (तुलना करो हिन्दी
 पय) । गहो 'गहो' 'मह' के लिप् । भगव 'भृगु की पुत्री का' । भूमिसुभो
 'भूमिसुत'=भगवत् ।

३ तदेव=तथैव । सूरसुभो 'सूर्य का पुत्र'=शनिभर ।

४ सयामि 'मैं लौगद खाता हूँ' । अद्भुद्द 'अर्द्ध उदित' शौरसेनी उदिद,
 माहाराष्ट्री उद्द (? उदिभ पड़ा गया) । सुदिदो 'हटाया गया' (अपिदित) ?
 सुद् धातु से । यह शब्द शौरसेनी सुदिद हटा हुआ, सोझा गया=पुण्य-स्वाधीय
 पुदित से भिन्न है । (पिशल् ५ २६८)

५ चेद भागधी बोलता है । गोथो 'बैज' अर्धभागधी, भागधी में प्रयुक्त
 पुञ्जित रूप है । व्युत्पत्ति के लिप् पिशल् ने 'गवय या' गूर्य को प्रयुक्त किया
 है । पहिला अधिक सम्भव प्रतीत होता है ।

एदं दाघ विशारद कस्स कहिं पवसिओ पवहणो^१ त्ति ॥'

धीरक —अरे पवहण घाहआ ! मा दाघ एद पवहण वाहेहि ।
कस्स केरक पद पवहण ? को वा इध आरुढो ? कहिं वा घज्जइ ?

[चेट —एशे^२ फलु पवहणे अय्य-चालुदत्ताह केल्ले । इध
अय्यआ वसतसेणा आरुढा । पुस्प कल्लण्डअ यिएणुय्याण कीलिदु
चालुदत्तश्शणीअदि^३ ।]

धीरक (चन्दनकमुपसृत्य)—एसो पवहण घाहओ मणादि
'अज्जचारुदत्तस्स पवहण, वसन्तसेणा आरुढा पुष्पकरण्डअ जिएणु
जाणणीअदि ति' ।"

च०—ता गच्छुदु ।

धी०—अणवलोइवो जेव ?

चं०—अध इ ?

धी०—कस्स पच्चण ?

च०—अज्ज-चारुदत्तस्स ।

धी०—को अज्ज चारुदत्तो ? का वसन्तसेणा, जेण अणवलोइव
घज्जइ ?

१ ओहारिअ 'ठकी हुई (प्र+वृ) । पवहण 'गाफी' (प्र+वह्) । वच
'जाती है' (तुलना करो जैन माहाराष्ट्री पृ० १३२, नो० ४) । विशारद
'निर्यय करो' (वि+चर्) । पवसिओ 'प्रस्थित' (प्र+वस्=प्रोषित) ।

२ हस्तलिखित पुस्तकों और मुद्रित सस्कर्यों में मागधी य य्य के स्थान में ज
और ज आये हैं । मागधी के लके=आ० केरको । पुस्प (हेमचन्द के अनुसार),
हस्तलिखित पुस्तकों में मिथ मिथ पाठ हैं । साधारण पाठ पुष्प । यिएणुय्याण
'जीय उद्यान' । यहाँ हमें पास पास हैं दो मागधी सम्बन्ध कारक मिलते हैं ।

३ इस अनुमान में कोई युक्ति नहीं है कि धीरक चेट की बोली का विदग्ध
नारमक अनुकरण करता है, विशेष कर के जब वह उसके ठीक शब्दों को नहीं
दुहराता; स्वभावतः वह अपनी ही साधारण भाषा में चन्दनक की वृत्तान्त कह
सुनता है ।

घ०—अरे, अज्ज-आददत्त ण जाणामि, ए वा वसतसेयिअ ।
जइ अज्ज-आददत्त वसतसेयिअ वा ण जाणासि, ता गअणे
जोएदा सदिदं घं द ए जाणासि' ।

को न गुणारविन्द शील मिश्रज जणो ण जाणादि ?

आपण दुष्पत्र मोर्ष्य चउ साअर सारथ रथण ।

दो जय पूअरीआ इह एअरीए तिलअ भूदा अ,

अज्जा वसतसेणा, धम्म खिही धारुदुत्तो अ' ॥

टिप्पणिया—पूरुषोत्तर ने दोनों पात्रों के मुख से आचन्ती कह
लवाई है, जिस के पिपय में उसने फेंकल यह अरप धान प्रदान
किया है कि उसमें दन्त्य स और र होते हैं और रोकोकियों की
मचुरता होती है । मार्कण्डेय ने उने शौरसेनी और मादाराष्ट्री का
मिश्रण बतलाया है । यह मालूम होनी है उस बोली की विशेषता
जैसी कि यह हस्तलिखित पुस्तकों में उपलब्ध होती है । तथापि
चन्दनक अपने आप को दाक्षिणात्य बतलाता है—'वअ दक्खिण
एवा अअत्त मासिणो'—इम वत्तिणी लोग अस्पष्ट बोलते हैं । अत
एव पिपल ने यह सम्भव नहीं समझा कि चन्दाक आचन्ती बोलता
हो, किन्तु अधिक सम्भावना इस बात की है कि यह दाक्षि
णात्या बोलता था (भरत १७, ४८ । साहित्यदर्पण, पृ० १७३ ५) ।
मालूम होगा कि यह आचन्ती से बहुत भिन्न नहीं थी, और दोनों
ही प्रायः शौरसेनी से सम्बन्ध थीं । फिर भी 'वअ दक्खिणएवा'
शौरसेनी में 'अग्गे दक्खिणएवा' होगा ।

अनुवाद

वीरक—अरे हो रे ! जय, जयमान, चन्दनक, मगल, पुष्पभद्र
आदि, विभ्रम क्या बैठे हो ? यह ओ अहीर का लड़का क्या

१ जोएदा 'ज्योत्स्ना चांदनी' ।

२ चउ साअर सार 'चारों समुद्रों का सार' । खिही 'निधि' ।

हुआ था वह (अपने) बन्धन और राजा के हृदय (दोनों) को एक साथ ही तोड़ कर चला जा रहा है।

अरे तू पूर्व के प्रतोली द्वार पर पड़ा हो, तू भी पश्चिम (के द्वार) पर, तू दक्षिण के और तू उत्तर के। यह जो आकार-अण्ड है इस पर घड़ कर मैं चन्दनक के साथ चल कर देखता हूँ। आओ चन्दनक, आओ। ज़रा इधर आओ।

चन्दनक—अरे हो रे ! धीरक, विशदय, भीमाङ्गद, वण्डकाल, वण्डशूर, आदि,

विश्वस्त होकर आओ, शीघ्र यज्ञ करो, कुर्ती करो, जिससे राज्य लक्ष्मी किसी अन्य घश में न जा सके।

और

उद्यानों में, समाओं के अन्दर, मार्ग में, नगर में, बाज़ार में, घोसियों की भोंपड़ियों में, शीघ्र उन सब की तलाशी लो जिन पर शङ्का हो।

रे धीरक, तू क्या देखता है, विधग्धता से बन्धन तोड़ कर कौन अहीर के लडके को लिए जा रहा है ?

आठवा सूर्य किसका है, किस के चौथे चन्द्रमा है, छुठा शुक्र और पाचवा मङ्गल किसके पडा है ?

फह, जन्म से पाचवा बृहस्पति किसका है और नवा शनैश्वर किसका है ? चन्द्राक के जीते जी कौन है जो अहीर के लडके को भगा कर लिये जाता है ?

धीरक—भट चन्दनक,

चन्दनक तेरे हृदय की सौगन्ध, कोई उसको जल्दी जरदी भगा कर लिये जाता है, क्योंकि सूर्य के आधा उदय होने पर अहीर का लडका भाग चला।

[चिट—चलो रे बैलो, चलो।]

चन्दनक—अरे, देखो देखो।

च०—अरे, अज्ज-चारुदत्त ण जाणासि, ए वा वसतसेणिअ !
जइ अज्ज-चारुदत्त वसतसेणिअ वा ण जाणासि, ता गअणे
जोएहा सद्धिद च'द ए जाणासि' ।

को त गुणारविन्द शील मित्रक जणो ण जाणादि ?

आयएण दुफए मोफेअ चउ साअर सारअ रअए ।

दो जेव पृथगीआ इह एअरीए तिलअ भूदा अ,

अज्जा वसतसेणा, धम्म णिही चारुदत्तो अ' ॥

टिप्पणिया—पृथगीधर ने दोनों पात्रों के मुख से आवन्ती कह
लवाई है, जिस के विषय में उसने केवल यह अल्प ज्ञान प्रदान
किया है कि उसमें दन्त्यस और र होते हैं और लोकोक्तियों की
प्रचुरता होती है । मार्कण्डेय ने उसे शौरसेनी और माहाराष्ट्री का
मिश्रण बतलाया है । यह मालूम होती है उस बोली की विशेषता
जैसी कि यह हस्तलिखित पुस्तकों में उपलब्ध होती है । तथापि
चन्दनक अपने आप को दाक्षिणात्य बतलाता है—‘वअ दक्षिणए
एवा अव्वत्त भासिणो’—हम दक्षिणी लोग अस्पष्ट बोलते हैं । अत
एव पिशल ने यह सम्भव नहीं समझा कि चन्दनक आवन्ती बोलता
हो, किन्तु अधिक सम्भावना इस बात की है कि यह दाक्षि
णात्या बोलता था (भरत १७, ४८ । साहित्यदर्पण, पृ० १७३ ५) ।
मालूम होगा कि यह आवन्ती से बहुत भिन्न नहीं थी, और दोनों
ही प्रायः शौरसेनी से सम्बद्ध थीं । फिर भी ‘वअ दक्षिणएवा’
शौरसेनी में ‘अम्हे दन्निअणवा’ होगा ।

अनुवाद

वीरक—अरे हो रे ! जय, जयमान, चन्दनक, मगल, पुष्पमद्र
आदि, मिश्रण क्या बैठे हो ? वह जो अहीर का लड़का बघा

१ जोएहा ‘ज्योत्स्ना चांदनी’ ।

२ चउ साअर सार ‘चारों समुद्रों का सार । णिही ‘निधि’ ।

हुआ था वह (अपने) बन्धन और राजा के हृदय (दोनों) को एक साथ ही तोड़ कर चला जा रहा है।

अरे तू पूर्व के प्रतोली द्वार पर खड़ा हो, तू भी पश्चिम (के द्वार) पर, तू दक्षिण के और तू उत्तर के। यह जो प्राकार-खण्ड है इस पर चढ़ कर मैं चन्दनक के साथ चल कर देपता हूँ। आओ चन्दनक, आओ। ज़रा इधर आओ।

चन्दनक—अरे हो रे ! धीरक, विश्वय, भीमाङ्गद, दण्डकाल, दण्डशूर, आदि,

विश्वस्त होकर आओ, शीघ्र यज्ञ करो, कुर्तों करो, जिससे राज्य लक्ष्मी किसी अन्य पशु में न जा सके।

और

उद्यानों में, सभाओं के अन्दर, मार्ग में, नगर में, याज्ञार में, घोसियों की भोंपड़ियों में, शीघ्र उन सब की तलाशी लो जिन पर शङ्का हो।

रे धीरक, तू क्या देपता है, विभ्रमता से बन्धन तोड़ कर कौन अहीर के लड़के को लिए जा रहा है ?

आठवा सूर्य किसका है, किस के चाँये चन्द्रमा है, छुटा शुक्र और पाचवा मङ्गल किसके पदा है ?

फह, जन्म से पाचवा बृहस्पति किसका है और नवा शनैश्वर किसका है ? चन्दनक के जीते जी कौन है जो अहीर के लड़के को भगा कर लिये जाता है ?

धीरक—मट चन्दनक,

चन्दनक तेरे हृदय की सौगन्ध, कोई उसको जल्दी जल्दी भगा कर लिये जाता है, क्योंकि सूर्य के आधा उदय होने पर अहीर का लड़का भाग चला।

[चिट—चलो रे बैलो, चलो।]

चन्दनक—अरे, देखो देखो।

राजमार्ग के बीच टर्की हुई बंदेली जा रही है। जरा धी धियार कर लो कि यह बंदेली किसकी है और किधर प्रस्थान कर रही है।

धीरक—अरे गाड़ीवान ! जरा इस गाड़ी को रोक ले (न बला)। यह गाड़ी किसकी है ? इस पर कौन सवार है ? और कहाँ जा रहा है ?

[छिट—यह गाड़ी आर्य चाण्डदत्त की है। इस पर आर्या वसन्त सेना सवार है। पुष्पकरण्डक के जीर्णोद्धार में विद्यार करने को चाण्डदत्त जी के पास ले जाई जाती हैं।]

धीरक—(चन्द्रनक के पास जा कर) यह गाड़ीवाला कहता है, आर्य चाण्डदत्त की गाड़ी है, वसन्तसेना सवार है और पुष्पकरण्डक जीर्णोद्धार को ले जाई जाती है।

च०—तो जाये।

धी०—बिना देखे हो ?

च०—और क्या ?

धी०—विसर्गके प्रत्यय से ?

च०—आर्य चाण्डदत्त के।

धी०—कौन आर्य चाण्डदत्त ? अथवा कौन वसन्तसेना, जो बिना देखे चली जाय ?

च०—अरे, आर्य चाण्डदत्त को नहीं जानता, और न वसन्त सेना को। यदि आर्य चाण्डदत्त और वसन्तसेना को नहीं जानता तो गगन में ज्योत्स्ना-युक्त चन्द्र को नहीं जानता।

कौन मनुष्य उस गुणारविन्द शील मृगाङ्ग को नहीं जानता जो विषहस्तों के दुःखों को दूर करनेवाला और चारों समुद्रों के सारभूत रहा है। इस नगर में दो ही पूजनीय और श्रेष्ठ (तिलक भूत) हैं, आर्या वसन्तसेना और धर्मनिधि चाण्डदत्त।

उद्धरण नं० २८

जैन शौरसेनी

प्रवचनसार

I (६६) देव जदि-गुरु पूजासु वेव दाणम्मि वा सुसीलेसु ।

उयवासादिसु रत्तो सुहोयओगप्पगो अप्पा ॥

(७०) जुत्तो सुहेण आदा तिरियो वा माणुसो य देवो वा ।

भूदो तावदकाल लहदि सुद इन्दिय विविह ॥

(७४) जदि सन्ति हि पुण्णाणि य परिणाम-समुम्भवाणि विविहाणि
जणयन्ति विसय तएह जीवाण देवदन्ताण ॥

(७५) ते पुण उदिएणतएहा दुहिदा तएहाहिं विसयसोफणाणि ।

इच्छन्ति अणुहयन्ति य आमरण बुप्फलसन्तत्ता ॥

III (१३) चरदि णियजो णिच्च समणो णाणम्मि दसणमुहम्मि ।

पयदो मूलगुणेसु य अजो सो पडिपुण्ण सामओ ॥

(१८) हवदि व ए हवदि घन्धो मदे हि (म्) जीयेघ कायचेट्ठमि ।

घन्धो धुव उयधीदो इदि सयणा छड्डिया सन्न्यम् ॥

(१९) ए हि गिरयेफणो चाऊ ए हवदि मिक्खुस्स आसय विसुद्धी ।

अधिसुदस्स य चित्ते कइ ए कम्म फल्लयो विहिऊ ॥

मूर्धन्य ॥ शब्दों के आरम्भ में प्रयुक्त किया गया है जब कि
अर्धमागधी जैनमाहाराष्ट्री हस्तलिखित पुस्तकों में दन्त्य न को येहतर
समझा गया है । अन्य जैन हस्तलिखित पुस्तकों की भाँति यहाँ भी
य अक्षर प्रयुक्त किया गया है ।

इस प्राकृत में ऐसे शब्द और रूप मिलते हैं जो साधारण शौर-
सेनी में बिलकुल नहीं मिलते—किंतु माहाराष्ट्री या अर्धमागधी में
पाये जाते हैं । शायद शौरसेनी के कुछ पद, जिनको हेमचन्द्र ने
स्वीकार किया है, किन्तु जो नाटकों में कहीं नहीं मिलते, दिगम्बर
पुस्तकों से लिये गये हैं । (पिशब् ५ २१)

(६६) चेत् । सम्पादक येव को ठीक समझते हैं । संस्कृत पाठ
 चैव । मालूम होता है प्रस्तुत हस्तलिखित प्रति में य और व के
 प्रयोग में किसी स्थिर नियम का पालन नहीं किया गया है ।
 दाणम्मि सप्तमी, जैसा कि माहाराष्ट्री में भी होता है । सुदोयओग
 प्यरो=शुभोपयोऽयात्मकः ।

(७०) आदा=आत्मा, अर्थात् * आत्मा, तुलना करो अर्धमागधी
 आया। जैनमाहाराष्ट्री अत्ता । तिरियो 'पशु' (तिर्यक्) ।

(७४) देवदातानाम् ।

(७५) तद्वा=तयद्वा । यह केवल वर्णविचारविषयक विशेषता है,
 इसी प्रकार फल के स्थान में एक लिखना भी एक विशेषता है ।

III (१३) णाणम्मि 'जान में' ।

(१८) उवधीवो उवधि (उपधि) का पञ्चम्यन्त रूप । इदि=इति ।
 सघण=धमणा । छड्डिय को छड्डिइ देना चाहिये । (पिश्ल § २६१)
 =छदिंत, तुलना करो औरसेनी विच्छड्डिइद, माहाराष्ट्री विच्छड्डिभ,
 अर्धमागधी जैनमाहाराष्ट्री विच्छड्डिय ।

(१६) चाऊ=त्याग, जैन माहाराष्ट्री चाओ । अन्तिम ऊ (तुलना
 करो विहिऊ) अपवादस्वरूप और सम्भवतः अशुद्ध है और इस
 अशुद्धि का कारण जैन हस्तलिखित पुस्तकों में उ और ओ का
 सादृश्य है । यन्वई-संस्करण में चायो और विहिओ पद हैं ।

उद्धरण नं० २६

स्वप्नवासवदत्तम्

(अङ्क ४ पृष्ठ २६)

प्रवेशक

(ततः प्रविशति विदूषक)

विदूषक —(सहर्षम्) विद्विआ तत्तहोदो वच्च राअस्स अभि

प्येद-धियाहमगल रमणिज्जो कालो दिट्ठो । को ग्राम पद जाणादि
तादिसे घय अणत्थसलिलावत्ते पफिस्सत्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति' ।
इदार्णि पासादेसु वसीअदि, अन्देउर दिग्घिआसु ह्वाइअदि,
पलम मउर सुउमाराणि मोदअ खज्जआणि यज्जीअन्ति सि
अण्णर सवासो उत्तुरकु वसो मय अणुभवीअदि । एको तु मह

१ तत्तद्दो को तत्त्व होना चाहिये । § ४५ । मगल । दन्त्य ज के स्थान
में सर्वत्र मूर्धन्य ज लिखा गया है । यह बात दक्षिण भारतीय हस्तलिखित
पुस्तकों में साधारणतया पाई जाती है । वय शौरसेनी में अग्ने, दादिण्यात्ता वध
(वरुधि और मार्कण्डेय ने शौरसेनी में भी इसे स्वीकार किया है), अध
मागधी वय, पाति वय । उमजिस्सामो 'ऊपर निकल आवेंगे' ।

२ अन्देउर । (जैसा कि पृष्ठ १४ पर है) अन्देउर शुद्ध रूप है किन्तु हस्तलिखित
पुस्तकों में प्रायः न्त के लिपि नुद दिया गया है, इसी प्रकार सउतला के लिये
"सउदला" दिया गया है । इस में सम्भवतः अपभ्रंश का प्रभाव कारण था,
जिसमें यह परिवर्तन साधारण है । ह्वाइअदि । शौरसेनी व्हाइअदि । हस्त
लिखित पुस्तक में नियम से यह के लिये ह्य और ग् के लिपि हा मिलता है ।
आपातत यह आर्पता का उपलक्षण प्रतीत होता है; क्योंकि ह यहाँ स के
लिये आया है और व्हा की अपेक्षा ह्य आ या से अधिक मिलता जुलता प्रतीत
होता है । फिर भी ऐसी पुस्तकों में जहाँ यह और ग् को शुद्ध माना गया है
ह्य और हा पाये जाते हैं । अग्ने, नहातको (=घातको) जैसे पाति रूपों से यह
प्रगट होता है कि यह परिवर्तन प्राचीन है । इस के अतिरिक्त उदाहरण के लिये
बह्व्यो और (जैसा कि भास में मिलता है) बह्व्यो के बीच की भिन्नता कानों
को कोई अधिक नहीं छटकती । इसी प्रकार ह्य, हा भी केवल घर्षविवश
परिवर्तन होंगे । पलम-परम । ख या ल के लिये यहाँ कोई प्रत्यय करण नहीं
है । मउर महुर (=मधुर) के लिये । यह गजती मालूम होती है, पृष्ठ १५ पर
महुरा है । सुउमाराणि=राह । आणि जिनके अन्त में हो ऐसे नपुंसक बहुवचन
अधेमागधी, जैन माहाराष्ट्री, जैन शौरसेनी में मिलते हैं, महाराष्ट्री या शौरसेनी

न्तो दोसो, मम आहारो सुदुष्ट ए परिणमदि, सुप्पच्छदणाप
सय्याप सिद्ध ए लमामि, जह याव सोखिद अभिदो विअ वच्चति
 सि पेप्पेमामि । मो । सुह णामय परिभूद अकरलवत्त चै ।

(तत्त प्रविशति चेटी)

चेटी कहि ए ए गदो अय्य-यसन्तओ ! (परिकम्पायलोपय)
 अहो एसो यसन्तओ । (उपगत्य) अय्य ! यसन्तअ ! को कालो
 तुम अण्णेसोमि ।

विकृषक — (दृष्ट्वा) किं निमित्त, भद्रे ! म अण्णेसासि !

चेटी—अह्मण मट्ठिणी मण्णदि—अयि ह्मादो जामादुओ सि ।

में नहीं। पात्र में संस्कृत की भांति चायि हो सकता है।

१ सय्याप (=सय्यायाम्) आहाराष्ट्री अर्धमागधी जैन आहाराष्ट्री सेज्याप
 मागधी सेज्याप। यहाँ भी, जैसा कि अय्यवत्त में है, द्वित्व अज के लिये द्वित्व व्य
 धार्यता का चोटक हो सकता है। शौरसेनी में हेमचन्द्र ने य के लिये व्य के
 उपित माना है। यह वर्षेवि-यास कभी कभी दृष्टिय भारतीय दस्तलिखित
 पुस्तकों में पाया जाता है। अधिकश पुस्तकों में केवल एक वृत्त अ + अ पाया जाता
 है, जो विश्व के कथनानुसार या तो व्य और अ के बीच विकल्प का चोटक है
 अथवा जिससे इन दोनों के बीच की कोई व्यति अस्मिन्नेत है। (पिशु ५ २८३,
 शौरसेनी में संस्कृत व्य के स्थान में अ के अतिरिक्त किसी अन्य परिवर्तन के
 लिये कोई प्रमाण नहीं है। आहाराष्ट्री में यह नियमानुद्ध है (शौरसेनी जभा)।

२ णामय-आमय 'अपच' शौरसेनी में आमअ होना चाहिये। यदि यह
 कोई अशुद्धि नहीं है तो इसे आर्य प्रयोग कहना चाहिये। कल्लवत्त 'कस्य
 धर्त', कळेवा।

३ अय्य, ऊपर सय्याप पर का नोट देखो। अहमो का साधारण वर्षे
 वि-यास अम्मो है, ऊपर ह्याह्मदि पर का नोट देखो। लेख के माज्जीमाध
 के संस्करण में अहो है। दूसरा पाठ यही अम्मो है, ४४ दस पर अम्मो है।

४ जामादुओ ५ ६०।

विदूषक — किं णिमित्तं भोदी पुच्छदि ?

चेटी — किं अण ? सुमण वणअ आणेमि त्ति ।

विदूषक — द्वादो तत्तमव । सव्वम् आणेतु भोदि वज्जिअ भोअण ।

चेटी — किं णिमित्तं घारेसि भोअण ?

विदूषक — अघणस्स मम कोइलाण अफिअपरिवटो विअ कुक्खिअ-परिवटो सवुत्तो ।

चेटी — ईदिसो पव्व होहि ।

विदूषक — गच्छतु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि । निष्क्रान्तौ

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेशधारिणी यासषदत्ता च)

चेटी — किं णिमित्तं भट्टिदारिआ पमव्वण आअदा ?

पद्मावती — हला, ताणि दाव सेहालिआ गुह्यआणि पेफ्फामि कुसुमिदाणि पा ण वे सिं ।

चेटी — भट्टिदारिण ! ताणि कुसुमिदाणि खाम, पघालन्तरिदेहिं विअ मोत्तिआ-लभ्यएहिं आइदाणि कुसुमेहिं ।

पद्मावती — हला ! जदि पव्व, किं दाणिं विलम्बेसि ?

चेटी — तेण हि इमस्सि सिलावट्टए मुहुअअ उपविसदु मट्ठि दारिआ । जाव अहं वि कुसुमायचअ करेमि * ।

१ कुक्खिअ 'कुक्खि' पेट ।

२ जाव साधारण रूप है । यहाँ य नहीं आया है । अहंवि अधिक अस्त्रा होता ।

३ गुह्यअ (गुह्यक) अर्धमागधी शौरसेनी मागधी गुह्य ५ ४८ । इस के लिये कोई कारण नहीं दीखता । पिछले अंक में गुह्यद गुह्यद के लिये आया है, जहाँ परिवर्तन आर्य नहीं है ।

४ शिलावट्टक 'पाषाणपट्टक' । (५४ १६ पर सिखा पट्टक) । उपविसदु

पद्मावती—अर्ये ! किं पथ उपविसामो ?

वासवदत्ता—एव्व होदु ।

(उभे उपविशत)

(रेखाङ्कित शब्द नियमानुकूल शौरसेनी नहीं हैं) ।

अनुवाद

विदूषक—(खुशी से) अहोभाग्य ! आज महाराज घरसराज के मङ्गलमय विवाह का आनन्द प्राप्त हो ही गया है । इसका पूर्व ज्ञान किसको था कि हम दुःख के अगाध जल में प्रविष्ट होकर फिर उसके बाहर आ निकलेंगे । इस समय मैं राजमहलों में सोता हूँ, अन्त पुर के सरोवरों में स्नान करता हूँ और बड़ी मधुर तथा प्रिय मिठाइयों को खाता हूँ । मैं अप्सराओं के सगम के बिना उत्तरखण्ड में घाम कर रहा हूँ । तथापि परन्तु बहुत बड़ा दोष है कि मैं भोजन को अच्छी तरह नहीं पचा सकता । मुझे अच्छी अच्छी रजाइयों वाले पिछीने पर भी नींद नहीं आती, इसलिये मुझे घातशोणित की पीड़ा का जैसा अनुभव हो रहा है । सत्य है कि तन्दुलस्ति और रगदु भोजन के बिना दुनिया में वास्तविक सुप्त नहीं है ।

(चेटी आती है)

चेटी—आर्य वसन्तक कहाँ गया होगा ! [घूम कर देखती है] अहो ! आर्य वसन्तक यद्द है । (आगे बढ़ कर) आर्य वसन्तक ! मैं तुमको किस समय से ढूँढ़ रही हूँ ।

विदूषक—(फटाहा करके) भद्रे ! किस निमित्त से तू मुझे ढूँढ़ रही है ।

शब्द शौरसेनी है । इसी प्रकार उभरदा शब्द रूप होना चाहिये । पृष्ठ ४० अक्षर ३, यहाँ कोई य नहीं है ।

चेटी—हमारी स्वामिनी पूछती हैं क्या जामाता जान कर चुके ?

विदूषक—तुम यह किस लिये पूछ रही हो ?

चेटी—और किस लिये ! केवल इस कारण कि फूल तथा सुगंधित द्रव्य ले आऊ ।

विदूषक—महाराज नद्दा चुके हैं । भोजन के अलावा सब चीजें ला सकती हो ।

चेटी—भोजन (लाने को) क्यों रोक रहे हो ?

विदूषक—इसलिये कि मेरा पेट कोकिल की आँख की भाँति चक्र लगा रहा है ।

चेटी—सदा इसी तरह ही रहो ।

विदूषक—तुम जाओ । मैं भी महाराज को मिलने जाता हूँ ।

(दोनों जाते हैं)

[सहेलियों सहित पद्मावती और आवन्ती घेप में वासवदत्ता प्रवेश करती हैं]

चेटी—राजकुमारी प्रमोद वन में कैसे आई ?

पद्मावती—अरी मैं देखती हूँ कि शेफालिका के गुल्म विकसित हो गये हैं कि नहीं ।

चेटी—राजकुमारी ! वे खिल गये हैं । फूलों सहित वे इस प्रकार शोभायमान हो रहे हैं जैसे प्रवाल में मोती विरोधे हों ।

पद्मावती—प्रिये ! यदि यह सत्य है तो विलम्ब क्यों कर रही हो ?

चेटी—जब तक मैं पुष्पों को चुनती हूँ तब तक राजकुमारी इस पापाण शिला पर बैठे ।

पद्मावती—आर्ये, क्या हम यहाँ पर बैठ जाय ?

वासवदत्ता—जैसी आपकी इच्छा है ।

(दोनों बैठती हैं)

प्रारम्भिक प्राकृत

उद्धरण नं० ३०

चौथा चट्टान शासन

नोट—गिरनार शासन की भाषा पश्चिमी और घौली की पूर्वी प्राकृत है। अशोक की धर्मलिपियों की भाषाओं के सम्बन्ध में बूल नर कृत अशोक ग्लोसरी (Ashoka Glossary) देखनी चाहिए। मूल चट्टानों पर व्यञ्जन का द्विर्भाव नहीं दिया गया।

गिरनार—अतिक्रान्त अतर बहूनि याससतानि यदितो एव प्राणारंभो विहिंसा च भूतान नातीसु असप्रतिपत् प्राक्षणसमणान असप्रतिपती।

घौली—अतिक्रान्त अतर बहूनि वस सतानि यदिते व पानालमे विहिंसा च भूतान नातीसु असप्रतिपत्ति समनयामनेसु असप्रतिपत्ति।

प्राचीनकाल में सैकड़ों वर्षों तक सदा पशुओं के घघ और जीघहिंसा, सम्बन्धियों के प्रति अशिष्टता और प्राक्षणों और अमणों के प्रति अशिष्टता की बढ़ती होती रही।

अतिक्रान्त=अतिक्रान्तम्। यदितो=वर्धितो, तुलना करो यदितो। नाति=शाति। पालि आति। सप्रतिपत्ति 'उचित प्रतिष्ठा'।

गिरनार—त अज देवान प्रियस प्रियदसिनो रामो धमचरणेन मेरीघोसो अहो धमघोसो विमानदसणा च इस्तिदसणा च अग्नि अघानि च अन्नानि च दिव्यानि रूपानि दसयित्वा जन।

घौली—से अज देवान प्रियस प्रियदसिने लाजिने धमचलनेन भेलिघोस अहो धमघोस विमानदसन इर्यानि अगिरुघानि अनानि च दिवियानि रूपानि दसयितु मुनिसान।

किन्तु अब देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरि (ध्वनि) धर्मघोष हो गया है, जिसमें लोगों को विमानदर्शन, रूपों का दर्शन कराया जाता है।

*अभोत् (अमवत्) से। अथ विद्वानों ने इसे के अर्थ में लिया है, तुलना करो अथवा

अपभ्रंश अद्वयः । त्वा, तु=संस्कृत त्वा, दर्शयित्वा । द्वितीयानि द्वितीया का यदुपचयन पुनिङ्ग जो नपुसक रूप से लिया गया है । अग्नि-स्कन्ध का अर्थ अलाय या दिव्य प्राणी हो सकता है ।

गिरनार—यारिसे यहूदि वाससतेदि न भूतपुवे तारिसे अज घदिते देवान प्रियस प्रियदसिनो राजो धमानुसधिया अनारमो प्राणान अयिदिसा भूतान आसीन सपटिपती ब्रह्मणसमणान स पटिपती मातरि पितरि सुसुसा यदरसुसुसा ।

धौली—आदिसे यहूदि वाससतेदि नो इतपुलुवे तादिसे अज घदिते देवान प्रियस प्रियदसिने लाजिने धमानुसधिया अनालभे पानान अयिदिसा भूतान नातिस्तु सपटिपति समन धमनेस्तु सपटिपति मातिपितुसुसुसा बुद सुसुसा ।

जैसा कि पहिले सैकड़ों वर्षों से इन बातों का अस्तित्व नहीं था, देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से पशुओं और जीवों की अहिंसा, सम्बन्धियों के प्रति शिष्टता, ब्राह्मणों और धर्मियों के प्रति शिष्टता, माता और पिता की आज्ञा का पालन, और बड़े बूढ़ों के आज्ञापालन की वृद्धि की गई है ।

यदर=स्थायिर, पालि घेर । बुद=वृद्ध, पालि बुद्ध अथवा बुद्ध ।

गिरनार—एस अने च बहुविधे धमचरणे घदिते घदयसति वेध देवान प्रियो प्रियदसी राजा धमचरण इद ।

धौली—एस अने च बहुविधे धमचलने घदिते घदयसति वेध देवान प्रिये प्रियदसी लाजा धमचलन इद ।

इस प्रकार और अनेकों तरीकों से धर्माचरण की वृद्धि की गई है । और देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा सदा इस धर्माचरण की वृद्धि करेगा ।

गिरनार—पुत्रा च पोत्रा च प्रपोत्रा च देवान प्रियस प्रियदसिनो राजो घघयसति इद धमचरण आब सवटकपा ।

धौली—पुता पि च नतिपनति च देवान प्रियस प्रियदसिने

लाजिने पपदयिसति येव धमउसा इम आकप ।

और देवानामिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र और पौत्र और प्रपौत्र
कल्पात् तक इस धर्माचरण की वृद्धि करेंगे ।

आय संयट कपा=यायत् सयत्कल्पात् । आकप=आकल्पम् ।
नति पनति (नष्ट प्रपष्ट) ।

गिरनार—धमग्दि सीलग्दि तिष्ठतो धम अनुसासिसति ।

धौली—धमसि सीलसि च चिठितु धम अनुसासिसति ।

धर्म और शील में स्थिर रह कर ये (लोगों को) धर्माचरण की
शिक्षा देंगे ।

चिठितु * चिठति—से कल्पात् रूप ।

गिरनार—यस हि सेस्ठे कमे य धमाउसासन ।

धौली—यस हि सेठे कमे या धमाउसासना ।

क्योंकि यही—अर्थात् धर्माउसासन श्रेष्ठ काम है ।

गिरनार—धमचरणे पि न भयति असीलस । त इमग्दि अय
ग्दि यधी च अदीनी च साधु ।

धौली—धमचरणे पि खुनो होति असीलस । से इमस अठस
यदी अदीनी च साधु ।

और धर्माचरण शीलहीन के लिये नहीं है । इसलिये इस अर्थ
की वृद्धि और उसमें प्रमाद १ करना पुण्यकार्य है ।

गिरनार—यताय अथाय इद लेप्पापित इमस अधम पधि युजतु
दीनि च मा लोचेतव्या । द्वादसवासाभिसेतो देवान प्रियेन
प्रियदसिना राजा इद लेप्पापित ।

धौली—यताये अठाये इय लिखिते इमस अठस यदी युजतु
दीनि च मा अलोचयिस् । द्वादसवसानि अभिसितस देवान
प्रियस प्रियदसिने लाजिने य इध लिखिते ।

निम्नलिखित उद्देश्य से यह लिखवाया गया है कि ये अपने

आप को इस आचरण की वृद्धि में लगावें और उसकी उपेक्षा का अनुमोदन न करें। इसे देवाना प्रिय प्रियदर्शि राजा ने लिखवाया था जब उसका अभिप्रेत हुए बारह वर्ष हो गये थे।

युजतु लोद् 'अपने आपको लगावें'। मा आलोचयिषु प्रथम पुरुष बहुवचन आलोचयति का लुक् रूप 'वे इसका अनुमोदन न करें', लोचेतव्या (गिरनार) तव्यान्तरूप है, शब्द योजना कुछ मिथित सी प्रतीत होती है। द्वादस 'द्वादश' तुलना करो त्य के लिये त्य। उच्चारण अभिनिहित होने से द् अन्तत लुप्त हो गया और केवल य शेष रह गया। इसी प्रकार प्राकृत वारस, वारह, हिन्दी बारह इत्यादि की उत्पत्ति है।

उद्धरण नं० ३१

पालि

जातक ३०८।

अतीते वाराणसिय ब्रह्मदत्ते रज्ज कारेन्ते बोधिसत्तो हिमवन्त-
पदेसे रुक्म-कोट्ट सकुणो हुत्वा निव्वसि। अथेकस्स सीहस्स
मस आदन्तस्स अट्ठि गले लागि, गल्लो उद्धुमायि, गोचर गण्हितु
न सक्कोति खरा वेदना वचन्ति।

टिप्पण—वाराणसिय=वाराणस्याम्=अर्धमागधी वाणारसीय।
ब्रह्म, प्राकृत बम्ह। कारेन्ते णिजन्त शत्रन्तरूप, शौरसेनी करेन्ते कर्तृ
वाच्य है। रुक्म=कठफोड़ा। रुक्म इसी प्रकार माहाराष्ट्री शौर
सेनी इत्यादि में=वैदिक रुक्म 'वृक्ष' जिसका सम्बन्ध नि सन्देह
वृक्ष से है, जिससे माहाराष्ट्री जैन माहाराष्ट्री वच्छ निकला है (पि
शल १ ३२०)। हुत्वा=शौरसेनी भविष्य, अर्धमागधी होत्ता। निव्वसि
'फिर पैदा हुआ' निव्वसति=शौरसेनी णिव्वट्ठि से लुट् (निर+

लाजिने एवदयिषति येष धमचलन इम आकप ।

और देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र और पौत्र और प्रपौत्र
फलपान्त तक इस धर्माचरण की वृद्धि करेंगे ।

आप सयट कपा=यावत् सवत्करपात् । आकप=आकल्पम् ।
नति पनति (नष्ट प्रणष्ट) ।

गिरनार—धमग्धि सीलग्धि तिष्ठतो धम अनुसासिसति ।

धौली—धमसि सीलसि च चिठितु धम अनुसासिसति ।

धर्म और शील में स्थिर रह कर ये (लोगों को) धर्माचरण की
शिक्षा देंगे ।

चिठितु * चिठति—से क्तवान्त रूप ।

गिरनार—एस हि सेस्ते कमे य धमानुसासन ।

धौली—एस हि सेठे कमे या धमानुसासना ।

क्योंकि यही—अर्थात् धर्मानुशासन धैर्य काम है ।

गिरनार—धमचरणे पि न भवति असीलस । त इमग्धि अथ
ग्धि वधी च अहीनी च साधु ।

धौली—धमचरणे पि चुनो होति असीलस । से इमस अठस
वधी अहीनी च साधु ।

और धर्माचरण शीलहीन के लिये नहीं है । इसलिये इस अर्थ
की वृद्धि और उसमें प्रमाद न करना पुण्यकार्य है ।

गिरनार—एताय अथाय इद लेखापित इमस अथस वधि युजतु
हीनि च मा लोचेतव्या । द्वादसवासाभिसितेन देवान प्रियेन
प्रियदसिना राजा इद लेखापित ।

धौली—एताये अठाये इय लिखिते इमस अठस वधी युजतु
हीनि च मा अलोचयिस्सु । दुवादसवसानि अभिसितस देवान
प्रियस प्रियदसिने लाजिने य इय लिखिते ।

निम्नलिखित उद्देश्य से यह लिखवाया गया है कि ये अपने

[(अ) पि+धा] का तुमुधन्त रूप । निलीयि 'अनु किया' देखो ऊपर निलीनो ।

सीहो नीरोगो हुत्वा एकदिघस वनमहिस वधित्वा आदति ।
सकुणो "धीमसिस्सामि ७१" ति तस्स उपरिभागे साखाय निली
यित्वा तेन सार्द्धं सल्लपन्तो पठम गाथ आह—

अकरम्हसे ते किण्ण य बल आहुवम्हसे,
मिगराज नमो व्यत्थु, अपि किञ्चि लभामसे ।

टिप्पण—धीमसिस्सामि धीमसति का भविष्यत् रूप 'पर
खना, जाचना' (मीमासते) । पठम=प्राकृत पठम । अकरम्हसे
लुङ् आत्मनेपद । अहुवम्हसे भवति का आत्मनेपद लुङ् । व्यत्थु=
(इति+अस्तु) । लभामसे आत्मनेपद लोट् ।

त सुत्वा सीहो दुतिय गाथ आह—

मम लोहित मण्णरस निध लुहानि कुम्पतो
दन्तन्तर गतो स तो त बहु य हि जीवसीति ॥

त सुत्वा सकुणो इतरा द्वे गाथा अभासि—

अकतञ्चु अकत्तार कतस्स अप्पत्तिकारक
यस्सि कतञ्चुता नत्थि निरत्था तस्स सेयना ।
यस्स सम्मुख चिरणेन मित्तघम्मो न लभति
अनुसुच्यम् अनङ्कोस सनिक तम्हा अपक्कमे ति ।
एव यत्था सो सकुणो पक्कामि ।

टिप्पण—मण्ण 'मक्षण' । कुम्पन्तो करोति का
शधन्त । लुहानि 'रौद्र काम' (रुद्र) । अभासि 'कहा' भासति
का लुङ् रूप । कतञ्चु 'कृतञ्च' । चिरण 'पूरा किया' (*चीर्ण)
चरति का क्लान्त रूप, 'कोई काम जो किसी मनुष्य के सामने किया
गया हो, अत एव वैयक्तिक अनुग्रह' । सनिक 'शीघ्रता से' । कम्मी
कमी इसका अर्थ शनैः की भांति धीरे धीरे होता है, मूल अर्थ

५) । अथ=शौरसेनी अथ । सीद्, यद्दी रूप माहाराष्ट्री में
 ६५) । लगि 'लग गया, फस गया' लग्गतिसे लुट् । उद्भु
 यि 'कुलाया गया', उद्भुमायति=उद्भुमायते से कर्मधाच्य लुङ्-
 य । गणित्तु=शौरसेनी गणित्तु । सक्तोति=शौरसेनी सक्तुणो
 । जी माहाराष्ट्री सक्त, सक्ते । यत्तन्ति=शौरसेनी यद्गति ।

अथ ७ सो सक्तुणो मोचर पसुतो दिस्वा साधाय निलीनो
 किं ते सम्म दुक्कतीति 'पुच्छि' । सो तम् अथ आचिफिध "अहन्
 सम्म एत अट्ठि अपनेय्य, अथेन ते मुख पयिसितु न विसहामि,
 मादेय्यासि पि मन्" ति "मा मायि सम्म, नाहन् त खावामि, जी
 येत मेदेहीति" ।

टिप्पण—ए 'उसको' । (भोजन) दूधने में लगा हुआ=
 सित । दिस्वा=दृष्ट्वा, अर्धमागधी दिस्त्वा, दिस्त्, दिस्त् ।
 साधाय, तुलना करो माहाराष्ट्री सत्तमी मालाअ । निलीनो 'अड़े
 र बैठा हुआ' निलीयति का हान्त रूप कर्मधाच्य, तुलना करो
 शौरसेनी णिलीअमाण । सम्म 'मित्र, भद्र' ? सम्पक् से । आ
 चेफिध 'कहा' आचिफयति (आ+ख्या)=अर्धमागधी आइफय् ।
 अपनेय्य 'मैं हटा देता' शौरसेनी में अयणेअ, अर्धमागधी अयणे
 आ । विसहामि (यि+सह्) 'साहस करता' ।

सो "साधु" ति त पस्सेन निपज्जापेत्या "को जानाति किं पेस
 करिस्सतीति" चिन्तेत्या यथा मुख पिददितु न सक्तोति तथा तस्स
 अधरोट्ठे च उत्तरोट्ठे च दण्डक ठपेत्या मुख पयिसित्वा अट्ठिकोटिं
 तुण्ठेन पहरि । अट्ठि पतित्वा गत । सो अट्ठि पातेत्या सीहस्स
 मुखता निपथम तो दण्डक तुण्ठेन पहरित्वा निपथमित्या साधगो
 निलीयि ।

टिप्पण—पस्स=शौरसेनी पास । निपज्जापेत्या निपज्जति
 (नि+पद्) का शिञ्जत् फत्वा त रूप । पिददितु पिददति 'ढकता है'

[(अ) पि+धा] का तुमुभ्रन्त रूप । निलीयि 'अनु किया' देखो ऊपर निलीनो ।

सीहो नीरोगो हुत्वा एकदिवस वनमहिंस यधित्वा आदति । सकुणो "धीमेमिस्सामि नन्" ति तस्स उपरिभागे साखाय निलीयित्वा तेन सार्द्धं सल्लपन्तो पठम गाथ आह—

अकरग्दहे ते किञ्च य बल आहुयग्दहे,
मिगराज नमो त्यत्थु, अपि किञ्चि लभामसे ।

टिप्पण—धीमसिस्सामि धीमसति का भविष्यत् रूप 'पर धना, जाचना' (मीमासते) । पठम=प्राकृत पठम । अकरग्दहे लुङ् आत्मनेपद । अहुयग्दहे भवति का आत्मनेपद सुख । त्यत्थु= (इति+अस्तु) । लभामसे आत्मनेपद लोड् ।

त सुत्वा सीहो दुतिय गाथ आह—

मम लोहित भण्यस्स निध लुदानि कुप्पतो
दन्तन्तर गतो सन्तो त बहु य हि जीवसीति ॥

त सुत्वा सकुणो इतरा द्वे गाथा अभासि—

अकतब्बु अकत्तार कतस्स अप्पतिकारक
यस्सि कतब्बुता नत्थि निरत्था तस्स सेवना ।
यस्स सम्मुच्च चिण्णेन मित्तधम्मो न लम्भति
अनुत्तुप्पम् अनङ्कोस सनिक तग्धा अपक्कमे ति ।
एव वत्था सो सकुणो पक्कामि ।

टिप्पण—भण्य ' भण्य ' । कुप्पन्तो करोति का श्रवन्त । लुदानि ' रौद्र काम ' (रुद्र) । अभासि ' कदा ' भासति का लुङ् रूप । कतब्बु ' कृतञ्च ' । चिण्ण ' पूरा किया ' (* चीर्ण) चरति का क्लान्त रूप, ' कोई काम जो किसी मनुष्य के सामने किया गया हो, अत एव पैयकिक अनुग्रह ' । सनिक ' शीघ्रता से ' । कभी कभी इसका अर्थ शनैः की भाति धीरे धीरे होता है, मूल अर्थ

‘नरमी से, धीरे से।’ तम्हा (तस्मात्) शौरसेनी में किया विशेषण की भाँति प्रयुक्त होता है।

उद्धरण नं० ३२

पालि

जातक ३३६।

बापेरजातकम्

अतीते पारावसिय प्रसङ्गे रज्ज कारेन्ते बोधिसत्तो मोर-यो
निय निम्बचित्था बुद्धि अ-पाय सोमग्ग पत्तो आरब्धे विचरि। तदा
एकस्मै पाणिजा दिसा काक गहेत्ता नायाय बापेररुद्धे अगमसु।
तस्मिं निर काले बापेररुद्धे सकुणा नाम नत्थि। आगतागता रुद्ध
वासिनो त कूपग्गे निसिन्न दिस्वा “पस्सयिमस्म छपियण गल
परियोसान मुत्ततुण्णक माणि गुलक-सदिसानि अक्खीनीति” काकम्
एव पस्सित्वा ते पाणिजके आदसु— इमं अय्यो सकुणं अम्हाक
देथ, अम्हाक हि इमिना अत्थो, तुम्हे अत्थणो रुद्धे अज्ज लमिस्सथा”
ति। “तेन हि मूलेन ग-हथा” ति। “कदापणेन नो देथा” ति। “न
देमा” ति। अनुपुग्गेन वड्ढेतथा ‘सतेन देथा’ ति बुत्ते “अम्हाक
एस बहुपकारो, तुम्हेहि पन सद्धि मेत्ती होत्” ति कदापण-सत
गहेत्वा अदसु।

बुद्धिम् अन्वाय “बुद्धि को प्राप्त होकर, पूर्णतया यद् कर”
पत्थान्त (अनु+इ) जिस प्रकार मि से माय् बनता है उसी के
सादृश्य पर * अ-वेत्वा के स्थान में प्रस्तुत रूप बना है। एकस्मै
‘निश्चित’ (* एक त्य)। दिसा काक ‘परदेशी कौवा’। अगमसु
प्रथम पुरुष बहुवचन लुङ् ‘गये’। किर=किल। प्रत्यक्षत बापेर
राज्य समुद्र में किसी ऐसे मुल्क में था जहाँ पक्षियों का होना

दुर्लभ सम्पत्ति जाता था, सम्भवत यह देश कहीं फारस की खाड़ी में स्थित होगा। आगतागता "यटोही, दर्शक"। कृप 'मस्तूल'। निसिध्न 'अड़े पर स्थित'—जैन माहाराष्ट्री निसिध्न। पस्सथ, मध्यम पुरुष बहुवचन रोड्, "देखो"। परियोसान "अन्त में" (पर्यवसान)। अय्यो, शायद शुद्धरूप अय्या "साहिवान" = शौरसेनी अजा, है। वद्दापण "एक प्रकार का सिक्का, यहाँ सम्भवत खाड़ी का सिक्का"। मेत्ती "मैत्री"। अदसु, लुङ् "उन्होंने दिया"।

ते त गहेत्वा सुवण पञ्चरे पप्पिपित्वा नानप्यकारेन मच्छ्रम सेन वेध फलाफलेन च पटिजग्गिसु। अञ्जेस सकुणान अपिउज मानहाने वसहि असद्धमेहि समयागतो काको लाभग पसग्ग प्पत्तो अहोसि। पुनचारे ते पाणिजा एक मयूर-राजान गहेत्वा यथा अञ्जुरासहेन पस्सति पाणिप्पहारसहेन नञ्चति एव सिप्पया पेत्या पायेद रट्ठ अगमसु। सो महाजने सन्निपतिते नावाय धुरे ठत्वा पप्पे विधूणित्वा मधुर स्सर निञ्जारेत्वा नञ्चि।

फलाफल "अगली फल"। जब किसी समास में कोई शब्द दोहराया जाता है तो पालि में एक स्वर दीर्घ हो जाता है। इसी प्रकार खडाखड 'टुकड़े टुकड़े,' किष्वाकिष्वाणि "सब प्रकार के कृत्य"। पटिजग्गिसु, लुङ् पटिजग्गति "निगरानी रखना, देखभाल करना" (प्रति+जागृ)। समयागतो "युक्त" (सम्+अनु+आ+गम्)—इसका पर्याय बौद्ध संस्कृत में पाया जाता है। पसग्ग "यश की चरम सीमा"। पुनचारे "अगली बार"। अञ्जुरा "उगलियों को चटकाना"। पस्सति "बीखता है" √वाश्। उन्होंने उसको उगलियों के चटकाने पर चीखना और हाथों से ताली बजाने पर नाचना सिखा रक्खा था। धुरे "धुरे पर"। ठत्वा, माहाराष्ट्री जैन माहाराष्ट्री ठाऊण, अर्धमागधी जैनशौरसेनी ठिथा। निञ्जारेति "निकाल डालना, उधारना" निञ्जरेति (निश्+चर्) का थिजन्त रूप।

मनुस्सा त दिस्सा सोमनस्स जाता "एत अय्यो सोमग्ग पत्त सुसिप्पित्त-सङ्खुण राजा अम्हाक देथा" ति आइसु । "अम्हेहि पठम काफो आनीतो त गण्हित्थ, इदानी एत मोर राजान आना यिम्ह, एत पि याचथ, तुम्हाक रट्टे सङ्खुण नाम गहेत्था आगतु न सक्का" ति । "हेतु अय्यो, अत्तनो रट्टे अज्ज लभिस्सथ, इम नो देथा" ति मूल घट्टेत्वा सहस्सेन गण्हित्सु । अथ न सत्त रत्तम विचिच्छे पजरे ठपेत्वा मण्डुमस फलाफेलाहि वेथ मधु लाज सक्कथा पानकादीहि च पट्टिजग्गिंसु । मयूरराजा लाभग्ग यसाग्ग-पत्तो जातो । तस्सागतकालतो पट्टाय काकस्स लाभसक्कारो परिहायि, कोवि न ओलोकेतु पि न इच्छति । काको आदनिय भोजनिय अलभमानो 'काका' ति वस्सतो गत्था उक्कारभूमिय ओतरि ।

आइसु-लुह 'उन्होंने कहा' । गण्हित्थ मध्यमपुरुष बहुवचन "तुमने लिया" । आनायिम्ह "दम लाये हैं" । सक्का "सम्भव है" । कभी कभी इसकी व्याख्या सक्को 'समर्थ' (=शुक्ल) का बहुवचन मान कर भी की जाती है, किन्तु यह प्रायः अशुभ होता है, और पिशल ने इसकी व्युत्पत्ति शक्यात् से बतलायी है § १३३ । "वस्तुतः किसी पक्षी को लेकर आपके देश में आता असम्भव है" । ठपेत्था=अर्धमागधी ठावेत्ता, जैन माहाराष्ट्री ठविता, ठविज्ज, ठविय, शौरसेनी ठाविअ, ठविअ । लाज 'खील, खजा' । पट्टाय 'से' शब्दार्थ से रवाना होकर" (प्र+स्था) । इसी प्रकार अज्जपट्टाय "भाज से लेकर" । परिहायि "अलग जा गिरा" । आदनिय 'खाद्य' । भोजनिय मृदु भोजन" । पथ में पञ्चभोजन पद मिलता है । काका' ति वस्सतो काय काय करता हुआ । "उक्कारभूमि 'विष्ठा या मल का ढेर', अर्धमागधी उक्कार । ओतरि "उतरा" ।

उद्धरण नं० ३३

पाली

महावंश, सर्ग ७

लङ्काविजय

(बाह्य ऐयवरसन की रीवर, पृष्ठ ११० । माहगर का अनुवाद पृष्ठ ५५)

निर्योण समय बुद्ध ने इन्द्र को बतलाया कि सीद्दहाहु का पुत्र विजय सात सौ अनुयायियों के साथ लङ्का को गया है और प्रार्थना की कि उसकी और उसके अनुयायियों की सायधानी से रक्षा की जाय । इन्द्र ने लका की रक्षा का भार विष्णु को सौंपा ।

सकेन वुत्तमत्तो सो लङ्कम् आगम्म सज्जुकम् ।
परिभ्याजक वेसेन रुक्खमूलम् उपाविसि ॥ ६ ॥

विजय एमुणा सम्ये त उपेण्ण अपुच्छिस्तु ,
“अय मो को नु दीपो !” ति । “लकादीपो” ति अग्रुधि ॥ ७ ॥

श्लोक ६—‘वुत्त’ वृत्ति ‘यह बोलता है’ का क्लान्त रूप । इसी प्रकार जैन माहाराष्ट्री अर्धमागधी में भी । मत्त (मात्र), प्राकृत भाषाओं में अधिक प्रचलित रूप मेत्त है । अर्धमागधी-मिच्छ । आगम्म आगच्छति का कृदन्त रूप । सज्जक ‘शीघ्रता से’, यह शब्द लघु से निकला है । वेसेन (परिभ्याजक के) ‘वेश में’ ।

श्लोक ७—एमुणा ‘प्रमुखा’, इत्यादि, अर्थात् विजय और उस के अनुयायी ।

“न सति मनुजा पत्थ, न च हेस्सति धो भयं”-
इति वत्था कुपिडकाय ते जलेन निसिञ्चिय ॥ ८ ॥
सुत्तञ्च तेस हत्थेसु लम्गेत्था नमसागमा,
दस्सेसि सोणिकूपेन परिचारिक-यधिसनी ॥ ९ ॥

एवो तं वारियन्तो पि राजपुत्तेन अन्वगा ।

“गामन्दि विज्जनानन्दि भवन्ति सुनखा” इति ॥ १० ॥

तस्सा च सामिनो तत्थ बुवेणी नाम यक्खिनी ।

मिस्सिदि रुक्ख-भूतन्दि कन्तन्ती तापसी विय ॥ ११ ॥

दिस्वान सो पोफसररि निसिण तच्च तापसि ।

तत्थ महात्था पिबित्था खादाय च मुत्तालयो-

वारिच्च पोफ्यरे देव सो बुद्धासि, तम् अग्रवि-

“भक्खो सि मम, तिद्धा” ति, आत्ताब्बो ध सो नरो ॥ १३ ॥

वरिचसुत्तवेजेन भक्खेतु सा १ सक्कुणि ।

वाचियन्तो पि त सुत्त नादा यक्खिनिया नरो ॥ १४ ॥

तं गहेत्था सुदहाय दन्त यक्खिनी विपि,

एव एकेकसो तत्थ विपि सत्तसत्तानि पि ॥ १५ ॥

श्लोक ८ देस्सति “मयति” (*द्विस्सति) का भविष्यत् रूप

भविस्सति भी प्रचलित रूप है ।

श्लोक ९ सुत्त, उदाहरण के लिए भूत प्रेतों के विरुद्ध रक्षा का

एक साधन । अगमा, लुक् ‘अन्तर्हित होगया’ इसी प्रकार अगमि

अगमिक्क, अगमसि इत्यादि रूप भी होते हैं । वस्सेसि ‘दिखाई

दिया’, लुक् । तुलना करो वस्सेसि=दर्शयति । सोणि ‘शुनी’ ।

श्लोक १० वारियन्तो, वारेति ‘निषेध करता है’ के वारियति

इस कर्मवाच्य रूप का शप्रन्त, जो बुणाति का गिजन्त रूप है ।

अन्वगा ‘अनुगमन किया’ । सुनखा ‘कुत्ते’ (शुनका) — ‘केवल यहाँ

जहाँ कोई गँव हो ।’

श्लोक ११ कन्तन्ती ‘कातती हुई’ ।

श्लोक १२ दिस्वान, पत्थान्त=दिस्वा, इसी प्रकार पस्सित्वान

पत्थाना है । मुत्तालयो, द्वितीया बहुवचन ‘कमलनाल’

श्लोक १३ नैर में ‘सा’ है किन्तु तद्भाग से बाहर पुरुष

सुद्धरण नं० ३३

पाली

महावंश, सर्ग ७

सद्धाविजय

(बाइबल ऐण्डरसन की रीढ़, पृष्ठ ११० । माइगर का अनुवाद पृष्ठ ५५)

निर्घाण समय बुद्ध ने इन्द्र को बतलाया कि सीद्धसाइ का पुत्र विजय सात सौ अनुयायियों के साथ सद्धा को गया है और प्रार्थना की कि उसकी और उसके अनुयायियों की सायधानी से रक्षा की जाय । इन्द्र ने लका की रक्षा का भार विष्णु को सौंपा ।

सकेन वुत्तमत्तो सो लङ्कम् आगम्म सज्जुकम् ।

परिभ्याजक-वेसेन रुक्कमूलम् उपाविसि ॥ ६ ॥

विजय-वपुण्या सध्वे त उपेण अपुच्छिसु ,

“अय मो को नु दीपो !” ति । “लकादीपो” ति अभुवि ॥ ७ ॥

श्लोक ६—‘वुत्त’ वृत्ति ‘यह बोलता है’ का क्लान्त रूप । इसी प्रकार जैन माहाराष्ट्री अर्धमागधी में भी । मत्त (मात्र), प्राकृत भाषाओं में अधिक प्रचलित रूप भेत्त है । अर्धमागधी-मिच्छ । आगम्म आगच्छति का रुदन्त रूप । सज्जक ‘शीघ्रता से’, यह शब्द सध्वः से निकला है । वेसेन (परिभ्याजक के) ‘वेश में’ ।

श्लोक ७—वपुण्या ‘प्रमुखा’, इत्यादि, अर्थात् विजय और उस के अनुयायी ।

“न सति मनुजा पर्य, न च हेस्सति धो मयं”—

इति वत्था कुण्डिकाय ते जस्सेन निसिञ्चिय ॥ ८ ॥

सुत्तञ्च तेस हरेथेसु लग्गेत्वा नभसागमा,

दस्सेसि सोणिरूपेण परिचारिक-यविस्सनी ॥ ९ ॥

श्लोक १६ अनायन्त 'न आता हुआ' । नर 'धन्धा हुआ, सजा हुआ' । अपस्स०—'जहाँ उसने किसी आते हुए व्यक्ति के पदचिह्नों को नहीं देखा'—म्-सन्धिब्यञ्जन है । भन्ना 'नौकर', (भृत्या) । भोति 'हे भद्रे' ।

श्लोक १६ स-नाम 'उसका नाम' । सावेत्वा, (सुणोति) का क्तवान्त णिजन्त । सधाय 'तय्यार होकर' खींच कर, इसी प्रकार सद्वृत्ति सधेति (सम्+धा) से सन्धेत्वा, सन्दधित्वा, रूप भी बनते हैं ।

श्लोक २० नाराच एक हथियार' । चलय पाश' ।

श्लोक २१ भयट्ठा=भय स्या ।

श्लोक २२ किञ्च (कृत्यम्), इसी प्रकार शौरसेनी में भी ।

श्लोक २३ अद्भुतथाय । 'जिस से उसके साथ विश्वासघात न हो' । सपथ 'शपथ' ।

श्लोक २४ छाता 'भूषा' (प्तात) § ३६ । विनिदिसि 'दिख लाया' (यि+निर+विद्य) ।

उद्धरण नं० ३४

प्राचीन प्राकृत

हार्थीगुम्फा शिलालेख

यह शिलालेख उदयगिरि गुफाओं के, जो कटक से उध्रीस मील दूर हैं, शिलालेखों में से एक है । इसका एक शुद्धपाठ लीडन की ओरियन्टलिस की छद्मी अ-तर्जुनीय कामेस की कार्यवाही में १८८३, पार्टे ३, पृष्ठ १३४, भगवान् लाल इन्द्रजी ने प्रकाशित किया था । तब से नये टप्पों के पर अजा यथघर के सचे और टप्पे भी

और उड़ीसा रिसर्व सोसायटी के पत्र में, १९१७, १९१८ और १९२७, मिलेगा। इस में दिया सम्भवतः मौर्य काल का नहीं यह सिद्ध हो चुका है। यह प्राचीन ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ है और इसका समय सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी रक्खा गया है। शिलालेख में खारवेल के राज्य का वर्ष वर्ष का सन्निवशोरा दिया हुआ है। दुर्भाग्य से यह शिलालेख बहुत विशीर्ण और टूटी फूटी दशा में है। जैसा कि अशोक के शिलालेखों में देखा जाता है, व्यञ्जनों का द्विर्भाव प्रकट नहीं किया गया।

नमो अरहन्तानम् । नमो सम्य सिद्धानम् । घरेन (अथवा घरेन)
महाराजेन महा मेघ वाहनेन चेति राज वस वधनेन
पसथ सुभ लपनेन चतुरन्त-स्त लुठित गुनोपगतेन
कलिङ्गाधिपतिना सिरि खारवेलेन पन्द्रस-यस्सानि
सिरि-कडार सरीर घता कीडिता कुमार-कीडका ।

अर्हतों को नमस्कार। सब सिद्धों को नमस्कार। कलिङ्गाधिपति भीखारवेल धीरमहीपति महामेघवाहन, चेदिराजवश शिरोमणि ने, जो प्रशसित और शुभ लक्षणों से युक्त था और चारों दिशाओं को लूटपाट करने के गुणों से समलङ्कृत था, भी कडार के जैसे शरीर से पन्द्रह वर्ष तक राजकीडा की।

व्यक्तिवाचक नामों के विवेचन के लिये जयस्वाल के उल्लिखित लेखों को देखें। पसथ=प्रशस्त। जयस्वाल का अन्तिम पाठ लुठित है किन्तु यहाँ अनुस्वार का होना सम्भव है, अतएव=लुठित लुटा गया। पन्द्रस तुलना करो पाली पण्डरस, पालि अर्धमागधी जैन माहाराष्ट्री पण्णरस, अपभ्रंश पण्णरह, हिन्दी पन्द्रह इत्यादि। यह बात उल्लेखनीय है कि इसमें द इतने प्राचीन काल में पाया जाता है। 'कडार' कुमार पढ़ा जाता था।

(२) ततो लेख रूप गणना वषट्कार विधि विसारदेन सय विजा पदातेन नव-यसानि योवराज पसासित ।

इसके उपरान्त उस लेख रूप (सिक्के ?) गणना और व्यवहार विधि में कुशल और सब विद्याओं में पारङ्गमत कुमार ने नौ वर्ष तक युवराज की हैसियत से शासन किया ।

रूपका अर्थ मन्दिग्ध है, सम्भवतः उसका अर्थ "विशकारी नदी है" जयस्वाल ने व्यवहार और विधि को "युनिसिपल कानून और धर्मविधान" के अर्थ में अलग अलग लिया है । सर्वविद्यावदात्, विद्याओं की चार से चौसठ तक भिन्न भिन्न सदयाँ दी गयी हैं । योवराज=यौवराज्यम् । प्रशासित ।

(३) सपुण्य-चतुर्वीनति-वसो तदानि यद्यमान सेसयो धेनभि पिजयो सतिथे कलिङ्ग राज यस पुरिस-युगे महाराजाभिसेवन पापुनाति ।

पढ़ते हुए शैशव के अनन्तर चौबीस वर्ष (की आयु के) पूरे हो जाने पर धेन जैसा पिजेता कलिङ्ग राजवश की तीसरी पीढ़ी में महाराज के पद पर अभिषिक्त हुआ ।

पाठ विकृत स्पष्ट नहीं हैं । धर्ममानशैशव ।

(४) अभिसित मतो च पथम वसे चात विहत गोपुर-पाकार निवेसन पटिसम्भारयति कलिङ्ग-नगरि (म्), शिबीर इति-तात् तद्वाग पाडियो च वधापयति सव्यूयान पटिसठपन च कारयति । पनतीसादि छत सहसेहि पकृतियो रजयति ।

अभिषिक्त होते ही उसने प्रथम वर्ष कलिङ्ग नगर का प्रति संस्कार किया जिसका फाटक, प्राकार और भवन दूफान से छिन्न भिन्न हो गये थे और उसने "शिबीर रिशि" तद्वाग का बाघ बन्धवाया और सारे उद्यानों का प्रतिसंस्थापन करवाया । पैंतीस लाख से उसने प्रजा का अनुरजन किया ।

पथम पालि पठम, शौ० एते पठम । शिबीर का अर्थ पहले शिविर लिया जाता था । "शिबीर रिशि" का उद्बोधन श्रीयुत जयस्वाल ने कराया है । पाडि (पालि) 'बाघ' । पैंतीस लाख को

जयस्थाल ने जनता की सख्या मागा है, किन्तु इससे अधिक समय यह है कि उसका सम्बन्ध 'व्यय' से है।

(५) दुतिये च वसे अचितयिता सातकारि पन्चिमदिस द्वय-गज-नर रघ यहुल बँड पठापयति । कन्ह-बेना गताय च सेनाय चितासित मुसिक-नगर ।

और दूसरे वर्ष सातकारि की उपेक्षा करके उसने पश्चिम में हाथी घोड़े पदाति और रथों की एक बड़ी भारी सेना भेजी। और सेना के कृष्णवेणा में पहुँच जाने पर उसने मुसिक नगर को घिन्नस्त किया।

अचितयिता पढ़ें। अट्टान की हालत से प्रायः यह अनिश्चित हो जाता है कि अनुस्वार लिया गया था या नहीं। ? बेना की जगह बेना पढ़ें।

(६) ततिये च पुन वसे गन्धव वेद बुधो दप नत-गीत वादित-सदसनाहि उसय-समाज कारापनाहि च कीडापयति नगरि ।

तीसरे वर्ष गन्धर्व वेद में निष्णात होने से उसने दप (?) नाच और गीत वाद्य के प्रदर्शनों और उत्सवों और खेलों के द्वारा नगर का मनोविनोद किया।

दप का अर्थ सम्बिद्ध्य है। नत=नर्त। वादित=वादित्र। उसय अर्थात् उत्सव=उत्सव।

शिलालेख शासन काल के तेरहवें वर्ष तक चला गया है। किन्तु पाठ के बीच बीच में इतने शब्द टूटे हुए हैं कि शेष शब्दों या अक्षरों की व्याख्या करना प्रायः कठिन है। आठवें वर्ष उसने राजगृह के राजा को क्रोध पहुँचाया—(राज-गृह नप पीडापयति) —जो, मालूम होता है, अपनी सेना को छोड़ कर मथुरा को भाग गया। बारहवें वर्ष उसने मगध के लोगों में घृणा आतङ्क फैलाया—(मगधान च विपुल भय जनेतो) —

अपने हाथियों को गंगा का जल पिलाया और मगध राज को अपने घरों में सिर फुफो के लिए बियश किया—(मगधं च राजान पादे घ(न्) दापयति) ।

उत्तरकालीन प्राकृत

अपभ्रंश

उद्धरण नं० ३५

यह उद्धरण घनपालकृत "भविष्यत् कद" से लिया गया है, जिस का सम्पादन १६१८ में जेकोबि ने किया था । सन्धि ३, ५२ । बन्धु दत्त यात्रा के लिये प्रस्थान करता है । कुयजङ्गल को छोड़ कर वह दक्षिण पूर्व की ओर समुद्र को जाता है, वहाँ जहाज़ बनाता है, और कई सौ बैलों और भैंसों को छोड़ कर पाच सौ घुने हुए सौदागरों के साथ जहाज़ पर रवाना होता है ।

१ अग्नेय-दिसर्पे मरुदन्ति जन्ति । कुयजङ्गलु महिमण्डलु मुमन्ति ।

२ लङ्घति बियण काणण पल्लव । पुर गाम खेड कम्पड मडव ।

३ जडणा-नइ-सलिलु समुत्तरेधि । जल दुग्गई धल दुग्गई सरेधि ।

४ अन्नन्न-देस भासई नियन्त । रयणायरे चेलाउलाई पत्त ।

५ लफिसाउ समुदुदु जल लव गद्दीर । सप्पुरिस घ थिर गम्मादि धीर ।

६ आसीयिसो व्व चिस विसम सीलु । चेला मदल कल्लोल-लीलु ।

७ दिट्ठई विडल्लई चेलाउलाई । कय-विक्कय-रय-धयणाउ लाई ।

८ धम्मत्थ काम-काखिर सुदाई । सुवियद्द-वयण-विलया सुदाई ।

९ तद्धि ठाहवि जलजन्तई कियाई । परिहरिवि यसह महिसय-सयाई ।

१० जलज-ता कम्मन्तरु करेवि । करणई पिय-पयणीहि सवरेवि ।

११ षडणीहि आरुढ महापहाण । यणिवरहँ सयहि पच्चहि समाण ।

१ आग्नेय दिशा । मरुन्त 'खेलना' पढ़ें, यह देसी शब्द है । मुअन्ति मुञ्चन्ति के लिए *मुचन्ति से ।

२ विजन-, प्रलम्ब, खेद 'गाव' कर्पट । *मडम्ब या *मटम्ब (?)

३ समुत्तरेवि 'पार करके लिखो छदन्त ।

४ नियन्त 'निरीक्षण करते हुए' । रत्ताकरे, बेलाकूल 'ठट' ।

५ आशीधिय 'साँप' । महल्ल=मह+अल्ल ।

७ विपुलानि । क्रय-विक्रय रत-वचनाकुलानि ।

८ कश्चित्=काश्चित् । सुविद्गम । विलया (घनिता) देयी ।

९ ठाहवि, स्थित्वा के लिए । जल-यन्त्र 'जहाज़' ।

११ महाप्रधाना ।

अन्तिम व्यञ्जनों की अल्पप्राणता, द्वितीया के प्रथमा के साथ मिल जाने और असंस्कृत शब्दों की बहुलता पर ध्यान दें ।

प्राकृतशब्दानुक्रमणिका

[प्रथम भाग के उदाहरणों एवं द्वितीय भाग के फुटनोटों में विवृत ।]

अ

अ, व, § ३ ।

अअ, 'अयम्', § ११० अमा०अय

अइणीअ अति नीत § १२५ ।

अधि, अमा०, 'अस्मि' § ६४ । तुलना
करो मिह ।

असु, अशु, § ४६, ६४ । असु भी होता है ।

अकअवणुअ, अकृतज्ञ पृ १८६, छ० ८३ ।

अकएड, अकारड, पृ १४०, नो ५ ।

अकप्य, माग०, अकार्य, पृ २४२, नो २ ।

अकरिअ, लुक्, § १३३ ।

अकासी, अमा०, § १३३ ।

अकखल, माग०, अखर, पृ २४२, नो १ ।

अकिअ, अदि, § ४०, तुलना करो अदिअ,

अगड, पृ० १८६, नो ४ ।

अगल, अर्गल, पृ २०७, छ० १६ ।

अगाहय, अमहरत, पृ १५७, नो १ ।

अगि, अमि, § ३९, ६२, ८८ ।

अग्य, अर्घ्य, § ३६ ।

अङ्गुलीअ, अङ्गुलीयक पृ १३७, नो १ ।

अअन्त, अत्यन्त, § ४४ ।

अच्छह, अच्छ्य § ६० ।

अच्छरा, अच्छरा, § ३६ ।

अच्छरिअ, आचर्य, § ३८, 'अच्छरीअ'
भी होता है ।

अच्छि, अदि, § ३६, तु० अविअ ।

अच्छीइ, अच्छीणि, माहा० बहुव० § ६२ ।

अच्छेर, माहा०=अच्छरिअ, § ७६ ।

अज, (१) 'अय', § ४४ । अप०

अज्जु । (२) 'आर्य', § ५० ।

अज्जमा, आर्या, पृ० १५० ।

अज्जउत, आर्यपुत्र, § २ ।

अज्जसिय, अमा०, आभ्यामिअ-

अज्जवसिअ, अज्यवसित, पृ १२८, नो २ ।

अट्ठाए, अर्याय अमा० पृ २२१, नो ८ अ ।

अदिठ, अदिथ, § ३८ ।

अणज्जतो, अज्ञायमात पृ १६०, नो ५ ।

अणवयग, अमा०, अनमदप, पृ २१६,
नो ५ ।

अणवरयें, जैमाहा०, अनवरत, पृ १६७,
नो ७ ।

अणवण, अनशन, पृ २९०, नो ७ ।

अणहिअअ, अहदय पृ १८१, छ० ९४ ।

अणहिअण, अनभिस, § ३६ ।

अणाइय, अनादि अमा०, पृ २१६, नो ५ ।

अणिअद, अनियत, पृ १३३, नो ३ ।

अणुगेअमा, रौ०, अनुमाप्ता, § ३३ ।

अणुदिअह, अनुदिअम, § २७ ।

अणुअअ, अनुराग, § ६ ।

अणुअय, अमा०, अनुजन, पृ २१८, नो ४ ।

अणेषु, § ११० ।

अण्य, अय, § ५८, १११ ।

अण्यण्य=अण्योण्य, अण्योय, § ७३

अण्येषणा, अण्येषणा, § ४८ ।

अण्येषिदु पृ १२५, नो ६ । अण्येषुम्

अतए, अमा०, आरमत्र पृ २२१ नो १ ।

अता, § ५३६, १००, दु० अत्ता ।

अतिआ, पृ १७१ स ।

अत्य (१) § ४५, अत्र ।

(२)-अर्थ, § ४५ ।

(३) § ५६ अत्र ।

अत्य (१) अस्ति, § ५३८, १३२ ।

(२) अस्ति, दु० अदिठ ।

(३)-अनर्थी जैनमाहा० ।

अदिधि, अतिधि, § ५११, १४ ।

अद पृ १७२ ब । आर्द्र

अदिह, अधुति, पृ १६६, नो ६ ।

अध, अय, § १४ ।

अधरणदा, शौ०, अध-यता, पृ १३४, नो १ ।

अतककरण, अत करण, § ५१ ।

अधार, अप०, अधकार, पृ १०४ ।

अधारिअ, अधकारित § ८२ ।

अपवर्ग, जैनमाहा०, अपवर्ग, पृ २०४, छ० १ ।

अप्य अत्य, § ३७ ।

अप्ता, आत्मा, § ५३६, १०० । दु० अत्ता ।

अपिअ (१) 'अप्रिय', शौ०, २०७ ।

(२) 'अर्पित' जैनमाहा०, पृ २०७, छ० २३ ।

अपीए, अमा०, पृ २१८, नो १ । अद्वितीय

अन्मन्तर, अभ्यन्तर, § ४३ ।

अन्महिअ=अभ्यधिक, पृ १६६ (६) ।

अभिअ, अमृतम्, पृ १६०, छ० २ ।

अमेज्ज, अमध्य, पृ २००, नो १ ।

अम्ह, माहा०, अमा०, जैनमाहा०, § १०७ ।

अम्, केर, § ७६ ।

अम्हे, § १४७, १०६ । अस्मे वयम्

अरिह, अर्ह, § ५७ ।

अत जी, अत सी, § २३ ।

अतिअ, अलीक, § ६७ ।

अतिहदि, माग०, अर्हति, पृ २४४ नो ७ ।

अवणीद, अपनीत, § १२५ ।

अवस्था, अवस्था, § ३८ ।

अवर, अपर, § १७ ।

अवरज्मह, कर्मवाक्य, अप्+राप्, § १२४

अवरणह, अपराहण, § ५२ ।

अवरत्त अपररात्र, अमा०, पृ २१८, नो २

अवरिचिद, अपरिचित, पृ १३७, नो ११

अवस्थ, अवश्य, § ४६ ।

अवज्ञ, अपाज्ञ पृ १८०, छ० ६१ ।

अवि, अवि, § १७ ।

असमत्कअ, असमर्थ, पृ १७५ (अ)

असेस, अशेष, § २० ।

अशोग, अशोक, § ११ ।

अस्य, (१) 'अस्य', § ११० ।	आणवेदि, आणापयति, § ११६ ।
(२) 'अथ', § ४६, वृ०-माहा०-आस ।	आणिय, आनीत, § १२५ ।
अस्य, अथ, § ६४, वृ०-अस्य ।	आणीद, शौ०, आनीत § १२५ ।
अह, अथ, § १४, शौ०-अथ ।	आणेषु, § ११६ । आनयस्व
अहक, पुरानी अमा०, पृ १०० । अहम	आणे, जाने, पृ १६८ (स)
अहर, अधर, पृ १८१, छ० ६३ ।	आमिओइम, आमिओगिय, अमा०,
अहिपात्र, (अभि+√हृ, पृ) १८०, छ० ६१	पृ २१६, नो ४ ।
अभिपात	आमोरिस, अमर्थ, § ५७ ।
अहिण्य, अभिनय, § १२ ।	आरु, आरुच, § १२ ।
अहिण्यण, अभिज्ञान, पृ १३६, नो १२ ।	आरुमह, आरुमदि, § १२५ ।
आ	आरुह, आरोहति, § १२५ ।
आअद, आगत, § २ ।	आलिद, पृ १८०, छ० ६१ ।
आ अ० अ०, आतप, पृ २२८, नो ५ ।	आलेवच, आलेक्य, पृ १२८ । नो ६
आआस (१) 'आयास', पृ० १५७ नो ४ ।	आवजिम, जैमाहा०, पृ २११, नो २ ।
(२) 'आकाश', पृ १७६ (ब) ।	आवजित
आओरिदि, आकारयति आ+√क, पृ	आवत, पृ १७६, छ० ६ । आवर्त
१५७, नो ६ ।	आवेइम, आवेदित, पृ १६२, नो ८ ।
आइदक, जैमाहा० आदिछा, पृ १६६ नो २	आस=अस्य, अथ ।
आइहि, अप० आदी, § ६३ ।	आस, द्वितीया बहुव०, अमा०, § ६२ ।
आउसो, अमा०, आयुमद, पृ २२५, नो २	आसा, आसीद § १३३ ।
आओज, जैमाहा०, आतोच, पृ १६६ नो ८	आसादिदि, शौ०, आसीद § १२५ ।
आगद, शौ०=आअद, § २ ।	आहउ, अप०, आहव, पृ १०३ ।
आगन्तु, जैमाहा०, पृ १६०, नो ५ ।	आहसु, अमा०, § १३३ । 'आहु' भी
आगार, अमा० पृ ११८, नो ५ ।	होता है ।
आयास, अमा०, जैमाहा०=आआस, § ११	आहेवच्च, अमा०, आधिपत्य, पृ २१७, नो ५
आचारिम, आचार्य, § ५८ ।	इ
आउत § १२५ ।	इ=इति, पृ २०५, छ० १० ।
आउप्पद, § १३५ ग	इम=इति, पृ १७३ (इ)
आणत, आगत § १२५ ।	

इय, इयम्, § ११० ।

इक्छ, इक्षु, § ४०, तु० उच्छु ।

इच्छद, जैमाहा०, पृ १६६, नो १०

इच्छ आत्मनेपद, § ११५ ।

इद्वि, अमा०, अद्वि, पृ २२०, नो ३ ।

इत्पी, अी, पृ १२८, नो ४ ।

इध, इह, § २८ ।

इन्दमालमि, इन्द्रमल पृ १७६ (ब) ।

इमीसे, अमा०=इमीए, अीलिङ्ग, § ११० ।

इधरो, माग० । § ११५ ।

इधि, अधि, § ६० ।

इह, § २८=इध ।

ई

ईदिघ, (ईदरा) § ७० ।

इतीसि, ईषदीषत्, पृ १६७ (अ) ।

ईहामिय, ईहामुग पृ २३७, नो ४ ।

उ

उअ, माहा०, पृ १६१, छ० ४ ।

उअअ, उदक § १० ।

उअरियअ=उपरियत, पृ १८३, छ० ७८ ।

उअरोह, उपरोध पृ २०५, छ० १० ।

उअदि, उदधि, पृ १७८ छ० ५६ ।

उअहीउ माहा० पञ्चमी । § ६३ ।

उइद उचित, पृ १४३ नो १ ।

उक्कर, उत्कर पृ १४२ नो ७ ।

उक्कियण, उक्कार्य, पृ २४२, नो ।

उक्कअ, उक्कात, पृ १८६ छ ८५ ।

उक्कियत, उत्कियत, पृ १८१, छ० ६३ ।

उगम उद्गम § ३४ ।

उगाहिहि, पृ १८६ छ ८४ ।

उघोड पृ १७१ (अ)

उच्छु, माहा इक्षु, § ४०, ७० ।

तु शौ इक्छ हिंदी ईक्ष, पू हिंऊछ

मराठी ऊछ, व आछ ।

उज्जल, उज्जल § ४२ ।

उज्जाण उद्यान, पृ १५६ । नो १

उज्जुअ, अज्जुअ, § १५५, ६८ ।

उज्जोविम, पृ २३६, नो ३ ।

उज्जिअ, जैमाहा उज्जिअ, पृ १६८, नो ६

उण पुन, § ३ ।

उयह, उयण, § ४७ । तु० मराठी

ऊन, तु० ऊन (ह) उ ।

उयहाल, अय०, उयणकाळ, पृ १०४

उत, उक्त, § १२५ ।

उतियण, उतीर्य, § १२५ ।

उत्थपिअ, माहा० उत्तमित, पृ

१७८, छ० ५६ ।

उत्थेदु, पृ १४६ नो २ ।

उप्पल उत्पल, § ३४ ।

उप्पीळ उत्पीळ पृ १७८, छ ३ ।

उब्भेइय, पृ १६६, नो ३ ।

उम्मिरल उमीरित, पृ १८१, छ ६४ ।

उम्मुह, उम्मुह § ४६ ।

उरे, पृ १८२ छ ७६ ।

उरलविद, उरलपित पृ १४१, नो० ५ ।

उवभरण, उपकरण, § १० ।
 उवच्छिदिदो, पृ १३७, नो १० ।
 उवज्झास, उपाध्याय § १७, ४४
 उवट्टवेह, अमा प्र२२०, नो २ ।
 उवरास, उपराग, पृ १५७, नो १ ।
 उवरी, उपरि § १७ ।
 उवलेपण, उपलेपन, पृ १५६ नो १ ।
 उपसप्पिस्स, पृ १५१, नो ७ ।
 उवसपज्जह, अमा—इत्ताण, पृ २२१
 नो ३ ।
 उवहार, उपहार, पृ १५६, नो २ ।
 उवाइय, जैमाहा, पृ १५६, नो १० ।
 उवालाहिस्स, उपालक्ष्ये, पृ १२८, नो ३
 उव्वत्त, उद्वत्त, पृ १७८, छ ५६ ।
 उव्विगग, उव्विग, § ४२ ।
 उय, अमा, इय, § ७० ।
 उत्तास, माहा ऊसास, उच्छ्वास, § ४१
 उहम, उमय, पृ १५७, नो २ ।

क

कसव, उरसव, § ४१, ६३ ।
 कसास=उरसास

ए

एअरिस्स, § ४७ ।
 एआवत्थ, एतदवस्थाम्, पृ १७१ स
 ए (य) आरुव, अमा०, पृ २१८ नो २
 एह, एति, § १२
 एल, § ११५, ११२, जैमाहा, एग

एत्ताहे माहा, पृ १८४, छ ८० ।
 एत्थ, अत्र, § ७० ।
 एदि, एति, § १२, १३२, छ ६६ ।
 एदिहासिअ, ऐतिहासिक, § ६१ ।
 एन्ति § १३२ ।
 एरावण, § ६१ ।
 एरिस्स, ईदरा, § २४, ७० ।
 एवद्धे, माग०, पृ २५२, नो ६, एवद्ध
 जैमाहा ।

एव्व, एवम्, १६८ ।

एसो, एव =, § ११० ।

ओ

ओआस, अवकाश, पृ १७८, छ ३ ।
 ओइएण, अवतर्ण, ओदिएण, § १२५
 आरयय, पृ २३६, नो ४ ।
 ओदरिअ, अवतीर्य, § १२२, माग०
 ओदत्तिअ ।
 ओलंग, जैमाहा, अवलम, पृ १५१,
 नो ३ ।

ओविय, पृ २३६, नो ५ ।

ओसरिअ, पृ १६७ ब ।

ओसह, ओपथ, अमा ओसह, § २० ।

ओहरिअ, पृ १८०, छ ६१ ।

क

कअ, कत, § १२५ जैमाहा कयें, § ६०

खो० कद, किद ।

कअरगह, कवग्रह, पृ १८१, छ ६४ ।

कथन्त, कृतान्त, पृ १५२, नो ६ ।
 कञ्जली हर, कदली गृह, पृ १०६, नो १
 कथौइ कयावि, अमा, पृ २१८, नो १
 कइ, कवि, पृ १६१, छ ३ ।
 कइम, माहा, फतम, § ६६ ।
 कए, कृते पृ १७१, अ ।
 कभो, जैमाहा अमा, हुत, शौ० कदो
 पृ ३२८, नो ६ ।
 कक्कोलु=कडोट, § १६ ।
 कडमअ, जैमाहा, पृ १६२, नो १ ।
 कडिम, पृ १७५ अ, काचित ।
 कडुम, अमा, कडुप § १६ ।
 कज, § ५० १३७ ।
 कजइ अमा, § १३५ नो १ ।
 कडम, जैमाहा, पृ १६८, नो ५ ।
 कडकल, कटास, पृ १७३ ह ।
 कडुअ, कडुक, पृ १३३, नो २ ।
 कडिअ शौ० कविद, § ४२ ।
 कणअ कलक, पृ १५७, नो ३ ।
 कणकणिअ, पृ १७२ द ।
 कणइल, अमा, देशी कण से पृ १०५
 ६४८, § ३५ ।
 कणण, कण, § ४८ ।
 कणह, कण, § ४७ ।
 कणव भास, पृ १०१ ।
 कणु, भास पृ १०१ ।
 कद, दे० कय ।

कदम, कदर, § ६६, १११ ।
 कथइस्स, § १३४ । 'कथिस्स' भी होता
 है, माहा कथिस्स ।
 कथ, शौ०, कयम्, § १४ । माहा कथ
 कथिद, कथित, § ११ ।
 कथिदु § १३६ ।
 कथेदु, कथयतु, § ११, १४, ७५ ।
 कथेसु, § ११६ ।
 कन्त, √कम्, § १२५ ।
 कदलिखल, पृ १०५ ।
 कण, § ३७ ।
 कण्णडिय, जैमाहा पृ १६०, नो ६ ।
 कमल, पृ १२६, नो १ ।
 कमला=लक्ष्मी, पृ १७३ ह ।
 कम्मगर, जैमाहा, कर्मकर, पृ १६६,
 नो ३ ।
 कम्मणिगयो, जैमाहा, कर्माग्र =, § ६३ ।
 कम्मि, माहा, पृ १८२, छ ७६ ।
 करण, अण, कारण, पृ १०४ ।
 करणिज्ज, शौ करणीअ, § १३७ ।
 करणअ पृ १५०, नो १ ।
 करिअ-भास, पृ १०१ ।
 करिदु कर्तुम्, § ११२ ।
 करिता, कृत्वा, अमा, § १२२ ।
 करिस्स, करिष्यामि, § १३४ ।
 कराअदि, कियते, § १३५ ।
 करेदि, करोति, § १२८ ।

कोन्त, § १०२ ।

कोरमाण, अमा, पृ २१८, नो २ ।

करयु, § ११६ ।

कलम, पृ १५८, नो ६ ।

कोनेमि, माग, करोमि, पृ २४३, नो ३

कोलेवर, § १८ ।

कल्लकीलि, पृ २२५, नो ४ ।

कवल, § १८, पृ १६७ ब ।

कैवल, अप, कमल, § २५ ।

कवल्लिअ, पृ १७३ क ।

कवाड, कपाड, पृ १५७, नो ३ ।

कम्ब, काम्य, § ५० ।

कवण, कृष्ण, पृ १८१, ख ६३ ।

कह, कह, पृ १६०, ख २, § १४ ।

कहा, कथा, पृ १८६, ख ८४ ।

कहिं, पृ १२४, नो १ ।

कहिस्स, § १३४ ।

काभारयथ, कायस्थक, § ३८ ।

काठ (१) माहा, § १२१ ।

(२) अमा, § १३६ ।

काळण, माहा, § १२२ ।

काडु, शौ माग, कर्तुम्, §§ ६३, १२१, १३६ ।

कामाए=काम्यमा, § ४८ ।

कोरेदि, § १२८ ।

कोरेडु, वसुधत्त, § १३६ ।

कालके, माग, पृ २४२, नो २ ।

कालया, माग=कारणात्, पृ २४३, नो ४ ।

काह, § १३४ ।

किं चण, किं पुन १, § ३ ।

किहिणी, पृ १७२ द ।

किवा, अमा, इत्वा, पृ २२१, नो ६ ।

किणह, कीणाति, § १३१ ।

किद, कृत, § ११ ।

किलन्त, छान्त, § ५७ ।

किलिदुठ, लिदु, § १२५ ।

किलिणण, लिण, § ५७ ।

किलित्त, कल्ल, § ५२ ।

किलिस्सह, माहा, क्रियते, § १२५ ।

किविण, कपण, § ६० ।

किरय, पु० माग,=कीस, पृ १०० ।

किस्स=भास,=कीस, पृ १०१ ।

कीदिस, कीदय, § ४० ।

कीरह, § १३५ ।

कीस, पृ १२६, नो ५ ।

कुओ, जैमाहा, कृत, पृ २१०, नो १ ।

कुविल, शौ०, कुखि, माहा § ४०

कुच्छीओ, अमा, पञ्चमी, § ६३,

कुच्छिसि, सप्तमी, § ६३ ।

कुज्जा, अमा, § १३३ ।

कुट्टेदि, माग, पृ २४४, नो १ ।

कुडिल, कुटिल, § १६ ।

कुडम्ब, कुटम्ब, § १६ ।

कुण्ड, § १११, पृ १७५ अ ।
 कुण्डमाण, अमा, पृ २१७ नो २ ।
 कुण्डो, जैमाहा, कुण्ड, पृ १२७ भा ४ ।
 कुण्डि, कुण्डति, § १२५ ।
 कुम्भण्ड, पृ १४०, भा २ ।
 कुम्भिष्ठ, भाग, पृ २४२, नो १ ।
 कुला, कुला, पृ १७१ अ ।
 कुर्वर, अण, पृ १०४ ।
 कुर्वि, जैमाहा, कुर्वित, पृ १२५ नो २ ।
 कुर्विद, कुर्वित, § १२५ ।
 कुर्व्य, अमा, § १०३ ।
 कुर्व्यमाण, अमा, पृ २२० नो ६ ।
 कुर, § ७६ ।
 कुरिष्ठ, पृ १२२ नो ४ ।
 कुरिष्ठ=कुरिष्ठि, § २४, ७० । भाग
 कुरिष्ठो ।
 कुरिष्ठे, भाग, पृ २४२, नो २ ।
 कुरिष्ठि, अमा, पृ २१५, नो ३ ।
 कुरिष्ठि माहा=कुरिष्ठ+इल पृ १०५ ।
 कुरिष्ठ, भाग कुरिष्ठे पृ २१ ।
 कुरि, क =, § ११० ।
 कुरिष्ठ, कुरिष्ठि, पृ १७३ ग ।
 कुरिष्ठ, § ३५ ।
 कुरिष्ठो माहा कुरिष्ठ, § ६१ ।

ख

ख १ 'ख' शी । खद, § १२५, पृ
 १७२ अ ।

२ 'ख' शी, § १२५ शी कुरिष्ठ ।
 खद, शी कुरिष्ठ कुरिष्ठ पृ १७० अ ।
 खग, खग, § ३४ ।
 खगद खगते, § १२५ क ।
 खग, खग, § १२५ । अमा, जैमाहा,
 खग ।
 खतिष्ठ=खतिष्ठ § ४० ।
 खम्भ § १२५ अ ।
 खदिष्ठ, पृ १७६, ख १४ ।
 खाद, अर=खाद गदति, § १२७ ।
 खाम, खाम पृ १४५ नो २ ।
 खार, खार, पृ १७२ अ ।
 खिज्ज, खामत, § १२५ ।
 खिण, § १२५ । ख खिण ।
 खित, § ४०, १२५ ।
 खिण्ड, खिण्डते, § १२५ ।
 खिण्डाम् एव, अमा पृ २२०, नो २ ।
 खिण्डि § १२६ ।
 खिण्ड § ४०, हि० धीन ।
 ख, खल, § ७४ ।
 खज्ज, खज्ज, § १२६, २४ ।
 ✓खद ✓खल, § १२६, २२ ।

ग

गद्य शी गद, § १११, १२५ ।
 गद्यण, गद्य, पृ १२६, नो ३ ।
 गद्यमि=गते, § ६२ ।
 गद्यवद्य, गद्यवद्य, जैमाहा, गद्यवद्य,

पृ २०६, छ १४ ।
 गइन्द, गजेन्द्र § ८१ ।
 गच्छ, § ११६, पृ २०७, छ २३ ।
 गच्छादि, अमा, § ११६ ।
 गच्छिन्न-भास, गत्वा, पृ १०३ ।
 गच्छित्तए, अमा, § १२६ ।
 गच्छि, प्रिय, § ४५ ।
 गयडो, पृ १८८, नो ३ ।
 गयददि-भास, गृह्याति, § ७० प ।
 गन्ता, अमा § १२२
 गन्तु, § § १२१, १२६ । गच्छिडु
 गमिडु रूप भी होते हैं
 गमिस्तदि § १२४ ।
 गमीअदि, शौ कर्मवाच्य, § ११६,
 माहा गम्मह § § ११६, १२५ ।
 गरल, पृ १७२ ब ।
 गहय, § ७१
 गहनक, जैमाहा, पृ २०६, छ १३ ।
 गहह शौ गहल, माहा गलुड, माग
 § २२ ।
 गजवक, गत्वर्क, § ५० ।
 गविडु § १२५ गवेसद
 गहवद, गृहपति, पृ १५२ नो ४ ।
 गहिअ शौ गहिद, १२५ ।
 गहिड, माहा तुमुअन्त, § १२६ नोट
 गाइ, गायति § १२७ ।
 गाम, ग्राम, § ४५ तु § २५ अन्त ।

गामिल, अमा, ग्रामोण पृ १०५
 गारविअ, जैमाहा, पृ २०५, छ ५,
 माहा अमा जैमाहा गारव=माहा शौ
 गोरव=गौरव से
 गिज्जइ, गीयते, § १३५ पृ, १६६, नो ६
 गिरिहड, अमा § १२६ नोट
 गिद § ६० ।
 गिम्ह प्रीष्म § ४७
 गिह, अमा, गृह, पृ २२८, नो २
 गीअ, गीत § १२५
 गुय, पृ १७३ फ
 गुम्म, गुलम, § ४८
 गेज्ज ग्राम § § ७०, १३७
 गेयहह, शौ गेयददि, § § ५२, १२१
 गेयिहअ, कृदन्त, पृ १४३, नो ३
 गेयिहड शौ गेयिहड तुमुअन्त § १२६,
 गेयिहदम्ब, १३७
 गेह, जैमाहा, गृह, पृ २२८, नो २
 गोइल, अमा, =गोमत्, पृ १०५ ।
 गोच्छ, माहा, § ७१
 गोटी, जैमाहा, गोटी, पृ, २०७, छ २३

घ

घटन्त, पृ १७६, छ ६
 घडवेहि, पृ १५३, नो २
 घरा, माहा अमा, पथमी गृहात्, § ६२
 परिणी, गृहिणी, पृ १४१, नो ७ ।

पेत्तु माहा, ५५ १६, १३६

पेत्तुण माहा, पृ १८७, ख ६४ । वृ०
गेरिहम् ।

पेप्पह, ५ १३५

च

चअह, माहा, त्यजति, ५ १२५

चउरो, ५ ११२

चक्क, चक, ५ ४५, अप चक्क

चकमह जैमाहा, पृ १८६, नो १

चकवटि पृ १४१, नो ७

चक्कसा, चक्कुषा, १०४

चक्क, पृ १७२ ख

चक्कर चक्कर पृ १६१, नो १० ।

चक्काविम्भ, पृ १६०, नो ८

चत्त, त्यक्त, ५ ११६

चत्तारि, चत्वारि, ११२ ।

चडुक्क, शौ, चडक्क, माहा, ५ ३८

चडुस्समुह ५ ५१

चम्मारम्भ, ५ ८२

चाई, जैमाहा त्यागी, पृ २०५ ख ५

चाणक्क ५ ४३

चोउएक, ५ २५

चाव, चाप, पृ १६६ इ

चिम्भ पृ १७८, ख ३, पृ १८२, ख ७५

चिम्भम्भ, पृ १६६, नो ५

चिट्ठह माहा, शौ चिट्ठदि, माग,

चिट्ठिदि, ५ ७

चिट्ठित्तए, अमा, ५ १३६

चिण्ह, चिनोति, ५ १३१

चिणिज्जह, कर्मवाच्य, ५ १३५

चिणेदि, शौ, ५५ १२८, १३१

चिएह, चिह, ५ ५२

चित्त, (१) चित्र', ५ ४५

(२) 'चित्त' पृ १७३ इ

चित्तम्भर, चित्रकार, पृ १७३ इ

चित्तकलम्भ, चित्रफलक ५ ५

चि-ध=चिएह, ५ ५२

चिम्मह, कर्मवाच्य 'चि', ५ १३५

चित्ताम्भदि, माग, पृ २४४, नो ४

चिम्बह=चिम्मह

चीअदि कर्मवाच्य 'चि', ५ १३५

चुएण, पृ १५८, नो ३, पृ २१४, नो १

चुम्बिम्भ, चुम्बित, पृ १६७ अ

चूअ, शौ चूद, पृ १५७, नो २ ।

चेह्य, अमा, पृ २२७, नो १

चोरिअ=चोर्य, ५ ५८

ख

ख, माहा अमा, ५५ ६, ११२

खअरण, ५ ३४

खट्ठ खट्ठ ५ ६

खण खण, पृ १८५ ख ८१

खण, खण पृ १३८ नो ४

खम्मुह, वण्णुख, ५ ४६

खाआ, पृ १४८ नो ६ पृ १५८, नो २

दाये ! पृ १८२, छ ८१

दाव, अमा, शाव पाति छाप=सायद

दाहा, पृ १५८, नो २

दियजइ, पृ १७० अ

दियण, § १२५, १३०

दिन्दइ, शौ दिन्ददि १३०

हुहइ, जैमाहा, पृ १६१ नो ६

हुहा, माहा, हुपा, § ३६

छेअ, पृ १८०, छ ६२

छेएता, अमा, पृ १२०, नो, ७

छेपु, § १३६

छेत्तण, माहा, जैमाहा, पृ २२० नो ७

ज

जइ शौ में जदि भी होता है, § ११

जउणा, अप,=यमुना, पृ १०४

जक्ख, यच्च पृ १६६ नो १०

जखाण, पृ १७२ स

जएण, यहा, § ३६

जधा, माहा जहा, माग यधा, § ११, १४

जप्पिअ जल्पित, § ३७

जप्पिअ जैमाहा, पृ १६८, नो ७

जप्पिमो, § ६६

जम्मु § ३५

जम्मइ, § १३३ क

जम्मन्तर, जन्मान्तर § ८०

जलइ, ज्वलति पृ १७२ ब

जलइ, जलाई पृ १७२ ब

जलण, पृ १७६ ब

जख पृ १७६ ब

जह=जधा, § १४, ६८

जाम्म, शौ जाद § १२५

जाय } , जैमाहा, पृ १८६, नो २

जाय

जाअदि, जायते, § १२५

जाणए, आरमने, § ११५

जाद, शौ पृ १३७ नो २

जामाडुअ जामाता, § ६०

जालाउल, पृ २०७, छ १७

जिअ, शौ जिद, § १२५। 'जित' भी होता है।

जिणइ माहा, § १२५, १३१

जिएण, जीर्य, पृ १५०, नो १

जिन्मा, अमा, जिहा, § ५४

जिण्वइ § १३५

जीहा, § ५४

जुअइ, युवती, पृ १६६ इ

जुअराओ, युवराज, § ६६ नोट

जुअल, युगल, § ६६। अमा, जुवल, पृ २२०, नो ७

जुगुच्छा, जुगुप्सा, § ३६

जुग, युग, § ३६

जुजदि, जुज्यते, § ११६, १२६, १३५

जुज्ज, युद्ध, पृ १६७, नो ३

जुअइ, § १२५

जुत, § ३४, १२५

जूदियरो, बूतकर, पृ १४६, नो ४

जुल, जेदुम्, § १३६।

जुव, जेव्य, § ६८

जुव, यन्, § ११०

जोईसरो पृ १४१, नो ३

जोदहि, पृ १५०, नो २

जोगि=योगी, § १

जोग, योग्य, § ४३

जोरहा, ज्योत्स्ना, पृ १७२ ब। चतुर्थी

'जोरहा' १ ६४

जोवण, यौवन § १५, ६१, ६८

क

कणकणत, पृ १७२ द

काइ § १२७

काण, कान पृ १४४, नो ७

क्रीण=कीण, § ४०

ठ

ठाइ, § १२७

ठाडु, स्थातुम्, § १३६

ठावेत्ता, धर्मा, पृ २२१, नो १

ठाहिहि, § १३४

ठिअ, यौ ठिद, § १२ ३८। धिअ'

भी होता है

ठिइ, यौ ठिदि 'स्थिति', § ३८।

'धिइ' भी होता है।

ड

डक, दक, § १२२

डकममाण, जैमाहा, पृ १६८, नो ६

डसइ, § १२२

डाय, पृ १६६ नो ४

ड

डकदि पृ २२३, नो ५

डह, § ७

ण

णअ नत § १२५ शौ णद

णअण, नयन, § ७, २०।

णअर, नगर § ६ नयर जैमाहा, पृ

१८८, नो १

णइअ § १२२।

णइस्सदि, नेव्यति § १३४

ण, १ 'एनम्' § ११०

२ 'नूनम्' पृ १२६ नो ८

णकख, नख § १५।

णचण पृ १६७, नो ४ नृस्यव

णज्जइ, १२५ नो

णहअ, नाटक, § ४३

णदठ १ नष्ट, १२५

२ 'वस्न' पृ १८६ नो ४

णत्थि, नास्ति § ८३

णमय पृ, २०५ ख ७

णमज्ज, पृ १७६ ख १४

णरिद, नरे-अ, § ८१

णवर, पृ १८७ ख ८६

णवरि, पृ १८२, ख ८२

यवादि, अप०, नमति, § २५

यह=ययत् § १३

याअ, शात, § १२५

याअगु अप०, नायक, § १०

याव, शातम्, § १२६ । भाकण,
पृ २१०, नो १

याघ, माहा०=याह, § १४

याह, नाहम्, § ८३

यिअ १ 'निज', अमा नियय, पृ
१४३, नो २

२ 'नोत'=यीअ, § १२५ अमा निय

यिअत=यिद्युत

यिअवइस्सदि, भविष्यत् यिजन्त,
§ १३४

यिअताइडु यिजन्त तुमुन्नन्त, § १३६

यिअसिहिद, भविष्यत् यिजन्त, पृ
१८६, छ ८४

यिअल, पृ २५०

यिअल, पृ २५०

✓ यिअकम्, § २८

यिअिकव, निष्कृप पृ १६८ स

यिअिलत, पृ १५७, नो २

यिअिलविअ, निक्षिप्य, पृ १२४, नो २

यिअिलविडु, § ४०

यिअिल, निखल, § ३८, माय यिअिल

यिअ, निन्य, पृ २०६ छ १३

यिअिद, निर्जित पृ १२८, नो ४

यिअमाइदा, पृ १५०, नो ३ ।

यिअमाअन्ति, पृ १५८, नो ७ ।

यिअठवण, पृ २०३, छ ११

यिअण, निअ, § ४६

यिअिट्ठ, पृ १४१, नो ६

यिअअ, निर्दय, पृ १८१, छ ६३

यिअअति, निअति, पृ १५८, नो ८

यिअालु पृ १०४

यिअ=सिअिट्ठ, § ४७

यिअफल, § ३८

यिअन्ध, निअन्ध, § ४३

यिअिअण, निर्भिअ, पृ १४२, नो ८

यिअल, ललाट, पृ १८१, छ ६४

यिअवइस्स, पृ १२३, नो ११

यिअवन्त, पृ १२३, नो २

यिअवण, पृ १३०, नो ३

यिअव, पृ १५७, नो १

यिअुत्त, § ६०, अप यिअुत्त

यिअेधाविअ पृ १३२, नो ३

यिअवविअद, पृ १८२, छ ७६

यिअवेदि § १२०

यिअिअ, निर्भिअ, पृ १४३, नो ७

यिअिअण, निर्भिअण, पृ १३२, नो २

यिअुअो, पृ १६८ द

यिअुद, निअुद, पृ १८० छ ६२

यिअभा, निअर्ग, पृ १७२ स

यिअमेति, अमा

शिषिभर, निशिभर, पृ १८१, छ ६४
 शिदभ, शौ शिद, पृ १८६, छ ८२
 शिदयिठ, जैमाहा, पृ १८१, नो० ३
 शिदध, माहा, § १८१
 शिहाभ, निपाठ, पृ १८६, छ ८२
 शिदुद, माहा निदुभ, § ६०
 शीभ, शौ शीद, § १२२ । तु शिभ
 शीरामयण, पृ १८३ । छ ७८
 शीसास नि रवास, पृ १७१ अ ।
 शीससिकण, पृ १८८, नो ७
 शीसेस, नि शेप, पृ २०४, छ
 एण, § ५, २०
 ये, § ११०

शेष } = नैव, पृ २०६, छ १३
 शेष }

शेड, नेदुम्, § १३६
 शेडर, नूपुर पृ १७० अ
 शेवरिछ, पृ १०२
 शेवद्वि, § ८३
 शेण, § ११०
 शेव=नु+एतद § ८३, पृ १४२, नो २
 शेदि, नयति § १२७
 शेह=सिषेह, § ४७
 शेदिह, § १३४ ।
 शोमालिभा, § ७२
 शहाभ, स्नात § १२२
 शहाद, स्नाति, § १२२

शहाण, स्नान, § १२०, ४७ ।

त

तइ, सप्तमी, स्वमि § १०७ ।

तइ अय, § १०७ ।

तए, स्वमा § १०६

तमो, १=शौ= तदो

२ अय', अमा, § ११२ ।

त, १ 'तम् ताम्, तत् § १०८

२ त्वम्, माहा, § १०७

तसि, सप्तमी, अमा, § १०८

तक्किस्सदि मबिभ्यत्, § १३४

तक्कमि, तर्कयामि, § ४२ प तक्

हि० ताक ताकना ।

तक्कण तरक्कण, पृ १३७, नो ६

तच्च, पृ २२७, नो ३

तत्, पृ १८१, नो ५

तेणुअ, पृ १८७, छ ८६ ।

तसिहभाए पद्यमी, § ६४

तत्, १ तत्', § १२२

२=तरव, पृ १६०, छ २

ततो, स्वत, १०७ ।

तत्थ तत्र, § ४२ ।

तदो, तत्, § ११, १०८

तथा, तथा, § १४ ।

तम्बोल, ताम्बूल, § ७१

तम्मि, तम्मिन् § १०८ ।

तलवर, पृ २१७, नो ५

तवण, तपन, पृ १७२ ब
 तविद=तत्त, तप्त § १२५
 तस्व, तस्य, § ४५
 तर्हि=तस्मिन्, § २७
 ता, § १०६, पृ १२५, नो १
 ताए, § १०८
 ताओ, पयमी, अमा, § १०६
 ताव, ताप, § १७
 ताव, माहा=तस्व, § १०६
 ति, इति, § ७४
 तिवल्लो, त्रिहल, अमा, पृ २२८, नो ३
 तिणिण, त्रीणि, § ११२
 तिरिच्छ, तिर्यक्, § ७४
 तिरसा माहा, § १०६
 तीरद, § १३५; तीरए, § ११५
 तीस, पृ २२१, नो ५
 तीसे, अमा, § १०६
 तीछ, त्रिष्टु, § ११२
 तुह, स्वयि, § १०७
 तुए, § १०६
 तुज्ज, § १०७, पृ १८२, छ ७६,
 (=तुभ्यम् के स्थान में तुष्ठा)
 तुह, § १२५
 तुहद, § १२६
 तुहठ, तुष्ट, § १२५
 तुयणाओ, तुयणागो, जैमाहा, पृ १८८
 नो २

तुओ, अमा, § १०७
 तुमम्मि, माहा, § १०६, १०७
 तुमे, अमा, § १०७
 तुम्म, माहा, § १०७
 तुम्हकेर, § ६७
 तुम्हारिख § ७४
 तुम्हे, § १०६
 तुरक, पृ २३२, नो ६
 तुल्ल, तुल्य, पृ १७१ अ
 तुवर, § ५७
 तुवत्तो, § १०७
 तुस्सदि, तुप्पति, § १२५
 तुह § १०६
 तुह, § १०७
 तुहँ, अप, § १०७
 तुह, जैमाहा, पृ १६६ नो ७
 तुलिङ्ग, पृ १०५
 तुओ, अमा, § १०६
 तेयसा, अमा, तेजसा, § १०४
 तेल्ल, तैल, § १२, ६१, ६८
 तेवदिठ, पृ २१७, नो ४। 'तेसदिठ'
 भी होता है
 ति=ति, § ७४
 तय, स्य, § १३२
 थ
 थण खन, § ३८
 थल, स्थल, पृ १२७, नो ३

यवह, स्वयति, पृ० १२६, नो १
 यिच्च, स्थिन, =ठिच्च, § ३८ शौ विद
 यिह शौ विदि= ठिह
 मुष्कह, स्तूपते § १३५ ।
 येओ=येवो, जैमाहा, पृ १२६, नो ६
 पृ १०५, छ ७ ।
 येरो § ८२
 योर § ७१

६

दशच्च, § १२७ ।
 दनहस्त, § १२७
 दसदि, § १२५
 दसणाच्च, दसणिञ्ज दशनीय, § १३७
 दधिद, १ धरित',
 २ 'दष्ट', १२५
 दसतु तुमुन्नन्ता, § १३६
 दक्षिण, दक्षिण § ४०
 दक्षिणा दक्षिणा, पृ १४१ नो ३
 दच्छ माहा अमा, § १३४ दच्छामि
 पृ १८३ छ ७७ । दक्षिमि, दक्षि
 मि, पृ १८६, छ ८५
 ददठम्ब, ददठम्ब, पृ १८५ छ ८१
 ददठ, ददठम्, § १३६, पृ १८४ छ ८०
 दद, दद § ६०
 दद, ददध, § १२५
 दपुञ्ज=दपिञ्ज, पृ १०५
 दर, पृ १८० छ ६३

दलवद=दलह, अमा, पृ २२८, नो ५
 दतिह दरिह, § २६
 दवाविच्च, पृ १२२ नो ७ ।
 दहि, दधि, पृ १२८ नो ६
 दहिदु, § १२६
 दाइस्म, § १३४
 दाउ दाउम्, § १३६
 दाढा, § ६५, १८१, छ ६३
 दाणि, ददामि, § ७४
 दादम्ब, § १३७ ।
 दावह पृ १६८ छ
 दामगुण, पृ १२६, नो ४
 दारओ, पृ १२२, नो १
 दाऊ, माग, दार, पृ २५३, नो ५
 दाव=तावत्, § ३
 दावमि दावामि, पृ १७३ द
 दाविञ्जउ, पृ १७६ ब ।
 दाह, § १३४
 दाहिण=दक्षिण, पृ १७५ अ
 दिअ, द्विज § ४२, पृ २०५, छ ११
 दिअर=देवर § ७९
 दिअह, दिवस, § ६
 दिक्ता, दीक्षा पृ १४१, नो २
 दिञ्जदि, दीयते, पृ § ११६
 दिट्ठ, दष्ट § १२५
 दिट्ठि, दष्टि, § ३८, ६०
 दिट्ठिआ, दिष्ट्या, § ६५

दिह दह, § ९०, =दह
 दिण, दिन, पृ १४८, नो ५
 दिण्ण, § १२५, पृ १४८, नो ५, पृ

१६६ ह

दिमुह, दिह्मुह, § १५, ४६

दिहि, माहा, धृति § १६

दीअणु पृ १४१, नो ४

दीन, दीप, § १७

दीसह पृ १७६ छ १४ । सी दीसदि,
 § १२५

दीहाउ, दीर्घायु, § १०३

दुआर, § ५७

दुवल § ५१

दुगउ, अप, दुर्गम पृ १०४

दुगद, दुर्गत, पृ १५७, नो ४

दुवरिद, दुवरित, § २८

दुदह-मण्डो, जैमाहा, पृ १८८, नो ३

दुयिणमित्त, दुर्निमित्त, पृ १२८, नो ५

दुत्तर, दुस्तर, § २८

दुद्ध, दुग्ध, § २४

दुग्मह, § १२४

दुग्गेज्ज दुग्गेय पृ १५७, नो ३

दुरिअ, दुरित, पृ २०४, छ १

दुवहिता, अमा, पृ २१६, ना ४

दुल्लह, दुर्लभ, § ५०, दुल्लह, § ५६,
 भी होता है ।

दुवार, § ५७

दुवारिओ, दीवारिह, पृ १६८, नो ८

दुवालस, अमा, पृ २१८, नो ६

दुवे, § ११२

दुम्बिणीव, दुर्दिनीव, § ५७५

दुस्सर, § ५१

दुहा काउ, पृ १६२, श्री १

दुम, दुम, पृ १६५, श्री १

दुग्गमाणे, अमा, पृ २१६, श्री १

दुल, पृ २१२, श्री ४

दुग्गह=दुग्गह, § ११, ६१, ४६

दे=लो, § १

देउल, देवकुल, § ५०

देउमा, अण, § ११३

देदि, दी, § १०४, १०५

देवमग्गदण्ण, § १३ (२)

देव द्वा १४, अण, पृ २१०, श्री ४

देव, § ६१

देमदण्ण, पृ २१६, श्री ६

देउम, देउ, पृ १०४

देहि, § १३०

दी, § ११० । 'दी' (ग) भी होता है

दण्ण देवह (-), पृ दीहि, वल्ल

दण्ण (-)

दण्ण, दीर्घ, पृ १६४, वल्ल

दण्ण, दीव, पृ १०५

दीहल, दीहल, § २२

य

यय, जैमाहा, अमा पृ १६२, नो ४
 ययात, अमा पृ १०४ ।
 ययम्, ययम्, पृ ४८ ।
 ययिमय, पृ १२२, नो २ ।
 ययिष, पृ १२२, नो १
 यय=ययम् पृ ११० ।
 ययिष्ठ, पृ १२६
 यीदा, शी, पृ ७४, जैमाहा यय्या ।

=युदा

युय, पृ १८० छ २०
 युय, धयम्, पृ १६२, छ ४२
 युय, पृ १२१
 युयिज्ज, पृ १२२ ।
 युयह, पृ १२२ । युयह पृ १२८, भी
 होता है ।

युयह, पृ १२४

युया माहा युया, जैमाहा युया, पृ १२
 पृ १२८, नो १० । शी ये 'हुदिदा'
 भी होता है ।

युयाह, पृ १६२, छ १२ ।

युय, युय, पृ २२२, नो ६ ।

युयमि, पृ १२६, अमा, मोवई, यवेह

न

नयल, अमा, नय, पृ १०२

निय, अप=नित, पृ १०४

नियमि, अमा, नितकतिमत्, पृ १०४

य

ययह, माहा, अयह जैमाहा, ययह,
 पृ २०७, छ १७ ।

ययह, पृ १२२ ययह जैमाहा, पृ १२१ नो १

ययमि, ययमि, पृ १६२, छ १०७

ययह यदाति, १६७ नो ६; पृ २०७,
 छ २०

ययमिह, पृ २

यह, १ 'यति' पृ २१४, नो २=यति
 २ 'यति' पृ १२२, छ ७८

ययह पृ १२२

ययदि ययति, माहा पृ २४६, नो १

ययह पृ १२२

ययत, १ 'ययुह', पृ १२२, पृ १२६,
 नो ११

२ ययत, पृ १२२, नो ४

ययत, पृ १२२

ययम, यय, पृ १६, पृ ४७

ययह १ 'ययुह' पृ २

२ जैमाहा=शी योह, पृ २०६, छ ११

ययह, पृ १२८, नो १

यय, पृ ४२

ययलन्ती पृ २२६, छ २१

ययिष्ठ, अमा, पृ ११८, नो १

ययार, जैमाहा, पृ १२२, नो ७

ययल, अमा, पृ २२२, नो २

ययसे-तो, जैमाहा, पृ १८८, नो २

पञ्चम, पृ १३८, नो ५
 पञ्चम, पृ १५०, नो ४
 पञ्चाचक्रिस्तु पृ १३६, नो ६
 पञ्चाणीद पृ १२५
 पञ्चसुय, अमा, पृ २३७, नो २
 पञ्चुष्प, अमा, पृ २२६, नो ५
 पञ्चूसे, पृ १३३, नो ५
 पञ्चा, पृ ३८
 पञ्जति, पृ २१३, नो २१३, नो ७।
 'पञ्जतिमा' भी होता है, पृ १७१ स
 पञ्जलह, पृ १६२, छ १३।
 पञ्जुण, पृ ४६
 पञ्जुस्तुम, पृ ४१, पृ २४६, नो १
 पञ्जरावेदि, पृ ४०, पृ १४२, नो ७
 पङ्, पृ १८८, नो ३
 पङ्क, पृ १
 पङ्क, पृ १५२, नो ३
 पङ्क, पृ १५
 पङ्का माहा शौ, पृ १६; तु० पृ २०
 अमा जैमाहा पङ्काग। जैमाहा में
 पङ्का भी होता है। पिछल पृ २१८
 पङ्क, प्रति पृ २०
 पङ्क शौ पङ्क, पृ २०
 पङ्ककन्ते, अमा, पृ २२१, नो ६
 पङ्कजागरमाणे, अमा पृ २१८ नो १
 पङ्कठाविद, पृ १४१, नो १
 पङ्कदिठम, पृ १७६ ब

पङ्कवज्जदि, पृ १२५
 पङ्कवण, पृ १२५, पृ १८६, छ ८३
 पङ्कवेधिम, पृ १५२ नो ४
 पङ्कहा शौ पङ्कहाअदि, पृ १२७
 पङ्कहार, जैमाहा, पृ २०४, छ २
 पङ्कण, पृ १६
 पङ्कम, पृ २०
 पङ्कित, पृ १६० छ २
 पङ्कमादि, पृ ५८
 पङ्कम, पृ १३८ नो २
 पङ्क, पृ १६४, छ ७६। पृ २०६,
 छ १५
 पङ्कमामि पृ १४२, नो ६
 पङ्कमह, पृ १७६ ब
 पङ्कस शौ पङ्कस, पृ ६
 पङ्कत, अमा, पृ २१८, नो ३
 पङ्कण, पृ ४७
 पङ्कतरिम पृ १३६ नो ८
 पङ्क, पृ ४५, १२५
 पङ्कत, पृ २००, नो ३, पृ २१३, नो १
 पङ्कथा, पृ १२७, नो २
 पङ्कथ, पृ १३८, नो ५
 पङ्कथिम, पृ १; शौ पङ्कथिद, पृ १२५ नो ८
 पङ्कथिद पृ २५०
 पङ्कति=पङ्क, पृ ३५, पृ १५८ नो ५
 पङ्कथीमामि, पृ १३३, नो ७
 पङ्कमह पृ १३७ नो ३

- पमाद, पृ १४६, नो २, ३
 पमाद पृ १४२ नो १
 पम्हल, अमा, पृ २३३ नो ६
 परमत्यदो, पृ १३६, नो ११
 परसिध, परसिमन्तु १११
 परदुग्ध, पृ २३३, नो ६
 परियाग, अमा, पृ २२० नो ७
 परिकम्म पृ १३४ नो ४
 परिगह, पृ १३६ नो ११
 परिचदम्भ, पृ १२७ नो ६ ।
 परिषत्त, पृ १८०, छ २० ।
 परिणादम्भ, पृ १४०, नो ४ । परियो
 दम्भ, पृ १४१ नो ८
 परिणीद, ५, १२५
 परिलुप्पमाण, जैमाहा, पृ २०० नो १
 परिष्वाजम्भ, ५ ५० पृ १७० ब
 परिसा अमा, पृ २१६ नो २
 परित्त्वम्भदि, ५ ४६ ।
 परिहरिष्म, पृ १२८-६ नो ११
 पदपण, पृ १८४, छ ७६
 परोक्क, पृ १४१, नो ११
 पलत्त, पृ १८४ छ ७६
 पलाभ, माहा, जैमाहा, ५ १२५ ।
 माहा पलाभम्भ, शौ पलाद जैमाहा
 म पलाण' भी होता है ।
 पलिभोवम, अमा, पृ २२१, नो ७
 पलोभेठ पृ १८६ नो ३ ।
- पलोहिद पृ १५८ नो ६
 पल्लव, ५ ५०
 पल्लो पृ २०७, छ १७
 पल्लवपु ५ ५२ । पृ १८६, छ ८५
 पल्लवयणिज्ज, अमा, पृ २३४, नो ६
 पवग, ५ ३७
 पवध ५ १११ ।
 पवदह, ५ १२५
 पवपन्त, पृ १६५ छ ६४
 पवहणादि, माग, ५ ६२
 पवाण, अम, पृ १०४
 पविट्ठ, पृ १३४, नो १
 पवुत्त, ५ १२५
 पम्भम्भ, पृ १७६, छ १४
 पम्भम्भ जैमाहा, पृ २००, नो ४
 पम्भम्भ अमा, पृ २१६, नो ६
 पसम्मह, पृ १७६, छ ६ । [पयल्लशि,
 माग, पृ २२६, छ २१]
 पसादीकिद, पृ १२१, नो २
 पसीद, पृ १२७, नो १ [पशित्तु,
 माग, पृ १]
 पद, पृ १७३ छ
 पहरन्त, पृ १२८, नो ४
 पहाद=पमाद, पृ १३४, नो ३
 पहाव पृ १४१, नो ११
 पदुह, शौ पदुदि, ५ १२ । अमा०
 पदुदि और पमिह

पहुताण, पृ १३७ नो २

पाथ, पृ (१)

पायच्छिप्त, पृ २२७, नो ७

पाइक्क, § ८२

पाउअ, शौ पाउद, § १२, पृ १९०, ख २

पाउ, शौ पाहु § १३६

पाउणिज्ज, पृ १६०, नो ४

पाउणिता, अमा, पृ २२०, नो ७

पाउअविता, अमा, पृ २२६, नो ४

पाउस, जैमाहा, पृ २११, नो ६

पाग, अमा, पृ २३४, नो २

पाउचलै, माग, पृ १४२, नो २

पादव, पृ १३२, नो ३

पारावण, पृ २३३, नो ६

पारिमाय, जैमाहा, पृ १६७, नो १

पारिदोसिअ, § १११ माग, पालि
दोशिअ ।

पावइ, पावेदि § १२५

पास, § ४६

पासाद, पृ १५८, नो ५

पाहुणाय, जैमाहा, पृ १६१, नो ४

पि=अपि, § ७४

पिम, § ६

पिअअण पृ १७५ अ

पित्तिसिअ, § ७४

पिक्क ६६=पक्क

पिदेइ, पृ १६६, ख १७१

पिणिद, पृ २३५, नो १२

पिदा, शौ, माहा पिआ, § ६७

पिम, अप, पृ १०४

पिमार, अप, पृ १०४

पिवइ=पिवदि, § १२५

पीडमइ, पृ २३६, नो ७

पीणणिज्ज, अमा, पृ २३४, नो ६

पीसेइ, पीसेदि § ६५

पुच्छइ, पुच्छदि, § ६०

पुदठ, § १२५ अमा § १२५

पुण, § ४८

पुत्त, § २, ८६

पुत्तकिदओ, पृ १३७, नो ६

पुत्तलिअ, पृ १४२, नो ७

पुष्क, § ३८

पुत्तय, पृ २३७, नो १

पुरिस, § ७१

पुरिसहार, अमा, पृ १२६, नो १

पुक्कय, § १०४

पुलिअ, माग, § ६२

पुलोएदि, § ६६

पुलोअन्तो, § १-२

पुलोइत्त, § १३४

पुअरत्त, अमा, पृ २१८, नो २

पुअाणुपुअि, अमा, पृ २१६, नो १

पुअिरत्त, अमा, पृ १०५

पुष्टिदे, माग, = पुष्टिदो, पृ २४२-३,
नो ५

पुढवी, शौ पुढवी, पृ १८३, छ ७८

पेच्छ, § ४०

पेच्छद, पृ १७७, छ ५७

पेच्छए, § ११५

पेच्छस्स, § ११८

पेक्खवि, §§ ४०, ८१

पेक्खित्तस, § १३४, अप, पेक्खिहिमि

पेम्म, §§ १५, ६८, ६८, पृ १८७,

छ ८६

पेरन्त, § ७६

पेसिद, पृ १२५, नो ७

पेसेह, पृ १६७, नो २

पेस्सामि, माग, पृ २५२

पोक्खर § ३८, ७१

पोद्ध, पृ १६६, छ १७१

पोप्फली, § ७४

पोम्म, §§ ३६, ८२ तु० पउम

पोसह, अमा, § ७४, पृ २१८, नो १

पाली 'उपोसव ।

फ

फस, §§ ३८, ४६ ६४

फग्गुण, § ३७

फदिह, फलिह, §§ १६ ३८, पृ १५७

नो २

फणस, फणस, § ६

फरिसग, अमा, पृ २३७, नो ७

फास, अमा, = फस, § ६३

पुरन्तअ, पृ १७३ (ग)

फुसह, अमा, § ३८

ब

बइल्ल, पृ २५३, नो ५

बज्जह, § १३५

बडिअ, माग, पृ २४३ नो ३

बद § १२५

बन्धइ § १२५

बप्फ, पृ १२६, नो १

बग्गण, § ५२

बलक्कार, § ३४

बलहक, पृ २५३, नो १

बला पृ १५७, नो ६

बलिअ, पृ १६८ स

बहिणिअ, पृ १५०, नो ७

बहिणी, § १६

बहुफल, § ५

बारस, पृ १६६, नो ३ । तु० § २

बाह, पृ १२६, नो २

बाहिरिल्ल पृ १०५

बिहेह, §§ १२५, १३२

बीअ, बीअ, अमा, जैमाहा, पृ २०

॥ १६

बुज्जह, § १२५

भूया, अमा, § १३३

बोल, पृ १८१, नो ८

बोलन्ति, पृ १७७, ॥ ५७

बोलीण, पृ १८६, छ ८३

म

भगव, § १०३

भइ, पृ २२५, नो ४

भउहा, अप,=भमुहा, पृ १०४

भवण, अप, पृ १०४

भक्त्वन्ति, पृ १५८, नो ६

भगा, पृ १६८, नो ४

भजजह, § १३५

भजजन्त, पृ १८०, छ ६२

भज्जा, पृ २०४, छ ३

भज्जह, § १३०

भइ, § ६७

भट्टिदारअ, § ६०

भट्ठ, § १२५

भणहँ, अप, पृ १०४

भणादि, § १३२ । 'भणेदि' भी होता है । §§ १२८, १३२ । कर्मवाच्य

भणीअदि, § १३५ नो०

भणित्ठँ, अप, पृ १०४

भणदार, अप, पृ १०४

भत्त, पृ २५१, नो १

भत्ता, § ६७

भइ, § ४५

भमर, पृ १६७ अ

भमाइद, पृ १५६, नो ४

भमित्ठँ, अप पृ १०४

भमिर, अमा, पृ १०५

भरह, § १६

भव, § १०३

भविता, भविताण, § १२२

भविस्स, § १३४

भवीस, अप, पृ १०४

भवेअ, § १२६

भाअ, पृ १५६, नो २

भाअदि, §§ १२५, १३२

भाइ, पृ १७३ म । यौ भादि, § १२७

भाइल्लण, अमा पृ १०५

भाइयेज्ज, पृ २१७, नो २

भाडु-सअ, § ६०

भित्ति, पृ १८१, छ ६४, अमा

भिशुद्धि

भिज्जह, § १३५, पृ १७८, छ ५६

भियण, § १२५

भिदह, §§ १२५, १३०

भाअ, भीद, § १२५

मुज्जह, § १३५ । यौ मुज्जीअदि

मुज्जदि §§ १२५, १३०

भुत्त, § १२५

भुमआ, पृ १८१, छ ६४

भूअ, भूद, § १२५

भेषु § १३६

भोजन, § ३

भोजन, § १३६

भोदि, § ५, ११, ७५, १२७। माहा
होद

म

मभ, पृ १३२, नो ३, पृ १७३ ग,
'मिथ' भी होता है। पृ १, § १२५,
पृ १६३, छ १६

मभगल, पृ १२७ नो ५

मभयिज्ज, अमा पृ १

मभरहर, पृ १८६, छ ८३

मभलच्छण, पृ १४२ नो ६

मह, § १०६

महै अप, § १०७

—महय,=मय

महै, पृ १६० ब

मउभ पृ १७८, छ ३

मउल, § ७१

मउलत पृ १८०, छ ६२

मउलि, § ६१

मऊर=मोर § ८२

मए, § १०६

मसूह, मसूणि अमा, § ६३

मकठ, पृ १६६। छ १७१

मग § ४५

मगान्त, पृ १२२। नो ५

मच्छ, § ५६, पृ १७८, छ ५६

मच्छर, § ३६, पृ २०५, छ १०

मज्जार, शौ, § ६७, माहा मज्जोर

मज्जिद, पृ १५६, नो १

मज्ज, § ५४, १०७

मज्जमाराधमि, पृ १६१, छ ३

मज्जमण, § ७४, मज्जदिणे, पृ १

नो ३ मज्जमण, § ५२ भी होता

मज्जिम, § ६३

महिआ, § ५५

मणसा, § १०४

मणीण, पृ १७२ II

मणीधि, पृ १७३ ह

मणुस्स § ४६, अमा मणुस्स, § ५

मणोज्ज, § ३६

मणोरथ, शौ, § १४, माहा मणोर

मणुल्लग, पृ १८० छ ६१

मणुणे, § ११५

—मत्त=मेत्त, पृ १८५, छ ८१

मह, पृ १३४, नो ५

मम, माहा, अमा जैमाहा, § १

मम्मथ, शौ, माहा वम्मथ, § २१

मरइ, मरदि, § १२५

मरगअ, माहा, शौ मरगद, § १

पृ १४०, नो १, पृ १६१, छ १

महिलआ, पृ १५६, नो ४

मषान, § ४७

मथ, मथली, माग, पृ २४३, नो

मह, पृ १८३, छ ७७
 महसो, अमा, § १०३
 महल, अमा, पृ १०३
 महसि, § ११३ ग
 महाराष्ट्र § ६३ नो
 महालय, अमा, पृ १०४
 महालिह, माग, पृ २४५, नो ४
 महिका, पृ १८२, छ ७५
 महेश्वर, पृ १६८ द
 महेश्वर, § ८१
 माइल अमा, पृ १०५
 मादा, शौ, माभा, माहा, § ६७
 मारिड, § १३६
 मासा § ६१
 मातिरराशि, § १३४
 मिश्रभा, पृ १३१, नो २
 मिश्रह, पृ १४२, नो ६
 मिज, अमा, पृ २२५, नो १
 मिथुना शौ, § ६२
 मिश्र, § ७२
 मिलाण, § २७
 मिसिमिन्त, पृ २३६, नो ५
 मिस्त्र, माहा० मीस, § ४६
 मुअ, मुद, § १२५
 मुअह, § १३०, पृ १६५, छ ११४
 मुअह, पृ १६६, नो ८
 मुअ, § ११५

मुअह, § १३५
 मुच्छिअ, पृ १७८, छ ५६। अमा,
 पृ २१६, नो ५
 मुज्जद, § १२५।
 मुअह, मुअदि, § १२५, १३०।
 मुअदि, § १२८, भी होता है, कर्म-
 वाच्य मुअदि, § १३५ नो
 मुदठि, पृ १५८, नो ३। जैमाहा
 मुदठिग, पृ २००, ४
 मुणह, पाली मुनाति, पृ १
 मुणाल, § ६०
 मुण, पृ २००, नो १
 मुअ, पृ १
 मुदा, § ६८
 मुज, § ५०
 मुह, § १३
 मुदल, § २६
 मूलाहि, माहा०, § ६२
 मोआवहस्थसि § १३४
 मोआविअ, पृ १७० ब
 मोआवेदि § १२८
 मोगर, § ७१
 मोच्छ, मोच्छिहिमि, § १३४, पृ १८२
 छ ७६
 मोता, पृ १७६, छ ६
 मोतु, § १३६
 मोर, § ८२, पृ १६७ ब

मोक्ष, § ७१

मृ. §§ ३०, १३२ । 'मृ' भी होता है

मिह, §§ ३० १३२

र

रय, § १२२

रहय, पृ १६८, नो २

रयलापर, पृ १४३, नो ६

रय्या, § ४४

रयण, § ७४ । प० अमा रयणात्,
§ ६२

रयणव्य, पृ १०२

रयणा, § ६६

रति, पृ १३३, नो ४

रमह, § १२२

रमहि, अप, पृ १०४

रसाञ्जल, § ६

रसि, § ४७

रवह, § १२२

रहस, पृ १७३ फ

रहस्व, § ४६

राभा, § ६६

राहभा, पृ १६६, छ १७१

राई, पृ १३३, नो १

राईसर, पृ २१७, नो २

राएधि, § ८०

रिच, §§ ३६ ६०

रिततण, पृ १७३ ह

रिदि, § २४

रिसि, § ६०, अमा, बहुव रिचम
§ ६३

रमह § १२२

रहम § १२२

रयह रयवि, §§ १२२, १२६

रयमह, § १२२

रदूठ § १२२

रयेदि, रदू § १२२, कर्मवाच्य रय

रम्मह, पृ १८२, छ ८२

रवह, 'रिवह' भी होता है, कर्म

रवह, § १२२

रयह, § १२२

रधिर § १३

रव, § १७, माहा कय § ६

रेहा, माहा, § ६४

रेहह माहा, पृ १६१, छ ४

रोअदि, § १२२, पृ १२२, नो ७

रोददि रोवह, रमह, रवह, भविष्य

रोदिस्व, रोच, § १२४, कर्म

रोदीअदि, § १२२, रोतु § १२६

रा

लया, शी लदा, § १२

लच्यो, पृ १७२ व

लट्टि, पृ १७१ अ पृ (१)

लद, §§ ३४, १२२, लदध § १३

कर्मवा सन्मह

सम्भदि, § १३४; सम्भीम्भदि, § १३५

भी होता है ।

सम्भिर, अमा, § १०५

सदह, § १२५

सदस, § १४३, नो १

सहुम, § १३

सहु, § (१)

सहे, § ११५

सहेष्, § १३४, नो ६

साअकीय, माग, § १६५, नो ६

साउले, माग, § ८२

साउले, माग, § २४३, नो २

सिअ, § १२५। सीन' भी होता है

सित, § १८८-६, नो ३

सिम्भइ, § १३५

सिहइ, § १२५। सिहिइ, शी, § १५६

नो ३।

सुक्क, § १६३, छ ४६

सुड, § १३३, नो ५

सुप्पइ, § १२५

सुक्ख, § १६२, नो ८

सोअ, § ६, अअ सोउ, § ७३, अमा

जेमाहा, सोग, § ११, सप्तमी सो

गसि, § ६२

सोअदि, § १२६

सोण, § ७५

सोम, § २००, नो ४

सोलुव, § १६८ द

सोहार, § ८२

सोहिइ, § २४३, नो ५

व

व=इव, § १६७, नो ६

वअस्त, § ४६

वयाधि अमा, § २१६, नो ३

वइवर, जेमाहा, § १६०, नो

वइर माहा, § ६१

वए, अमा, § २२५, नो ३

वक्कल, § ३७

वक्ख, § १५७, नो ३

वगण, § २३४, नो ४

वगुण, § २२८, नो १

वणइ, § १८६, नो ६

वण्ड, (१) वरध, § ३

(२) वड

(३) वण्डस्=वक्ख

वण्डा, § १४३, नो ३

वज्ज, § १५७, नो ३

वज्जदि, § १२६

वज्जन्ति, § १६६, नो ८

वज्जिअ, § १२६ नो १

वज्जक, § १५२ नो २

वज्जामि, माग, § २५६, नो ६

वइदि, § ४५

वहि, § २३३, नो १

वडे, § ११७

वदिठद, § ७४

वद, § १२, अमा, वद, § १६

-वदाअ, पृ १६६ नो ४

वदिठद, पृ १२७ नो ६

वदिठद, अमा, पृ १०४

वद, पृ १३३, नो २, पृ १६७, नो ५

पृ १७६ छ ६

वदिठद, पृ १२६, नो १

वद, § १२६

वदिठद, § १३४

वदवपणअ, अमा, पृ १६७, नो १

वदवपणअ, § ३४

वदवपणअ, § ७५, पृ २५६ । छ २१

वदिठद पृ १७२ व

वरिअ, § ५७

वरिअ, पृ १७३ फ १

ववदेहि, पृ १३८, नो ४

ववदिठद, पृ १३६, नो ३

वद-वदवपणअ, § ८३

वदवपणअ, § ६० ।

वदवपणअ, § १६=वदवपणअ

वदवपणअ, § ६२

-वद, पृ १७६ । छ १४

वदवपणअ, § १२३

वदिठद, पृ १

वद, § १३, २१

वदवपणअ, पृ १७३ व

वदवपणअ, पृ १३८, नो ६

वद, माहा=वदवपणअ, § १३७

वद, § ६०

वदवपणअ, पृ १३८ नो ६

वदवपणअ, पृ २३४, नो ४

वदवपणअ, अमा, पृ २३७ नो ४

वदवपणअ, पृ २५०, वदवपणअ,

२४४ नो ६

वदवपणअ, पृ १३७, नो १

वदवपणअ पृ २१२, नो ७

वदि, पृ १६८, नो ८

वदिठद, पृ १६१, नो १

वि=अपि, § ३, ७४

विअ=पृ १२३, नो २

विअवपणअ, § ७२

विअवपणअ, पृ १४२, नो ४

विअवपणअ पृ १३४ नो ५

विअवपणअ, माहा पृ १८४, छ ७६

विअवपणअ, यौ पृ १४८, नो ६

विअवपणअ, अमा पृ २१७, नो ५

विअवपणअ § ६

विअवपणअ, पृ १६४, छ ७६

विअवपणअ, § ६

विअवपणअ, पृ २४४, नो १

विअवपणअ, § ३६

विअवपणअ, पृ १६८, नो ८

विअवपणअ पृ १६६, नो ६

विज्जु पृ २०० । नो २

विज्जुलिम्मा, § २३

विज्जुद पृ १७५ अ

विग्ग, § ३५

विहहर ! पृ २२, नो ८

विहप्पद, § १३५ ।

विण्णद, पृ १८५, पृ ८२

विण्णदिद, पृ १४४ नो ७

विण्णोदेमि, पृ १५१ नो ६

विण्णत्त § १२५, पृ १४१, नो ३

विण्णवाग्गदि, § १२५, पृ १४३, नो २

विण्णवेद शौ विण्णवेदि, § १२५,

सुसुलत्त विण्णवेदु पृ १४१, नो ६,

विण्णविद, पृ १४० नो २

विण्णवाद, § १२५

विण्णरेण पृ १

विण्णुम, पृ १७६, ख ६

विण्णोदय, पृ १३३ नो ८

विण्णत्त, § ५४

विण्णुक, पृ १७८, ख ३

विण्णुद, पृ १६४, ख ७६

विण्णुद, § ४७ ।

विण्णुद, अमा, पृ २३४, नो ६

विण्णुद,=वीसरिअ, पृ १६८ द

विण्णुद पृ १८६, नो ५

विण्णुद, पृ १८६, नो ५

विण्णुद, पृ १४६, नो १

विण्णुद, पृ १६५, ख ११४

विण्णुद, पृ २६१, नो २ ।

विण्णुद, पृ २४४, नो २

विण्णुद, पृ १३४, नो ६

विण्णुद, अमा, § ६६

विण्णुद, पृ १६१ नो ७

विण्णुद, पृ १६०, नो २

विण्णुद, § १२७

विण्णुद, पृ १४१, नो २

विण्णुद, पृ २०७ ख १६

विण्णुद, पृ २१७, नो ५

विण्णुद, § ११२

विण्णुद, पृ १६३, ख ४६

विण्णुद, पृ १३८ नो ३

विण्णुद, पृ १६८ द

विण्णुद=वीसरि, § ११२

विण्णुद, पृ १८२, ख ७५

विण्णुद, § १३५

विण्णुद, § ३५

विण्णुद, पृ १३३, नो ८

विण्णुद, § ६०

विण्णुद, पृ १८४, ख ८०

विण्णुद, § १३५

विण्णुद, § १२५

विण्णुद, पृ १६८, नो २

विण्णुद पृ २२५, नो ४

विण्णुद, पृ १४४ नो २

वेरु, § १३४

वेरुज, § ६१

वेरु, पृ १७६, पृ १४

वेरुम, पृ १७६, पृ १४

वेरुमा, पृ १२७, नो २

वेरुस्स=वेरु, § १३४

वेरुसिमा, § ५८

वेरुव, पृ १८३, पृ ७८

नो § १०६, १०७

वेरुल, § १३४

वेरुग, § १३७।

वेरु § १३६

वेरु, § १३६

वेरुसिमा, पृ १६८, नो ६।

वेरुसो, पृ १६१, नो ८

व

व, पृ १४३, नो ५

वम, § १२, ११२, पृ २१७, नो ४

वमड, § १६

वमडिमा, पृ १५१, नो ३

वमाघ, पृ १२५, नो ५

वमत्तला, पृ १३४, नो १

वमदिया, वमा, पृ २२१, नो ५

वमद पृ १३६, नो ४

वमद, वमद, पृ १६०, नो १

वमद, § ११

वमा, § १३३

वमार, पृ १६२, नो ६

वमकुणोमि, § १३१

वमला, § १६ वमला, वमल
§ ३५

वममुति, पृ १६१, पृ ४

वमाघ, पृ १८१, पृ ६३

वमोद, पृ १७८, पृ ३

वमिमा, पृ १८०, पृ ६१

वम, § ४४

वमविमा, पृ १६२, पृ ६।

वमवाह, पृ १५८, नो ३

वमोद, § १०४

वमज, पृ १६७, नो ३

वमग, § ५३

वमगा, § ४४

वमह, पृ २३७, नो ३

वमिमा, पृ १६१, नो ८

वमिमादिमा, पृ १८६, नो ३

वमयमा, पृ १७५, पृ ५

वमिमा, पृ २१२, नो ५

वम, वी, माहा वम, § १२, १

वम § ३४

वमल, पृ १०४

वमविमा, पृ १६२, नो ३

वमवेता, पृ (१)

वमव, पृ १२८, नो ८

[वमिके माग, पृ २४६, नो ३]

वमपदि पृ १५०, नो ५

वमव, पृ १२७, नो ३

सददत्त, पृ १८१, पृ ६३
 सफल, § २
 सफल, पृ (१)
 सम्भाव, § ३४
 समझ, पृ १३६, नो ८
 समरग, पृ १६८, नो १
 समन्तागद, पृ २२१, नो ३
 समप्तिद, पृ १२८, नो ६, समपेदि,
 पृ १५०-१, नो ७
 समादत्त, पृ १६६, नो २
 समाधि, पृ २२१, नो २
 [शमालोविदे, माग, पृ २४५, नो ३]
 समासराय, § १२५
 समिकया, पृ २००, नो ५
 समुत्तम, पृ १२६, नो १
 समुत्तिष्ठ, § ४५
 समुदाहार, पृ १३६, नो ५
 समुह, § ४५
 समुत्पज्जिगमा, पृ २१८ नो २।
 समुत्प्रेक्षियाण, पृ २०० नो ५।
 समुत्प्रेक्षित, पृ १५७, नो २
 सपद, पृ १६५, नो १
 सपदत, पृ १६२ नो ४
 सपेदेह, पृ २२७, नो ६, सपेदेता,
 पृ २१६, नो ७
 सम्बल्य, पृ २१३, नो ८
 सभरिक्तण, पृ १८६, पृ ८४

सम्म, पृ २१८, नो १
 सम्मज्जिम, पृ २३२, नो ४
 सरम्, पृ २३३, नो ६।
 सरस्वदी, § ११
 सरिस, § १४
 [रास, माग-], पृ २३२, नो १
 सत्ताहा, § ३७
 सवण, पृ १०४
 सवण, पृ १७३ प
 सवती, § ३६
 सवर, सवर § १८
 सन्, § ५०
 सम्बण्य, § ६६।
 सम्बाण, § १११
 ससहर, पृ १७३ प।
 ससिमुद्दी, पृ १७२ प
 सस्तिरीमदा, पृ १६७, नो ५
 सहाय, § ४६
 सहर, § १३
 सहरस, § ४६
 सहाउ, पृ १०४
 सही, § १३
 साधसमय, पृ १४० नो ३
 साधद, § ४६, माग सधद, § ११
 [साधस, माग, पृ (१)]—
 साधसिम, पृ १३३, नो ५
 साधो, पृ २२८ नो २

रिक्ख, माहा खारिक्ख, ५५ ४०, ६९
 तलवदण, ५ २३
 तादह, ५ १२५; पादगु, पृ १८२,
 पृ ५६। अमा पादेत्, पृ २१४,
 नो ३
 तादगोम, ५ ४६।
 तादवो, ५ ६३
 ति, ५ १३३
 तिया, ५ १३३
 तियास, ५ ६०
 तिह, तिप (तिह), ५ ६५
 तिपतावदय, पृ २१८, नो ४
 तिक्खिद, ५ ४०
 तिक्खिद, ५ १२५, पृ २२१ नो ८
 तिक्खिद, ५ १२५
 तिक्खा, पृ १७२ (६)
 तिदुह, ५ १२५, पृ १६६ नो ४
 तिप्पिद, ५ ४७
 तिप्पेह ५ ४७
 तिप्प, ५ १२५, पृ १२६, नो १
 तिरि=भी, ५ ६८
 तिक्खिमा, पृ २२०, नो ५
 [तिक्खि माग, पृ (३)
 तिदास, पृ १०४
 तीघ, पृ १५६, नो ३
 तीह ५ ६५। अथ तीहु, ५ ७३
 तीहु मादा, पृ १७० स

तुम, ५ १२५
 तुमह, ५ १३३
 तुमपि, पृ १५६, नो २
 तुमप, पृ २३२, नो ४
 तुमदम्, पृ १३३, नो ४
 तुमप, ५ ३७
 तुमम्ह, ५ १२५
 तुम्ह, ५ ३८
 तुम्ह, ५ १३१। सो तुम्हादि, ५ १३२
 तुम्हिदम्, ५ १३७, अमेकां तुम्ही
 अदि, ५ १३५ नो १
 तुम्ह, अथ, पृ १०४
 [तुम्हिदमागल, म ग, पृ २४६, नो ३
 तुम्प, पृ १३७, नो १
 तुम्पेदि ५५ १२५, १२८, १३१।
 तुम् तुम्ह।
 तुम्हा, पृ १६५, पृ १०७
 तुम्, ५५ १२५, १२५
 तुम्प, पृ २३५, नो ३१
 तुम्, सो, ५ १२५। तुम् तुम्ह।
 तुम्, ५ १२५
 तुम्हदम्, पृ १७० अ
 तुम्पण पृ १७१ अ।
 तुम्पदि, ५ २७, तुम्पेदि, ५ १२८
 तुम्पविद, पृ १३६ नो १
 तुम्पह, ५ १३५ प
 तुम्ह, ५ १२५

धवहु, पृ १६०, नो ८
 धविण, पृ १६७, नो १
 धवो, § ५७
 धव्वह § १३५
 धस्समहस्स, § १३४
 धुद्धम, पृ १७१ अ
 धम्मम पृ २४३, नो १
 धुद्ध, जैमाहा, धुद्ध, पृ १६७, नो १
 धे, माग, शे, § १०६
 धेम्म, पृ २१७, नो ५, पृ २१६, नो ६
 धेल्ल, पृ १७० ब ।
 धेहाल्लिआ, पृ १४२, नो ७
 धो, § १०८
 धोअ, पृ १८६, नो ४
 धोअअव्व=धुणिदअव्व, § १२७
 धोउ, § १३६, पृ (१)—
 धोक्ख, § ४३
 धोआ, पृ २१६ नो ३
 धोएहा=धुणहा पृ १६५ अ १०७
 धोत्तिअ, पृ १५८, नो ८ । माग
 धोत्तिअ, पृ २४३ नो ४
 धोणु, § १३६ ।
 धोदअव्व=धोअअव्व § १३७
 धोअण्णअ पृ १३६ नो २
 धोम्म, § ५८, ६१
 धोयह, धोवदि § १३२
 धोवाण, पृ १५८ नो ४

सोहम्म, पृ १२७, नो १

ह

हअ, हद, § १२५, धु हिअ ।
 हगे, §§ ११, १०७, अण हगे, १०७
 हदुल, पृ २१६ नो ३
 हट्ठक पृ २५२, नो ३ ।
 हणह, § १२५
 हरय, ३८
 हदी, पृ १२४, नो १
 हम्मह, § १३५ (ध)
 हरिद, पृ १५६, नो १
 हरिडु § १३६ ।
 हरिस, § ५७
 हविस्सदि, § ४, माग हविररादि ।
 हहिर, पृ १०५
 हसेदि, § १२८
 हिअ, हिद § १२, धु० हअ ।
 हिअअ, §§ ६ ६०, ६२
 हिओ, § ५८
 हिहल्ल, पृ २३३, नो ६
 हुण, पृ १८६, अ ८५
 हुवह=माहा, होह
 हुविस्स, § १३४
 हुअ, § १२५, धु० भूअ
 होह, §§ ४, १२६ । धु० हुवह, यो
 मोदि ।

होर्ब, पृ १५२ द। होऊप, § ११९

होज्या, § ११३

होरा, पृ १८४, पृ ५०

होरना, पृ २१०, मो १

होमि, § ११२

होरग=हमिरग, § ११४

होदिह, § ११४



उपयोगी पुस्तकों की सूची

इस सूची में दिये हुए पुस्तक लाइब्रेरियों में रखने योग्य हैं। इन के पढ़ने से विद्यार्थी के ज्ञान में वृद्धि होगी।

प्राकृत । (क) व्याकरण, १० ।

(१) पिशल् (डा० रिचार्ड) Grammatik der Prakrit-Sprachen] प्राकृत भाषाओं का व्याकरण । जर्मनी, स० १६०० । पृ० ५०० । मूल्य १ पौ० १६ शि० ।

यह ग्रन्थ जर्मन भाषा और रोमन अक्षरों में छपा है। इसमें जैन प्राकृतों, ताटकीय प्राकृतों, पेशाची और अपभ्रंश का विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ परिभ्रम और यथार्थ विद्वत्ता का स्तम्भ है। प्रस्तुत 'प्रवेशिका' पढ़ने के बाद कोई भी विद्यार्थी बिना जर्मन भाषा के ज्ञान के ही उदाहरणों को पढ़ कर इस ग्रन्थ का उपयोग कर सकता है। पुस्तक में अधिक अप्रचलित और विशेष रूपों की अनुक्रमणिका सन्निविष्ट है।]

(२) विक्रमसिंह सकलित पिशल् के व्याकरण की पूर्ण प्राकृत शब्दानुक्रमणिका पृथक् विक्री है। [रोमन अक्षर]

(३) जेकोवि (डा० हरमन)—प्राकृत के अध्ययन में प्रवेश करने के लिए माहाराष्ट्री के खुने हुए उपाख्यान । लीपज़िग, १८८६।

[प्राकृतों के वर्गीकरण और व्युत्पत्ति विषयक कुछ बातों के लिए अब यह पुस्तक उपयोगी नहीं है। जैन माहाराष्ट्री सम्बन्धी धर्ष विकार और व्याकरण का जर्मन भाषा में सक्षिप्त विवरण दिया गया है, ८६ पृ० कथासमूह के हैं और साथ ही प्राकृत संस्कृत जर्मन आभिधान भी दिया गया है। खुने हुए उपाख्यानो में से न० ५ और १ पर 'प्रवेशिका' में टिप्पणियाँ लिखी गई हैं और उनका अनुवाद भी कर दिया गया है। अर्धमागधी के स्पर्शिकरण

के लिए न० ३ से भी कुछ अंश लिए गये हैं।] [जर्मन भाषा, रोमन अक्षर]

(३ क) प्राकृत-कथा-संग्रह। मुनि जिन विजय जी द्वारा संपादित। गुजरात पुरातत्त्व माला। सन् १९२१। पृ० ७२।

यह पुस्तक न० ३ की कथाओं का आगरी संस्करण है।

(४) फोबेल (प्रोफेसर ६० बी०)—घरहचि का प्राकृत प्रकाश, भामह की 'मनोरमा' टीका, अंगरेजी अनुवाद, मोटों और प्राकृत शब्दों की अनुक्रमणिका सहित, जिस के आरम्भ में प्राकृत व्याकरण का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। द्वितीय संस्करण, सन् १८६६।

[बुर्मांग से भामह की टीका का १२ वा अध्याय, जिस में शौरसेनी का विवेचन किया गया था नष्ट हो चुका है, और अनेकों सूत्र 'अस्पष्ट और भ्रष्ट' हैं। अनुक्रमणिका में हेमचन्द्र के व्याकरण के मिलते जुलते नियम दिये हैं, "किन्तु इन में भी अनेकों कठिनाइयों की व्याख्या नहीं की गई है।" कहीं कहीं पर भामह को घरहचि के समझने में भ्रम हो गया है]

(४ क) घरहचि कृत प्राकृतप्रकाश, वसन्तराज तथा सदानन्द द्वारा टीका युक्त। काशी, सन् १९२७, २ भाग।

(४ ख) घरहचि कृत प्राकृतप्रकाश, भामह टीका सहित। काशी, सन् १९२०।

(५) हेमचन्द्र

(क) सिद्ध हेमचन्द्र (८ वें अध्याय में प्राकृत का विवेचन किया गया है), पिश्ल द्वारा संपादित, भाग १ और २। छाल, १८७७, १८८०, अनुवाद और टिप्पणियों सहित। (जर्मन भाषा, रोमन अक्षर)।

(५ क) हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण, पूना सन् १९२८।

(५ ख) हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण, दुडिका टीका सहित पूर्णार्ध। मुम्बई, सन् १९०३।

(६) चण्ड कृत प्राकृतलक्षण अथवा आर्ष प्राकृत का व्याकरण।
हर्नले-द्वारा संपादित। फलकत्ता, १८८०।

[आर्ष=अर्धमागधी। जैसा हर्नले ने कहा है अर्धमागधी+
माहाराष्ट्री नहीं।]

(६ क) चण्डकृत प्राकृतलक्षणम्। रेयतीकान्तं द्वारा संपादित।
फलकत्ता, सन् १६२३।

(७) मार्कण्डेय कृत प्राकृतसर्वस्व।

(८) लक्ष्मीधर कृत पद्मापाचन्द्रिका। मुम्बई सन् १६१६।

(९) बेचरदासकृत प्राकृत व्याकरण। अहमदाबाद, सन् १६२५।

[गुजराती भाषा, नागरी अक्षर]

(१०) हेमचन्द्र कृत देशीनाममाला, पिथल से सम्पादित, यम्बई, १८८०

(१० क)-मुरलीधर बैनरजी द्वारा संपादित। फलकत्ता, १६३१।

(११) प्राकृत-लक्ष्मीः।

'धनपाल का प्राकृतकोश, पाण्ड्य लच्छी नाममाला। आलोच
नात्मक टिप्पणियों, भूमिका और अभिधान सहित ब्यूलेर द्वारा
सम्पादित।' गौटिजेन, १८७८।

(११ क) —भावनगर। बेचरदास द्वारा सम्पादित।

(१२) अभिधानराजेन्द्र। ७ भाग मूल्य रु० २५०।

(१३) हरमोविन्ददास रचित पाण्ड्यसहस्रद्वयो।

य-पाठ्य ग्रन्थ। महाराष्ट्री।

(१४) हालकृत सप्तशतकम्।

(क) बेचर द्वारा सम्पादित। लीपजिग, १८-१।

(प्राकृत जर्मन कोश सहित)।

(ख) काव्यमाला न० २१। दुर्गाप्रसाद और परशु द्वारा सम्पा
दित। यम्बई, १८८६।

[सस्कृत टीका समेत।]

(१५) सेतुयन्ध या रावणयन्धो।

(क) काव्यमाला, न० ४७। शिवदत्त और परशु द्वारा सम्पादित।
यम्बई, १८६५। [सस्कृत छापा और टीका सहित]।

(ख) ज़ीफ्रीड गोल्डश्मिट द्वारा संपादित । स्त्रासबर्ग । १८८० ।

[जर्मन अनुवाद और कोश सहित ।]

(१६) गउडवदो । थी० पी० पण्डित द्वारा संपादित ।

बम्बई, १८८७ ।

[बम्बई संस्कृत सिरीज़ न० ३४, सशोधित संस्करण ।]

नाटकीय प्राकृतें

[संस्कृत नाटकों के संस्करण गिनना अनावश्यक है । अनेकों से विद्यार्थी स्वयं परिचित होंगे, अन्य नाम अमरीका की छपी ग्लज़र (Schuyler) संकलित 'संस्कृत नाटक सूची' में मिल जायेंगे । बहुत कम संस्करण ऐसे हैं जिन में शुद्ध अथवा पूर्वापर विरोधरहित प्राकृत पाठ मिलेंगे । इसका कारण प्रधानतया हस्तलिखित पुस्तकों की भ्रष्टता है ।]

(१७) राजशेखर कृत कर्पूरमञ्जरी ।

कोश सहित विवेचनात्मक संस्करण डा० स्टेन कोनो द्वारा संपादित ।

अनुवाद और उपोद्घात प्रो० सी० बी० लैनमेन द्वारा । हार्वर्ड ओरियन्टल सिरीज़, वोल्यूम ४ ।

यह नाटक काव्यमाला, न० ४, में भी छपा है, दुर्गाप्रसाद और परब द्वारा संपादित । बम्बई १८८७ ।]

(१८) शकुन्तला, पिशुन द्वारा संपादित । कोल, १८७७ ।

[इस में बंगाल वाचना का अनुसरण किया गया है, मोनियर विलियम्स के १८६७ के संस्करण की अपेक्षा इस के प्राकृत पाठ अधिक शुद्ध हैं ।

(१९) मृच्छकटिकम्, गोडाबोले द्वारा संपादित । बम्बई, १८८६ । (बम्बई संस्कृत सिरीज़ ।)

[दूसरे संस्करण—स्टेंज़लर, १८४७ । राममय शर्मा, कलकत्ता १८२६ । श्रीरामन्द और परब, १६०२ । यह अन्तिम पुस्तक अद्य

तरफों में उद्धृत की गई है, क्योंकि विद्यार्थी इस का बहुत उपयोग करते हैं। अनुवाद (अंगरेज़ी)—आ० ए० डबल्यू० राइडर, हार्वर्ड ओरियन्टल सीरीज़, वोल्यूम ६।]

[२०] रत्नायली अनेक संस्करण उपलब्ध हैं।

अर्धमागधी

[पिछले बीस पच्चीस बरसों में जैन साहित्य का बहुत बड़ा भाग प्रकाशित हो गया है। अर्धमागधी का संपूर्ण सिद्धान्त संस्कृत टीका सहित “आगमोदय समिति” तथा “सेठ देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, बम्बई” द्वारा प्रकाशित हो चुका है। स्वामी दासी सम्प्रदाय ने भी अपने ३२ सूत्र भी अमोलक अपि कृत हिन्दी अनुवाद सहित छपाए हैं। इसी सम्प्रदाय के उपाध्याय श्री आत्माराम जी ने “उत्तराध्ययन”, “दशैकालिक” तथा “अनुयोग द्वार” पर भाषा टीका की है।]

इन ग्रंथों के लिये “जैनधर्म प्रसारक समा, भावनगर, काठिया वाड” अथवा “देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, गोपापुरा, खरत” को लिखना चाहिये।

(२१) बनारसी दास जैन। अर्धमागधी रीडर। पञ्जाब यूनिवर्सिटी ओरियन्टल पब्लिकेशन्स। लाहौर १९२३। मूल्य ३६० [२१ क]—हिन्दी संक्षेप। लाहौर १९२१।

(२२) कल्पसूत्र (कप्पसुत्त)। मो० जेकोवि द्वारा सम्पादित, [लिपिजिग १८७६।]

(२३) आपारकसुत्त, जेकोवि द्वारा सम्पादित। लन्दन, १८८२ (कलकत्ता संस्करण, सवत् १९३६।)

[प्रथम अक्ष प्राचीनतम गद्य के लिये उपादेय है।]

(२४) स्यगदसुत्त, बम्बई संस्करण। सवत् १९३६।

[द्वितीय अग पद्य के लिए उपादेय]

(२५) उवासगदसा ओ, हर्नले का संस्करण। कलकत्ता, १८६०।

(विग्लितग्रोथिका इण्डिका ।)

[इस सातवें अग में आन-दादि आचकों की जीवन कथाएँ हैं । मूलपाठ, ससृष्ट टीका अंग्रेजी अनुवाद तथा विस्तृत टिप्पण सहित विवेचनापूर्वक संपादित किया गया है] ।

(२६) स्वामी रत्नचन्द्र । अर्धमागधी कोश (अमा०-अंगरेजी हिन्दी गुजराती) । इंदौर, चार भागों में प्रकाशित हुआ है, १९२३, १९२७, — — ।

जैन माहाराष्ट्री

(२७) आवश्यक कथा-क । लौयमन द्वारा संपादित । लीपज़िग, १८९७ । ऊपर न० ३ भी देखें । [जर्मन भाषा, रोमन अक्षर]

(२८) कालकाचार्य-चरितम्, जेकोवि द्वारा संपादित ।

(२९) कक्कु क शिलालेख । (उद्धरण न० १७ ।)

जैन शौरसेनी

[अंग्रेजी हिन्दी अनुवाद सहित जैन शौरसेनी के भी बहुत से ग्रंथ छप चुके हैं । उन के लिये ' ला० उमेदसिंह मुसद्दीलाल, कटवा ज़िल्लो, अमृतसर ' को लिखना चाहिये ।

(३०) बुद्धकुन्दाचार्य का पद्यसंग्रह, मनोहरलाल द्वारा संपादित बम्बई १९१२ ।

(३१) कार्तिकेय स्वामी की कचिगेयाणुपेक्षा, भण्डारकर द्वारा संपादित ।

(३२) नेमिचन्द्र का द्रव्यसंग्रह, शरथचन्द्रघोषल द्वारा संपादित, आरा (बंगाल), १९१७ [अंग्रेजी अनुवाद सहित] ।

(३३) गोम्मटसार, गजधरलाल द्वारा संपादित, कलकत्ता । पाली । व्याकरण इत्यादि

(३४) ई० म्यूलर का पाली भाषा का सरल व्याकरण । लंदन, १८८४ ।

(३४) आर सी चिल्डर्स, (Childers) पाली भाषा की डिक्शनरी
चतुर्थ संस्करण लन्दन १९०६ ।

पाठ्य पुस्तकें और अनुवाद

(३६) जातक (-समग्र), फोस्थाल द्वारा सम्पादित । ७ वोल्यूम ।
लन्दन, १८७७ । (रोमन अक्षर),

(३६ क) जातकों का अंग्रेजी अनुवाद । कौवेल और राउज द्वारा
सम्पादित । कैम्ब्रिज १८६४ ।

(३७) पेण्डर्सन (डारन्ज़) । पाली रीडर । कोपन हेगेन ।

[३७ क] पालि पाठावलि । मुनिजिन विजयजी द्वारा संपादित
गुजरात पुरातत्त्व० । न० ३३ का नागरी संस्करण ।

(इनके साथ बिना अभ्यासक के पाली का अध्ययन आरम्भ
किया जा सकता है) ।

(३८) महावश टर्नूर द्वारा सम्पादित और गाइगर द्वारा
अनुवादित ।

(३९) पाली टैफ्ट सोसाइटी की प्रकाशित पुस्तकें ।

प्राचीन प्राकृत ।

विषय सामग्री विपरीत हुई है । अशोक की धर्मलिपियों के लिए
विद्यार्थी न० ३४-३८ देख सकते हैं ।

(४०) सेनार । लेज़ेन्सकप्सिया द पियवसि [अशोक] की
धर्मलिपिया । [फ्रेंच भाषा) २ भाग । दूसरा भाग जी ए
प्रियर्सन द्वारा अनुवादित ।

कार्पस इन्स्कृप्शन्स इण्डिकेरेम् । अशोक के आदेश,
कनिङ्गहम द्वारा सम्पादित दुःप्राप्य है ।

(४१) ए सी वूलनर । अशोक टैफ्ट पण्ड ग्लासरी । (रोमन)
(पंजाब यूनिवर्सिटी ओरियण्टल पबलिकेशन्ज़) लाहौर, १९२४ ।

(४२) डुल्य । कोर्पस इन्स्कृप्सियोनम् इण्डिकेरेम् । पहला भाग ।

(अशोक के शिलालेख) । नयासंस्करण, १९२४ ।

(४३) गौरीशंकर ह्रीराघन्द ओम्का द्वारा संपादित " अशोक की धर्म लिपिया "—नागरी प्रचारिणी पत्रिका । काशी, खण्ड १-३, न० ११७६—८० ।

(४४) फ्रैंक (प्रोफेसर ओ०) "पाली और संस्कृत" १९०२ ।

(जर्मन भाषा)

(४५) स्पूडर्स "दो चौथ नाटकों के खण्ड" । (जर्मन भाषा)

उत्तर कालीन प्राकृत । अपभ्रंश ।

(४६) हेमचन्द्र । देवो प्राकृतव्याकरण ।

(४७) पिङ्गल छन्द सूत्र अथवा प्राकृत पिङ्गल सूत्र । काव्यमाला ४१, शिवदत्त और परम द्वारा संपादित ।

[४८] घणयाल । भविसत्तकद्व, जेकोयि द्वारा संपादित ।

[उपोद्धात और कोष संहिता [जर्मन भाषा, रोमन अक्षर], १९१८ ।
आधुनिक भाषाएँ ।

[४९] अपभ्रंश काव्यत्रयी ।

(४९ क) नागरी संस्करण यदौदा ।

[५०] श्लाक [यूलस] । लाफार्मेसिया दलालाग मराठे वैरिस, (मराठी भाषा का व्युत्पत्त्यात्मक व्याकरण) १९२० ।

[५१] टर्नर, (आर-थेल) । गुजराती फोनोलोजी रायल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, १९२१ ।

(५२) चैटर्जी, (एस के) बङ्गलाभाषा की उत्पत्ति और विकास । कलकत्ता, १९२६ ।

[५३] बनारसीदास जैन । पञ्जाबी फोनोलोजी । प० यू० ओ० प० न० १० । लाहौर, १९३३ ।

